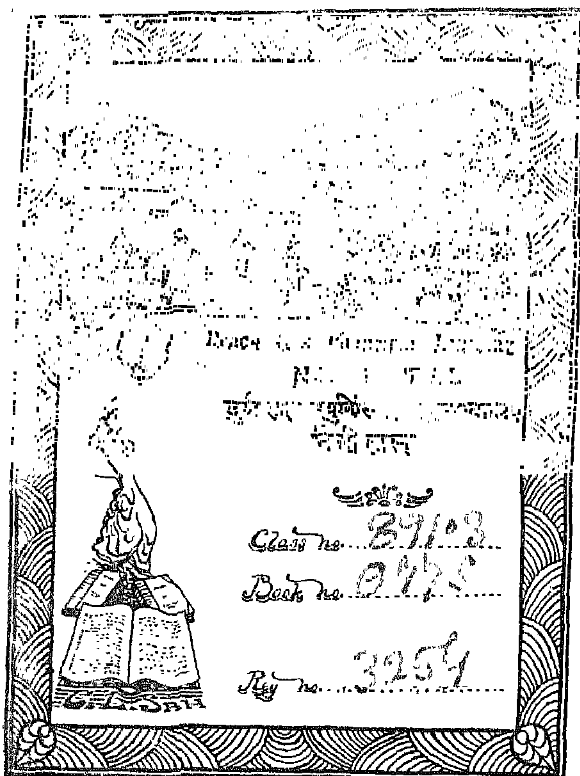


Class no. 891.3
Book no.
Reg no. 3254

साँझ का सूरज

अठारह सौ सत्तावन की क्रान्ति पर आधारित
मौलिक एवं ऐतिहासिक उपन्यास

लेखक
श्री ओमप्रकाश शर्मा



सरस्वती सहकार दिल्ली-शाहदरा

वितरक
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली : नई दिल्ली : बम्बई : इलाहाबाद

प्रथम संस्करण
जुलाई १९५५
मूल्य : तीन रुपये आठ आने

प्रकाशक
श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'
सरस्वती सहकार
दिलशाद गार्डन, दिल्ली-शाहदरा।

मुद्रक
श्री हकूमतलाल
विश्व भारती प्रेस,
पहाड़गंज, नई दिल्ली।

दो शब्द

इस उपन्यास के बारे में केवल दो शब्द ही कहने-लिखने की जरूरत है, लम्बी भूमिका लिखने की नहीं। कारण कि यह काम खुद लेखक ने ही पूरा कर दिया है, उपसंहार के रूप में।

उपन्यास के अन्त में जो उपसंहार छपा है, हमारा अनुरोध है कि उपन्यास पढ़ने से पहले पाठक उस उपसंहार को पढ़ें। वह भूमिका के अभाव की पूर्ति करता है। इसे पढ़ने के बाद अगर पाठकों को कोई बात सूझे या शिकायत करने को मन चाहे तो उन्हें उपन्यास-लेखक से जूझने और अपनी तथा लेखक दोनों की बुद्धि पैनाने की पूरी छूट है।

यहाँ हम इस उपन्यास के नाम के बारे में कुछ कहना चाहेंगे। लेखक का उद्देश्य पाठकों का मुँह देखकर लेखनी चलाना नहीं, बल्कि कटु वास्तविकता को व्यक्त करना था; और इस काम को उसने सफलता के साथ पूरे गौरव और शालीनता के साथ पूरा किया है।

यह उपन्यास एक ऐसी वास्तविकता को चित्रित करता है जिसके कटु प्रभाव से आज दिन भी हमारा पिंड नहीं छूटा है और जो रह-रह-कर हमें सोचने के लिए बाध्य करती है कि हम साँझ का सूरज देख रहे हैं अथवा सुबह का,—अथवा यह कोई ऐसी अजूबा चीज है जिसमें साँझ और सुबह दोनों आकर गड्ड-मड्ड हो गए हैं।

साँझ का सूरज—जिसके भाग्य में, काल की क्रूर गति की भाँति, अस्त होना ही बदा है, निःसत्व और पुंस्त्व-विहीन केवल पराई शक्तियों के सहारे जीने वाला। लेकिन उपन्यास में निरे अस्त का ही चित्रण नहीं है, उदय का भी चित्रण है।

उपन्यास में गदर के दिनों की दिल्ली का चित्रण हुआ है,—उस

दिल्ली का, जिसका खून कभी बूढ़ा नहीं होता, जहाँ नगाड़ों के साथ शहनाइयाँ बजती हैं और जहाँ तोप के गोलों को छूटता देखकर लोगों को आतिशबाजी का आनन्द आता है।

इसे पढ़कर आप दिल्ली को एक नए रूप में देखेंगे, उसे और भी घनिष्ठता से प्यार करना सीखेंगे और उपन्यास पढ़ने के बाद इरादा करेंगे कि चाहे जो हो, बहादुरशाह की भाँति दिल्ली को अब हम फिर कभी विदेशियों की पैन्शन पर आधारित परवशतापूर्ण जीवन नहीं बिताने देंगे;—एक ऐसा जीवन, जिसके भाग्य में, काल की क्रूर गति की भाँति अस्त होना ही बदा होता है।

और यह एक बहुत बड़ी बात है।

—नरोत्तम नागर

आमुख

सान्ध्य-रवि ने कहा,
मेरा काम लेगा कौन ?
रह गया सारा जगत्
सुनकर निरुत्तर, मौन !
एक माटी के दिये ने,
नम्रता के साथ
कहा, जितना बन सकेगा
मैं करूँगा नाथ !

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

ऐतिहासिक उपन्यास हमारे जातीय आत्म-सम्मान को जगाते हैं। पूर्वजों के वीर कृत्यों का वर्णन हमें आज साहस पूर्वक अन्याय का विरोध करना सिखाता है। विशेष रूप से ब्रिटिश राज के खिलाफ हमारी जनता के संघर्षों को लेकर लिखे गए उपन्यास आज की परिस्थिति में भी शान्ति और स्वाधीनता के संघर्ष में हमारी बहुत बड़ी सहायता करते हैं।

—डॉ० रामविलास शर्मा

● ● ● साँझ का सूरज

: १ :

आज से लगभग एक शताब्दी पूर्व·····

आधे से अधिक भूमंडल पर अपना एकछत्र शासन स्थापित करने वाली इंगलैंड की महारानी विक्टोरिया अभी भारत की महारानी नहीं बनी थी। सम्राट् एडवर्ड सप्तम और जार्ज पंचम अभी भविष्य के गर्भ में थे। दो भयानक विश्व-युद्धों की कल्पना भी जन-साधारण की बुद्धि से बाहर थी।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के नाम से ब्रिटिश साम्राज्यवाद पूरे हिन्दुस्तान पर तनिक परोक्ष रूप में अपने खूनी पंजे जमा चुका था। इस वास्तविकता को भारत के भूतपूर्व शासक बहुत पहले ही जान चुके थे, किन्तु अपनी हीन नपुंसकता के कारण वे धीरे-धीरे अपने अधिकार अपने प्रभुओं अर्थात् फिरंगियों को सौंपते जा रहे थे। क्या दिल्ली और क्या झाँसी, अवध से लेकर बंगाल तक ऐसा ही दुर्भाग्यशाली वायुमण्डल था।

सम्पन्न कामधेनु-जैसी उर्वरा धरती के पुत्र अपने में मग्न थे। किसान पहले की भाँति ही धरती पर सारे वर्ष परिश्रम करने और अपने भरपूर खलि-हानों को देखकर फूले नहीं समाते थे। शिल्पियों ने ढाके के बुनकरों पर हुए अत्याचारों की कहानियों पर विश्वास नहीं किया। मानचेस्टर मिलों के कपड़े ने तथा यूरोप से आने वाले काँच के झिलमिल आभिजात्य प्रसाधनों ने अपने कला-कौशल पर से अभी भारतीय शिल्पियों का विश्वास नहीं डिगाया था।

इन्हीं किसानों और शिल्पियों के पुत्रों को चतुर फिरंगियों ने अपनी सेना में भी भरती कर रखा था।

जब भी समय पड़ा, हिन्दुस्तानी से हिन्दुस्तानी लड़े, समुद्र पार के दूर देश से आये गौरांग महाप्रभु की बादशाही के लिए।

समय का चक्र एक बार फिर मित्र और शत्रु को मैदान में आमने-सामने देखना चाहता था। मेरठ की सेनाओं में भी समाचार पहुँचा कि नये कारतूसों में गाय और सूअर की चर्बी है।

"क्यों ?"

समाचार के साथ इस क्यों का उत्तर था—"इसलिए कि हिन्दुस्तानी अब गुलाम बन चुके हैं। गुलाम का धर्म गुलामी है। फिरंगी चाहते हैं कि हम पुराने धर्मों को भूलकर नये धर्म के आचार-व्यवहार सीखें।"

"क्या यह सही है ?" इस प्रश्न का उत्तर हिन्दुस्तानी सिपाही अपने गोरे अफसरों से चाहते थे।

उन्हें उत्तर में मिला—अपमान। दंड।

सचमुच वे फिरंगियों के दास बन चुके थे !

एक बार नौजवान सैनिकों ने अपमान का कड़वा घूँट पी जाना चाहा।

सुबह परेड के समय गोरे अफसरों ने मुँहजोरी करने के अपराध में सात सैनिकों को कारावास दे दिया।

यह घटना नौ मई की सुबह हुई। दोपहर और तीसरा पहर भयानक किन्तु शान्ति सहित बीत गया। सूर्य अस्त हुआ, जाते-जाते अपनी प्रिय चहेती साँझ को समय का आदेश बता गया। सुबह का समाचार साँझ के वायुमंडल में फैलता रहा।

समय का आदेश सर्वोपरि है, कौन उसकी अवहेलना कर सकता है ! साँझ के कालिमामय प्रकाश में तनिक झुकी-सी दृष्टि से मेरठ के नागरिकों से सैनिकों का साक्षात् हुआ। आत्मग्लानि से सैनिकों की दृष्टि उठ नहीं सकी।

पर्दों और दीवारों के पीछे से सैनिकों ने माँ और बहनों के उलाहने सुने। और तो और बाजारू कही जाने वाली स्त्रियों ने भी नीचे गलियारे में चलते सैनिकों को ताना दिया। किसी एक ने अपने कोठे के छज्जे पर सुनकर दूसरी को सम्बोधित करके कहा—"अरी जरा इन जवाँ मर्दों का

तो देख, इन्हींके सात भाई फिरंगी को काल कोठरी में पड़े हैं। बलिहारी है इनकी जवानी की, क्या शेर की तरह सीना तानकर चल रहे हैं!"।

ज़बान से निकली बात मुँह से बाहर हुई नहीं कि दिलों में उलझकर रह गई।

साँझ के बचे कर्तव्य को रात ने पूरा करने का बीड़ा उठाया।

रात के अँधेरे में सैनिकों की आँखों-ही-आँखों में मंत्रणा हुई और···।

दो पहर रात बीतते-न-बीतते निश्चय कार्य रूप में परिणत होना आरम्भ हो गया। सर्व प्रथम भारतीय सैनिकों ने गोरे अफसरों को ठिकाने लगाया, और फिर दो-दो चार-चार···दस-दस की टोली में सीधा और साफ रास्ता छोड़कर टेढ़े-मेढ़े और ऊबड़-खाबड़ रास्ते से मेरठ के रिसाला नम्बर दो और तीन के दल, और घुड़सवार सैनिक दिल्ली की ओर चल दिये।

शाहजहाँ के शाहजहाँनाबाद की ओर, जहाँ भारत के इस सम्राट् ने विशाल लाल किला और सुदृढ़ प्राचीरों से युक्त शहरपनाह बनवाई थी।

विदेशी फिरंगियों से पहला स्वातन्त्र्य-युद्ध लड़ने मेरठ के सैनिक आधी रात बीतते-बीतते दिल्ली की दिशा में कूँच कर चुके थे।

इतिहास साक्षी है कि दस मई सन् अठारह सौ सत्तावन ईस्वी को —

रात बीत चुकी थी, किन्तु अभी सूर्योदय नहीं हुआ था। भोर के तारों के प्रकाश में पाँच घुड़सवार अस्त-व्यस्त से ढाक और कँटीली झाड़ियों के बीच से राह बनाते हुए उत्तर-पूर्व की दिशा से दक्षिण-पश्चिम की ओर बढ़ रहे थे। सभी को म्यान में तलवार और कंधे पर बन्दूक लटकी हुई थी। उनके आगे बढ़ने का ढंग अगर कोई नागरिक देखता तो मारे हँसी के लोट-पोट हो जाता। सबसे आगे वाला नवयुवक अपने हाथों में घोड़े की बाग थामे और आँखें खोले था, और न जाने क्या सोचकर उसने अपनी पगड़ी सिर से उतारकर बन्दूक की नली को पहना रखी थी, अँगरखे की तनी खुली हुई थी; फलस्वरूप आधा वक्ष वस्त्र-हीन था। उसके पीछे दूसरा नवयुवक

सैनिक था जिसके चेहरे पर छोटी-सी दाढ़ी भी थी। उसकी पगड़ी में एक घूम सुनहरी था, जिससे स्पष्ट था कि वह हवलदार है। उसके घोड़े की बाग पहले सैनिक के घोड़े की जीन से बँधी थी। केवल इसके दोनों हाथ घोड़े की पीठ पर जमे हुए थे, सिर झुका हुआ था और आँखें मुदी हुई थीं। उसके पीछे के तीन सवारों की भी यही दशा थी। घोड़े की बाग अगले सवारों के घोड़ों की जीनों से उलझी हुई थी, हाथ घोड़ों की पीठों पर टिके हुए थे, सिर झुके और आँखें मुदी हुई थीं।

अगला सैनिक बड़ी सावधानी से राह बनाता हुआ बढ़ रहा था। कुछ देर बाद सबसे पिछला सैनिक सीधा हुआ। उसने इस प्रकार आँखें टिमटिमाईं मानो गहरी निद्रा से जागा हो। जमुहाई लेते हुए एक बार उसने पीछे गरदन घुमा कर देखा, दूर पूरब में अन्धकार को बेधती हुई उषा की गुलाबी किरणें प्रभात का सन्देश दे रहीं थीं।

एक बार फिर जमुहाई लेते हुए तनिक ऊँचे स्वर में पिछले सैनिक ने कहा—"विक्रम बेटे, सलाम !"

अगले सैनिक ने सिर घुमाकर पीछे देखा, और स्वाभाविक मुस्कराहट सहित कहा—"सलाम नूर चाचा !"

—"मियाँ हवलदार, उठो सुबह हो गई।" पिछले अधेड़ सैनिक ने पुनः ऊँचे स्वर में कहा—"उठो भाई !"

बीच के तीनों सैनिकों ने भी आँखें खोल दीं, और प्रत्येक ने अपने-अपने घोड़ों की लगामें सँभाल लीं।

कुछ क्षण बाद तनिक स्वस्थ होकर सुनहरी घूम वाले नवयुवक ने घोड़े को एड़ लगाकर तनिक आगे बढ़ाया और अगले सैनिक के बराबर पहुँचकर पूछा—"उजाला हो आया विक्रम, कितनी दूर है दिल्ली ?"

—"मैं क्या जानूँ, दिल्ली से अपना कभी वास्ता नहीं पड़ा है, हनीफ भैया ! तुम जानो, दिल्ली तुम्हारी ससुराल है। अरे हाँ, देखो तो हवा भी पछुवा चल रही है—ठीक दिल्ली से होकर ही आ रही होगी, और भाभी

भी आजकल दिल्ली में हैं, जरा सूँघो तो ?"

—"भाँग तो नहीं पी है, क्या सूँघूँ ?"

—" हवा में भाभी की गंध, और बताओ कि अभी दिल्ली कितने कोस है ?"

एक हाथ उठाकर हवलदार हनीफ ने अँगड़ाई ली—"भाभी न हुईं मक्का-मदीना हो गया। रात को उसके नशे में कहीं दूसरी दिशा में तो नहीं मुड़ गया था।"

—"हूँऽऽऽ, पढ़े हुओं को मत पढ़ाओ भैया ! आधी रात को आँखें मूँदीं थीं और अब खोली हैं, ऊपर से ये तुर्रा भी हम पर ही रहा कि हम भाभी के नशे में थे। वैसे सब जानते हैं कि जवान आदमी को घोड़े की पीठ पर नींद नहीं आया करती। हनीफ हवलदार की काया यहाँ थी, और मन दिल्ली में था। मूरख समझें कि हवलदारजी सो रहे हैं, पर हमारे-जैसे गुणी आदमी जानते हैं कि भैया अपनी उनके ध्यान में मगन थे।"

एक बारगी दोनों ही खिलखिलाकर हँस दिये।

प्रसन्न हृदय हो विक्रम ने गुनगुनाना आरम्भ कर दिया। छोटे-से काफिले का नेतृत्व अब तो हनीफ को सौंप चुका था। कुछ देर बाद गुन-गुनाहट ने बाकायदा गाने का रूप ले लिया। विक्रम ऊँचे स्वर में प्रभाती गा रहा था :—

जागो भाई, रात रही थोरी।

विक्रम के स्वर में माधुर्य था। गाने का ढंग सुघड़ था, प्रतीत होता था मानो इस युवक ने सैनिक शिक्षा से अधिक संगीत का अभ्यास किया है। उसके हाथ स्वरों के उतार-चढ़ाव के साथ नाच रहे थे। घोड़ा भी मानो संगीत का रस ले रहा था। विक्रम के हाथ संगीत की सेवा में थे, फलस्वरूप घोड़े की लगाम ढीली पड़ी थी। नियंत्रण न रहने के कारण घोड़े की चाल मन्द पड़ गई थी और शेष चारों घोड़े उससे आगे निकल गये थे। किन्तु रुका वह तब भी नहीं था, पीठ पर बैठे सवार के प्रति कर्तव्य का पालन

करते हुए धीमे-धीमे स्वयं राह बनाता हुआ चल रहा था।

कुछ देर तक पूरा काफिला संगीत का रसास्वादन करता हुआ, धीमी गति से चलता रहा। मार्ग की कँटीली झाड़ियाँ अब समाप्त हो चुकी थीं, ढाक भी अब घना नहीं था।

अचानक हनीफ ने लगाम खींच ली। उसके मुख-मंडल पर थकी-सी मुस्कराहट खेल गई—"नूर चाचा, दिल्ली।" एक हाथ में लगाम थामते हुए और दूसरे हाथ को पश्चिम की ओर सीधा करके हनीफ ने पीठ मोड़कर अधेड़ सैनिक नूर से कहा। दृष्टि कुछ मन्द होने के कारण नूर कुछ तथा दृष्टि जमाये हनीफ के हाथ की उँगली की सीध में देखता रहा। शेष दोनों सैनिक भी घोड़े रोककर नूर का अनुकरण करते रहे। केवल विक्रम अब भी अपने राग में मस्त था, अलबत्ता आगे राह न पाकर उसका घोड़ा भी रुक गया।

दूर आसमान के छोर पर जामा मस्जिद का गुम्बद और बुर्जियाँ दिखाई दे रही थीं।

—"यह विक्रम भी खूब है नूर चाचा, ऐसा मालूम होता है कि हमारी आँखें मुँदने के बाद भी यह उसी चाल से चलता रहा है। बाकी सवार तो अभी गाजियाबाद में ही होंगे। थोड़ी देर रुक जाते हैं, इतने चिलम-विलम पीना चाहो तो पी लो।" घोड़ा मोड़ते हुए हनीफ ने तेज आवाज में कहा—"तानसेन, ओ मियाँ तानसेन······!"

राग के बीच में ही बाधा पड़ गई। तनिक झल्लाते हुए विक्रम बोला —"क्या है? क्या आफत है?"

—"बहुत-सी आफतें हैं। दिल्ली पास आ गई है। कुछ देर के लिये घोड़े से उतर जाओ।" हनीफ ने विक्रम के स्वर में ही उत्तर दिया।

नीचे उतरकर विक्रम ने तीन-चार स्नेह भरी थपकी घोड़े की गरदन पर देते हुए लगाम एक पतले-से ढाक के वृक्ष से उलझा दी। नूर के साथ दोनों सैनिक एक कोने में उकड़ूँ बैठे आग जलाने का यत्न कर रहे थे।

"—हैरत इस बात की है भैया कि एक गवैये ने तुम्हें अपना दामाद कैसे बना लिया। तुम्हारे सारे काम मसखुदों ऐसे होते हैं। कैसी सुन्दर प्रभाती चल रही थी······सत्यानाश कर दि-।। उतरना था तो उतर जाते, मुझे रोकने की क्या जरूरत थी?"

"विक्रम!" एक हाथ विक्रम के कंधे पर रखते हुए हनीफ ने कहा—"पच्चीस साल का तो तू जरूर होगा। पर अल्लाह जाने तेरा बचपना कब जायगा। कुछ देर बाद हम जमना किनारे पहुँच जायेंगे, कौन जाने क्या हो? क्या होगा,—इस सवाल का बोझ क्या तेरे दिमाग पर नहीं है?"

"ऐसे सवालों का बोझ कभी मेरे दिमाग पर नहीं रहता, जो हुआ वो देखा, जो होगा वो देखा जायगा। मेरे दिमाग में एक नया सवाल है कि सवाल के बोझ से तुम इतने क्यों दब गये कि प्रभात के सुहावने समय में भी तुम्हें गाना नहीं भाया। मानता हूँ कि जमना पार करने के लिये सिरों की बाजी लगानी पड़ेगी, हममें से कोई भी मर सकता है—शायद सभी मर जायें। मौत का कोई वक्त तो तय नहीं होता भैया, फिर चिन्ता काहे की?"

हनीफ कुछ और कहना चाहता था किन्तु न जाने क्या सोचकर उसने विक्रम का प्रश्न टालते हुए कहा—"बड़े अच्छे!" कंधा थपथपाते हुए वह मुस्कराया—"सलामत रहे यह जोश!"

आग जल चुकी थी। एक सैनिक ने आवाज दी—"आ जाओ हवलदार चिलम तैयार है।"

स्नेह से एक बार फिर विक्रम का कंधा थपथपाकर हनीफ उधर चला गया। विक्रम ने एक बार लय गुनगुनाकर पुनः प्रभाती छेड़ दी :—

औसर चूके, पुनि पछतावे,
हाथ मंजी सिर फोरी;
जागो भाई······!

सधे हुए अलाप में शब्दों की खींचतान के बावजूद मनमोहक शक्ति

थीं। बिना किसी ताल के प्रभाती के शब्दों को अपने राग में ढालकर विक्रम ने संगीत का अपना दैनिक अभ्यास आज भी पूरा कर लिया। इस दौर में उन चारों ने एक के बाद एक करके चार चिलम पी डालीं।

जब पाँचों सवार इस स्थान से चले तो दिन निकल चुका था। लगभग एक मील और चलने के बाद धरती की भूरी मिट्टी नीले रेत में बदल गई।

—"जमना पास ही है।" इतना कहकर हनीफ ने अपना घोड़ा एक छोटे-से टीले पर चढ़ा दिया। कुछ क्षण वह पूर्व और पश्चिम की ओर दृष्टि बाँधकर देखता रहा, फिर टीले से उतरकर बोला—"सवार आते दिखाई दे रहे हैं। मालूम होता है, रास्ते में कोई भी दुश्मन नहीं मिला जिससे मुठभेड़ होती। आओ, पुल की सीध में हो लें।" उत्तर की ओर घोड़ा हाँकते हुए हनीफ ने कहा।

—"जरा ठहरो, भैया।" विक्रम ने अपना घोड़ा आगे बढ़ाया—"मुझे आगे रहने दो, कुआँरे के जीवन का इतना मोल नहीं होता जितना कि ब्याहे का।" हनीफ के आदेश बिना ही विक्रम ने अपना घोड़ा सब सवारों से आगे बढ़ा दिया।

हनीफ हँस दिया—"अरे सुन तो विक्रम, हिण्डन पार करने के बाद राह में कोई मिला तो नहीं था।"

—"कोई नहीं मिला, हनीफ! भाभी की कसम है तुझे, घोड़ा पीछे ही रख। अरे हाँ, एक मिला तो था। एक काले से रंग का बूढ़ा मशाल जलाये जंगल में कुछ ढूँढ रहा था। सपेरा होगा कोई, या फिर चिड़ीमार था। देखते ही डर गया बिचारा...थर-थर काँपता हुआ आँखें मींचकर दोनों हाथ बाँध माथा नवाकर जाने क्या मन्तर का-सा जाप करने लगा। मुझे भी हंसी सूझी, चलते-चलते मैंने भी आवाज बनाकर कहा—"सुन रे, हम कोई जिन्न-भूत नहीं हैं। भगवान् के भेजे पाँच सवार हैं, फिरंगियों को देश से भगाने आये हैं। जो मिले उससे कह दीजो कि भगवान् का हुक्म है कि

इस धर्म की लड़ाई में जो फिरंगी की मदद करेगा या फिरंगी को पनाह देगा, उसका जन-बच्चा कोल्हू में पेल दिया जावेगा।"

—"खूब रही, फिर उसने क्या कहा?"

—"राम जाने फिर उसने क्या कहा? मैं तो कहता आया और चलता आया।"

आम सड़क आ गई। पश्चिम की ओर नौकाओं पर बना जमना का पुल साफ दिखाई दे रहा था। पूरब की ओर से बीस-पच्चीस सवार भी बढ़े आ रहे थे।

—"बस यहीं ठहरो, सौ पचास सवार इकट्ठे हो जायँगे तब पुल पार करेंगे।" हनीफ ने आदेश दिया।

—"नहीं भैया बढ़े चलो! दुश्मन को चेताना ठीक नहीं है।"

—"और अगर दुश्मन पहले से ही चेता हुआ हो तो?"

—"तो भी लाभ है, हमारी पाँच की ही तो जान जायेगी, हमारी दशा देखकर हमारे बाकी आदमी चेत जायेंगे। आ जाओ।" घोड़े को एड़ लगाते हुए विक्रम बोला।

बात हनीफ के भी समझ में आ गई। तेज चाल से पाँचों सवार पुल की ओर चल दिये।

पुल के पार हाथ में भाला लिये चुंगी का एक देसी सैनिक खड़ा था। सवारों को देखते ही उसने भाला ऊपर उठाते हुए कहा—"रोको!"

—"क्या है?" घोड़ा रोकते हुए विक्रम ने पूछा।

"जब तक साहब आकर हुक्म नहीं देगा, तुम आगे नहीं जा सकोगे?"

—"क्यों?"

—"हुक्म है।"

विक्रम अभी सोच ही रहा था कि बिना आज्ञा ही पीछे के दोनों सैनिक चुपके से घोड़े से उतरे, दबे पाँव आगे बढ़कर चुंगी वाले सैनिक को दबोच लिया। पलक मारते ही सैनिक सवारों के हाथों के ऊपर था और

उसका भाला जमना की धार में ।

—"क्या हुक्म है हवलदार ?" दोनों के मुँह से एक साथ एक ही बात निकली । उत्तर दिया विक्रम ने—"फेंको ससुर को जमना में ।"

आदेश के साथ ही दोनों ने सैनिक को हवा में उछाल दिया । सैनिक आठ-दस हाथ दूर बहाव में जाकर गिरा ।

—"आओ हनीफ, मालूम होता है तैरना जानता है, निकल आयेगा कुछ देर बाद······।" दूर छटपटाते सैनिक को सम्बोधित करके विक्रम चिल्लाया—"बच्चू, खैर चाहे तो घर चला जाइयो । हमने तो छोड़ दिया है, अगर अब भी साहब की नमकहलाली दिखाई तो मारा जायगा ।"

तभी चुंगी वाली झोंपड़ी में से एक व्यक्ति और बाहर निकला, किन्तु बाहर की परिस्थिति अनुकूल न देखकर पुनः घिघियाता हुआ झोंपड़ी में घुस गया।

सवारों का दूसरा दल पुल के दूसरे सिरे पर पहुंच चुका था ।

—"चले आओ ।" हनीफ ने हाथ से संकेत करते हुए जोर से आवाज लगाई और पाँचों सवार फिर चल दिये ।

सलीम बाग को पीछे छोड़कर पाँचों किले के सहारे-सहारे कुछ दूर चलते रहे ।

—"बस यहीं ठहरो ।" हनीफ ने घोड़ा रोकते हुए कहा—"ये जो सामने बड़ा झरोखा है, बादशाह यहीं से रिआया की सलामी लेते हैं ।"

लगभग तीस-पैंतीस सवार और इसी ओर बढ़े चले आ रहे थे ।

विक्रम ने म्यान से तलवार खींचते हुए ऊँचे स्वर में कहा—"बोलो, बादशाह की जय !"

—"बादशाह सलामत की जय !"

फिर जयकार बोली गई । अबकी बार लगभग चालीस कण्ठों ने एक साथ निनाद किया :—

—"बादशाह सलामत की जय ।"

—"हुजूर आलम पनाह की जय !"

जयकारों के गगन-भेदी उच्चारणों ने एक बार शाही किले के पास के नीरव वातावरण को गुँजा दिया।

: २ :

बूढ़े सम्राट् मुहम्मद बहादुरशाह अभी पूजा-गृह से लौटकर बैठकखाने में आकर बैठे थे।

—"बसंत !" मसनद के सहारे बैठते हुए अपने निजी सेवक को उन्होंने आदेश दिया—"देखो तो कैसा शोर है ?"

बसंत चला गया। बाहर खड़े अन्य सेवकों के अतिरिक्त इस समय बैठकखाने में कोई व्यक्ति उपस्थित नहीं था।

प्रातःकाल के इस एकान्त में सम्राट् अक्सर कविता किया करते थे। मिसरा गुनगुनाने का प्रयत्न भी किया, किन्तु अभी क्षण-भर पहले की घटना ने उन्हें कुछ विचलित कर दिया था। सामूहिक कंठों से आज बहुत दिन बाद उन्होंने अपनी जय-जयकार सुनी थी।

"बादशाह······आलमपनाह !"

सम्राट मुस्कराये, कौन है यहाँ बादशाह ? क्या मैं ? आवेश के कारण उनकी आँखें छलछला उठीं। इच्छा हुई कि वह स्वयं उठकर जायें और जय-जयकार करने वालों से कहें कि तैमूर के वंशज आज एक लाख रुपये महीने के बदले अपना सब-कुछ बेच चुके हैं। बाबर की वीरता, अकबर की नीति, जहाँगीर का न्याय और शाहजहाँ का कला-प्रेम सभी कुछ समय के साथ चला गया है। इसके बाद औरंगजेब की कट्टरता, शाह आलम की परवशता बदली और आज दिल्ली में जो कुछ बचा है वह फिरंगी का है। फिरंगी; नादिरशाह दुर्रानी से भी बड़ा लुटेरा था। उसने केवल एक बार

लूटकर, केवल एक बार कत्ले-आम करके, संतोष नहीं किया। वह सौ साल से लूट रहा है और खुदा जाने कब तक लूटेगा?

—"हुजूर, गजब हो गया।" बसंत खाँ के चेहरे पर भय और प्रसन्नता की संयुक्त मुद्रा थी—"मेरठ से कुछ सिपाही बगावत करके आये हैं। उनका कहना है कि कई हजार पैदल और घुड़सवार कुछ देर बाद ही यहाँ पहुँच जायेंगे। वे लोग आपके हुजूर में आकर फरियाद करना चाहते हैं। कहते हैं कि अंग्रेज हिन्दू और मुसलमान दोनों को ही ईसाई बनाना चाहते है। वे आपके हुक्म की इन्तजार में हैं।"

एक क्षण के लिए सम्राट् की आँखें चमक उठीं, मुगल-वंश का प्राचीन वैभव एक बारगी उनके सामने साकार हो उठा। एक बार वे उठकर सीधे खड़े हो गये और कुछ फासले पर रखी छड़ी को उठाने के लिए बसंतखां को संकेत किया।

किन्तु दूसरे क्षण······कठोर वास्तविकता ने सम्राट् को झंझोड़कर सचेत कर दिया। आवेशमय कम्पित स्वर में उन्होंने कहा—"बसंत फौरन, मुख्तार गुलाम अब्बास को बुलाओ।"

—"जहाँपनाह, सिपाही······!" बसंत अपने हृदय में उठते हुए उल्लास को शब्दों में व्यक्त करना चाहता था किन्तु वृद्ध शक्ति-भर चीख-कर बोले—"बसंत, फौरन जाओ!"

बसंत चला गया। सम्राट् पुनः बैठ न सके। डगमगाते पैरों और काँपते हुए हाथ में छड़ी सँभाले वह बैठक में ही इधर-उधर चलने लगे। उनकी आँखें भीग रही थीं, होठों को वह अनिच्छा पूर्वक दबाते जा रहे थे। न जाने क्या सोचकर उन्होंने सिर उठाकर ऊपर छत की ओर देखा, संभवतः इसलिए कि प्रभु उन्हें इस परिस्थिति में साहस दे······अथवा भविष्य की विपत्तियों से रक्षा करे!

किन्तु ऊपर कभी न पिघलने वाले पत्थर की छत थी। छत से दृष्टि हटी और दीवार पर लगे शाहजहाँ के चित्र पर अटक गई।

शाहजहाँ का उस समय का चित्र जब कि वह सत्ताधारी था, होठों पर गर्वीली मुस्कान, आँखें ऐसी मानो कोई दानी सहानुभूति का खजाना लुटा रहा हो, चौड़ा माथा मानो उसके पीछे केवल सौभाग्य के ह लेख हों। सम्राट् की इच्छा थी कि चित्र से दृष्टि हटा लें। किन्तु उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो उनके अन्तर में शाहजहाँ बोल रहा हो—"बहादुरशाह, विदेशी अत्याचारी को कभी क्षमा न करना। तुम मेरे वंशज हो, उठाओ इतिहास और देखो कि मैंने किस प्रकार हुगली के बन्दरगाह पर विदेशी लुटेरों का बेड़ा गर्क किया था।"

तब......और अब ?

सम्राट् की आँखों से टप-टप आँसू गिरकर सफेद सन-जैसी दाढ़ी को भिगो रहे थे।

बाहर से किसी के आने की आहट हुई। किन्तु सम्राट् अब भी चित्र की ओर ही देख रहे थे। आँखें पोंछने तक की उन्हें सुध न थी।

बसंत खाँ के साथ एक अधेड़ व्यक्ति आया। वह नीले रेशम का नीचा अंगरखा और सफेद रेशमी सलवार पहने था। खसखसी दाढ़ी वाले इस व्यक्ति के पास न तो म्यान और तलवार थी और न ही कोई अन्य हथियार था। बैठक में घुसते ही झुककर कोरनिस करते हुए उसने कहा—

"हुजूर बादशाह का इकबाल बुलन्द रहे।"

चित्र पर दृष्टि जमाए ही सम्राट् बोले—"मुख्तार साहब, कुछ सुना ?"

—"हाँ हुजूर, बसंत ने सब-कुछ बता दिया है।"

—"तब फिर डगलस साहब को यह खबर खुद जाकर पहुँचा आइये। किलेदार साहब से कहियेगा कि मैं उनके हुक्म का इन्तजार कर रहा हूँ... जाइये।"

मुख्तार गुलाम अब्बास कोरनिस करके चले गये। किन्तु बसंत खाँ वहीं अचल खड़ा था। क्रोध से उसकी आँखें लाल हो उठी थीं और नथुने फड़क रहे थे। अब सम्राट् ने चित्र से दृष्टि हटाई और दयनीय दृष्टि से

बसंत खाँ को निहारकर बोले—"नाराज हो, बसंत ?"

—"नहीं हुजूर, बन्दा ठहरा आपका गुलाम, नाराजगी तो इन्सानों का शुगल हुआ करता है—इस शौक से गुलामों का क्या ताल्लुक ?"

—"बसंत खाँ, होश की बातें करो। आज तुम्हारी जुर्रत कैसे हुई कि तुम इतना बेअदब जवाब दे सके। बाग़ी सिपाही अभी किले के बाहर हैं और तुमने अभी से मेरी बादशाहत खत्म समझ ली।" क्रोध से सम्राट् लड़खड़ाते हुए बोले।

किन्तु बसंत खाँ को तो आज नशा सवार था। उसकी मुख मुद्रा में परिवर्तन नहीं हुआ—"बे अदबी मुआफ आलीजहाँ, मैंने तो बागी सिपाहियों को देखकर बादशाहत की शुरुआत समझी थी······!"

—"चुप रहो!" चीखकर सम्राट ने कहा—"बागी सिपाहियों और फिरंगियों के बीच अपने को फँसाकर मैं शाही खानदान को तबाह नहीं करूँगा··········।"

—"शहंशाह, अगर इस बार चूके तो तैमूर का खानदान सदा के लिए दुनिया के पर्दे से उठ जायगा!" एक आवेश-भरी रौबीली आवाज ने बीच ही में बादशाह की बात को काट दिया।

सिर से पाँव तक काले कपड़े पहने एक व्यक्ति दरवाजे के बाहर खड़ा था। दृढ़ और विशालकाय, बड़ी-बड़ी अंगारे की भाँति सुर्ख आँखें।

—"हसन अस्करी !" वृद्ध सम्राट् आश्चर्य-चकित होकर उसकी ओर देख रहे थे।

—"हाँ, हसन अस्करी आपको खबरदार करने आया है कि इस तूफान की कामयाबी के लिए दुआ कीजिये। एक बार अपने आपको और शाही खानदान को भूल जाइये और उस मुकद्दस मुल्क की याद कीजिये जिसके बेटे आज आपके पास इन्साफ माँगने आये हैं। याद रखियेगा तैमूर के बेटों ने आज तक किसी के साथ बेइन्साफी नहीं की है।"

हसन अस्करी हवा के झोंके के समान आया था, और उसी प्रकार

चला गया।

सम्राट् संयत होने का बहुतेरा प्रयत्न कर रहे थे, किन्तु मन की उथल-पुथल के कारण वह बैठ भी नहीं पा रहे थे। कभी वह उत्तेजित होकर छड़ी के सहारे दो-चार कदम इधर-उधर चल-फिर लेते। किन्तु कुछ क्षण बाद ही वह शिथिल हो जाते, उनके चेहरे पर भय और आँखों में निराशा झाँकने लगती। रुक जाते, और सिर झुका लेते।

समय बीतता जा रहा था। बादशाह की जय के नारे अब फिर वायु-मण्डल में गूँज रहे थे।

—"हकीम एहसान उल्ला अभी नहीं आये?" कुछ समय बाद मौन भंग करते हुए सम्राट् ने बसंत के निकट जाकर धीमे स्वर में प्रश्न किया।

—"जी नहीं। हुक्म हो तो बुलवा लिया जाय?"

—"रहने दो, रहने दो······।"

बैठक के बाहर कुछ आहट हुई। बसंत ने कदम बढ़ाकर देखा और फिर अपने स्थान पर खड़े होते हुए कहा—"मुख्तार साहब के साथ किलेदार आ रहे हैं।"

—"हुँ · अच्छा···अच्छा हुआ।" होठों में ही सम्राट् बड़बड़ाये।

बैठक के बाहर से ही खड़े होकर अधेड़ किलेदार डगलस ने फौजी सलाम करते हुए कठोर स्वर में कहा—"बादशाह सलामत आपको घबराने का जरूरत नहीं, हम अभी बागी बदमाश लोगों को देखेगा। वैल मुख्तार साहब. किधर हैं वो बदमाश लोग?"

—"ठहरिये, मैं भी चलता हूँ।" सम्राट् के स्वर में धीमापन था।

—"नहीं, आप आराम कीजिये, कोई फिकर का बात नहीं है। हम बागी बदमाश लोगों को ऐसा सबक देगा कि वो जिन्दगी-भर नहीं भूलेगा।"

—"तब फिर आप भी अकेले मत जाइये। वे सब हथियार बन्द हैं। सिर्फ गारद को हुक्म भिजवा दीजिये की वह बागियों को यहाँ से

हटा दे।"

—"बादशाह सलामत, हमने कम्पनी को हुक्म भेजा है, सब-कुछ मामला ठीक है। अभी मुख्तार साहब के साथ जाता है, शोर बन्द कराने। उनके सामने हम नहीं जायेगा।"

मुख्तार गुलाम अब्बास को साथ लेकर कप्तान डगलस वहाँ पहुँचा जहाँ सम्राट् की जय के नारे पूरे किले को गुञ्जायमान कर रहे थे।

कुछ क्षण डगलस झरोखे के सहारे खड़ा नीचे मैदान में एकत्र सवारों को देखता रहा। फिर बोला—"वैल मुख्तार साहब, तुम उनके सामने जाकर उन्हें चुप करो। जब सब चुप हो जायें तो इन लोगों को बोलो कि तुम लोग बादशाह की बेइज्जती करता है। किधर खड़ा है तुम लोग? ये बादशाह के बेगम लोगों के रहने का जगह है। बादशाह से मिलना माँगता तो उधर दिल्ली दरवाजे की तरफ कोटला में जाओ। उधर बादशाह सलामत तुम लोगों का इंतजार करता है।"

अवाक् हो मुख्तार ने दृष्टि उठाकर डगलस की ओर देखा, किन्तु चतुर अंग्रेज ने मुख्तार को इतना समय नहीं दिया कि उसके अन्तर में हिन्दुस्तानी होने की भावना जाग उठे—"वैल जल्दी करो, उधर रेलिंग में जाकर हाथ उठाकर सबको चुप करो।"

उसी अटारी में जहाँ सम्राट् शाहजहाँ ने प्रजा के सम्मुख जाकर कितनी ही बार न्याय किया था। नीचे प्रजा सम्राट् के दर्शनों को एकत्र होती थी और ऊपर सम्राट् के हाथ दण्ड उन्हें न्याय और म्यान की तलवार उन्हें भय से मुक्त करती थी।

उसी अटारी में एक अंग्रेज कप्तान की आज्ञा से मुख्तार गुलाम अब्बास पहुँचे और अपना सीधा हाथ ऊपर उठा लिया।

सवारों के शांत होते ही मुख्तार गुलाम अब्बास ने डगलस का कथन दुहरा दिया। तीर निशाने पर बैठा, सवार आपस में विचार-विमर्श करने लगे। डगलस ने, जो अब भी झरोखे के कोने में दुबका खड़ा था, मुख्तार

को लौट आने का संकेत दिया।

—"सुनो हम जाता है, बादशाह सलामत को बोलो कि थोड़ी देर में सब ठीक हो जायगा।"

डगलस चला गया। मुख्तार भी बैठकखाने की ओर चला। उसके कदम मानो मन-मन के हो गये। अपने इस कृत्य पर उसे रह-रहकर पश्चाताप हो रहा था। उसके अन्तर में एक प्रश्न था--"क्या इन सवारों का खून मेरे ही सिर होगा?"

बैठकखाने के बाहर का दृश्य देखकर मुख्तार का रहा-सहा साहस भी जाता रहा। उसने देखा की शाही गुलाम बसंत की आँखों में बगावत झाँक रही है। शहजादा मिर्जा मुगल अपने पिता से स्पष्ट और तीखे शब्दों में कह रहा था—"बादशाह अब्बा, मैंने तय किया है कि मैं मेरठ के सिपाहियों का साथ दूँगा। चाहे मुझे इसके लिए सर की बाजी ही क्यों न लगानी पड़े। मेरठ के सिपाही कुचले नहीं जा सकते, डगलस के मक्कारी-भरे फरेब से सिर्फ इतना होगा कि उन नौजावानों को एक बार अपनी तलवार का जौहर शहर-पनाह के बाहर भी दिखाना पड़ेगा। अफसोस सिर्फ इसी बात का है कि जब वे सुनेंगे की बादशाह किले में होते हुए भी उनके सामने न आकर उनके दुश्मनों का साथ देते रहे, तब वे क्या सोचेंगे?"

—"शहजादे तुम किससे बातें कर रहे हो?" गुस्से से काँपते हुए मुख्तार चीख उठे।

—"बादशाह अब्बा से, आइये मुख्तार साहब मुझे आपसे भी बातें करनी हैं।" तलवार की मूठ पर हाथ रखकर घृणा-भरे स्वर में मिर्जा मुगल ने कहा—"फिरंगियों ने आपको न सिर्फ अपने कायदे-कानून सिखाये हैं बल्कि अपने फरेब भी बखूबी सिखा दिये हैं। आज बादशाह हुजूर से उनका फरजन्द सच्ची बात कह रहा है तो आप दिखावे की वफादारी दिखाकर जामे से बाहर हुए जा रहे हैं। तब आप कहाँ थे जब लार्ड एलनबरा ने कायदे-कानूनों को कूड़े के ढेर में फेंककर रहे-सहे बादशाही हुकूक छीन-

कर बादशाह अब्बा को आम शहरी से ज्यादा नहीं छोड़ा, और जवाब दीजिये कि आप अभी कुछ देर पहले कप्तान डगलस के साथ······ ।"

—"शाहजादे ।" मिर्जा मुगल की बात बीच ही में काटते हुए सम्राट् शांत स्वर में बोले—"अल्लाह जाने कि कौन-सा जुनून तुम्हारे सर पर सवार है, जिसकी वजह से बेकाबू होकर तुम बुजुर्गों की बुजुर्गी का भी लिहाज नहीं कर रहे हो। मुझे यकीन नहीं है कि इस वक्त तुम मेरा हुक्म मान लोगे, इसी डर से इल्तिजा करता हूँ कि यहाँ से चले जाओ, और हमेशा याद रखना कि मैं अपने सामने किसी भी बुजुर्ग को बेइज्जत होता देखना पसन्द नहीं करता। मुख्तार साहब मेरे दोस्त हैं ।"

—"जी बहुत अच्छा।" सम्राट् की इस बात से मिर्जा मुगल और भी कुपित हो उठा—"बेअदबी अगर हुई है तो माफी चाहता हूँ, साफ और खुले लफ्जों में कह रहा हूँ कि मैं उन लोगों का, जिन्हें मेरे बुजुर्ग बागी कह रहे हैं, साथ दूँगा।"

मिर्जा की त्योरियाँ अब भी चढ़ी हुई थीं। झुककर कोर्निस की, और चला गया।

—"आइये मुख्तार साहब।" शिथिलता के कारण काँपता हुआ हाथ आगे बढ़ाते हुए सम्राट् ने कहा—"कुछ नहीं कहा जा सकता कि किस्मत में क्या लिखा है? आइये अन्दर बैठेंगे। मैं महसूस कर रहा हूँ कि ये तूफान अब शायद तैमूर की औलादों को खाक में मिलाकर ही दम लेगा।"

—"घबराइये नहीं बादशाह सलामत।" आगे बढ़कर सम्राट् का हाथ दोनों हाथों में थामते हुए मुख्तार गुलाम अब्बास बोले—"कुछ देर बाद सब ठीक हो जायेगा। शाहजादे साहब की फिक्र न कीजिये, खुदा के फजल से अब वे भी सफेद बालों की दौलत के मालिक हो चुके, अलबत्ता कुदरत के कायदे के मुताबिक कभी-कभी आपके हुजूर में उनका बचपन जाग उठता है। लेकिन मुझे जरा भी शुब्हा नहीं है कि वे कोई गलत काम

करेंगे। सभी अपने बच्चों की खैर चाहा करते हैं, हमारे शहजादे बाल-बच्चेदार आदमी हैं।"

—"मैं जानता हूँ मुख्तार साहब, शहजादे की फिक्र मुझे नहीं है, लेकिन शहजादे के मन की बात अभी कुछ वक्त पहले हसन अस्करी भी दुहराकर गये थे।"

—"बेअदबी माफ हो हुजूर, मैंने आपको कई बार पहले भी सलाह दी थी कि हसन अस्करी बेकार दिखावे के अलावा कुछ भी नहीं है। मौके-बे-मौके आपको जो सेहत मिली है वह शाही हकीम साहब की दवाओं का असर है। रूहानी इल्म भला हसन अस्करी क्या जाने? शहजादी साहबा तो बच्ची थीं उसके बहकाये में आ गईं, लेकिन हुजूर को तो रूहानी खलीफा का खिताब खल्क ने बख्शा है, आपका और उसका क्या मुकाबला?"

—"छोड़िये भी मुख्तार साहब, दुनिया की बुराई-भलाई से क्या फायदा है। आइये अन्दर बैठक में बैठेंगे, बहुत तेज हवा है, हम बूढ़े शायद इसे बरदाश्त न कर सकें। बसंत, जरा देखो तो हकीम साहब अभी तक तशरीफ नहीं लाये। मिलें तो कहना, हम उनका बहुत देर से इन्तजार कर रहे हैं।"

सम्राट् की वास्तविक परवशता और हृदय में बैठे अज्ञात भय का निदान मुख्तार के पास नहीं था।

हवा तेज नहीं थी। प्रातःकाल का मन्द समीर भी सूर्य की झुलसा देने वाली किरणों के भय से भाग गया था। दूर जमना के पार···।

: ३ :

सिपाहियों में एक यही चर्चा थी, क्या कोटला चलें ?

अनेकों मत थे, फिर भी अनेकों कोटला फिरोजशाह चलने को सह-मत थे। हनीफ अपने इर्द-गिर्द जमा सवारों की कही बातों पर सोच रहा था।

किसी ने कहा था—"बादशाह भी हमारे साथ नहीं है, कोटला हमें इसलिए भेजा जा रहा है ताकि फिरंगी की फौज हमारा काम तमाम कर सके।"

—"जब ओखली में सिर दिया है तो मूसलों का क्या डर, फिरंगी की फौज से निपटना तो है ही चलो कोटला।"

अनेकों मुँह थे, अनेकों बातें थीं।

—"कहो विक्रम क्या करना है ?" पास खड़े विक्रम से हनीफ ने प्रश्न किया।

—"चलना तो होगा ही ?" हनीफ के प्रश्न का दृढ़ता-भरे स्वर में उत्तर देते हुए विक्रम ने कहा—"फिर बेकार देरी करने से क्या लाभ है ! आगे भैया तुम हवलदार हो, जो हुक्म दो !"

—"सुनो।" हवलदार हनीफ ने हाथ उठाकर सवारों को सम्बोधित किया—"किले से हमें पहला हुक्म कोटला फिरोजशाह जाने का मिला है। चलो, डर हमें किस बात का। अगर ये धोखा है तो हमारी तलवारों की धार कुन्द नहीं है, बादशाह सलामत के नाम पर जो हुक्म हमें दिया गया है, हमें उसे मान ही लेना चाहिए। किले के बाहर जो भी हमारा दुश्मन है उसकी अगवानी के लिए तलवारें म्यान से बाहर रक्खो। किले के अन्दर भी हमारे हमराही पहुँच चुके होंगे। सूबेदार गुलाब शाह अपने जवानों को लेकर मेरठ से रात का एक पहर बीतते ही रवाना हो गये थे। मुझे पूरा यकीन है कि वे किले के अन्दर पहुँच चुके हैं। आओ बहादुरो, बढ़े चलो !"

सम्भवतः सिपाही आदेश की ही प्रतीक्षा में थे। सभी ने घोड़ों का मुँह

दक्षिण की ओर मोड़ लिया । आगे-आगे हवलदार हनीफ और विक्रम थे, और पीछे...... सवारों की संख्या लगभग पाँच सौ हो चुकी थी ।

धीमी गति से कारवाँ कोटला फिरोजशाह की ओर बढ़ रहा था ।

अभी सवार किला भी पार नहीं कर पाये थे कि सामने से धूल उड़ती दिखाई दी । क्षण-भर बाद ही स्पष्ट हो गया कि सहस्रों सवार इसी दिशा में द्रुत गति से बढ़े चले आ रहे हैं ।

—"ठहरो।" घोड़ा मोड़कर हनीफ ने हाथ उठाते हुए कहा—"तलवारें म्यान से निकाल लो, बन्दूकची भी आगे आ जायें। रास्ता मत छोड़ो, फैल जाओ, किले की दीवार से जमना के किनारे तक, शाबाश एक भी दुश्मन बचकर न जा सके।"

—"हवलदार भैया, जरा पीछे जाकर मोर्चा ठीक करा दो, यहाँ मैं हूँ।" विक्रम ने हनीफ के निकट आकर धीमे स्वर में कहा।

हनीफ ने बात को हँसकर टाल देना चाहा। किन्तु विक्रम का निश्चय दृढ़ था। मेरठ से चलने के पूर्व ही उसने हनीफ से सौगन्ध ले ली थी कि जब कभी जान देने का अवसर पड़ा तो पहले विक्रम देगा और फिर हनीफ ! एक आश्चर्यजनक समझौता, किन्तु मानवीय स्नेह-सम्बन्धों की पराकाष्ठा का एक अनुकरणीय उदाहरण।

विक्रम ने हनीफ के उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की, रकाब में से पाँव निकाल कर उसने हनीफ के घोड़े के मुँह पर एक लात जड़ दी। फलस्वरूप घोड़ा तनिक बिदका और हनीफ के लगाम खींचते-खींचते भी आगे घुड़सवारों की भीड़ की ओर बढ़ गया।

—"हनीफ, देखो मर्द की जुबान एक होती है। कसम है तुम्हें दिल्ली वाली की, घोड़ा मत लौटाना।"

आगे बन्दूकची निशाना साधे तैयार थे। पीछे अन्य हवलदारों सहित हनीफ भालचियों को यथास्थान नियुक्त कर रहा था।

सामने की सेना के घुड़सवार अब अधिक-से-अधिक एक फर्लांग की

दूरी पर रह गये थे। विक्रम ने एक बार टकटकी बाँध कर उनकी ओर देखा, लगभग चार सौ सवार थे।

सेना तेज चाल से बढ़ी आ रही थी। अधिक निकट आने पर विक्रम के हर्ष की सीमा न रही। सारी सेना हिन्दुस्तानी थी, उनके साथ केवल एक फिरंगी था, विक्रम उसे भी पहचानता था। वह कर्नल रिपले था, जो अभी पिछले दिनों अपने लैफ्टिनेण्ट जवाँई का मेरठ में अतिथि होकर रह आया था।

विक्रम हाथ उठाकर फायर का आदेश देना ही चाहता था कि उसे दूसरी युक्ति सूझी। उसने एकदम सीधा हाथ उठा दिया। जिसका अर्थ था दोनों पक्ष शान्त रहें। घोड़े को एड़ मारकर वह दोनों सेनाओं के बीच जा खड़ा हुआ।

दोनों सेनाओं में पन्द्रह कदम का फासला था। और बीच में विक्रम खड़ा था।

—"कर्नल रिपले, सलाम!" कर्नल रिपले के ठीक सामने जाकर विक्रम ने मुस्कराते हुए कहा।

—"क्या माँगता है?" चीखते हुए दढ़ियल कर्नल ने कहा।

—"यही सवाल मैं तुमसे पूछना चाहता था कि तुम क्या चाहते हो? सुनो, ये मुल्क मेरा है, मेरे बादशाह का है, और ये जो आमने-सामने एक दूसरे पर निशाना साधे सिपाही खड़े हैं, मुल्क इनका है। तुम कौन होते हो यह सवाल करने वाले कि मैं क्या माँगता हूँ? क्या है तुम्हारे पास जो तुम मुझे दे सको।" निर्भय होकर मुस्कराते हुए विक्रम ने कहा—"मेरे घर से लूटा हुआ मेरा ही माल, क्यों बस यही है न तुम्हारे पास?"

—"हट जाओ!" कड़ाबीन विक्रम की ओर तानते हुए बूढ़ा कर्नल गुर्राया।

—"नहीं हटूँगा!" चीखकर विक्रम ने कहा—"सुनो दिल्ली वालों, मैं मेरठ से आया हूँ, और इसलिए आया हूँ कि इन फिरंगियों को हिन्दुस्तान

से बाहर निकाल दूँ। लो, मेरा सीना खुला है मारो गोली, जो हिन्दुस्तानी फिरंगियों का गुलाम बनकर रहना चाहता हो उठाये तलवार और उड़ा दे मेरी गर्दन……!"

दोनों ओर की सेनाओं में सन्नाटा था। कोई अपने स्थान से नहीं हिला।

—"फायर…… !" कर्नल फिर चीखा।

कर्नल के सिर पर मृत्यु मँडरा रही थी, अपनी सुध-बुध भूलकर वह पागल की भाँति कड़ाबीन साधकर बोला—"काले कुत्तो, मैं एक-एक को देख लूँगा।"

अपने सामने सधी कड़ाबीन को देखकर विक्रम न तो घबराया, और न ही उत्तेजित हुआ। शान्त स्वर में वह बोला—"कर्नल, होश में आओ। जिन्दगी बहुत बड़ी चीज है। तुम्हारे भले की बात कहता हूँ, मौत को चुनौती मत दो।"

"धाँय……!"

काँपते हुए हाथों से कर्नल ने कड़ाबीन दाग दी। विक्रम के बाएँ कन्धे से रक्त बह निकला। सचमुच कर्नल के सिर पर मौत मँडरा रही थी। एक क्षण भी नहीं बीता कि कर्नल के शरीर में एक साथ तीन तलवारें घोंप दी गईं। हिन्दुस्तानियों ने हिन्दुस्तानी होने का कर्तव्य निभा दिया। विक्रम के कंधे से बहने वाले खून का बदला रिपले के प्राणों से लिया गया, बदला लेने वाले वही हिन्दुस्तानी थे जिन्हें रिपले हिन्दुस्तानियों से लड़ाने आया था।

—"बादशाह की जय……आगे बढ़ो!" विक्रम ने पुकारकर कहा।

—"आगे बढ़ो, आगे बढ़ो!" कितनी ही आवाजें एक साथ वायु-मंडल में गूँज उठीं।

दिल्ली की सेनाओं ने घोड़ों के मुँह घुमा दिये। विक्रम घोड़े को बढ़ाकर सबसे आगे ले गया और तलवार को म्यान से निकालकर हवा में

हिलाता हुआ बोला—"जवानो, आगे बढ़ो !"

लेन-देन का कोई प्रश्न ही नहीं था, कोई समझौता भी मेरठ और दिल्ली के सैनिकों में नहीं हुआ। केवल हृदय की मूक भावना से प्रेरित दिल्ली और मेरठ के सिपाही एक होकर चल पड़े। किले की दीवार के पीछे से पाषाण के बने हुए राज-प्रासाद के स्थिर गुम्बद देख रहे थे कि तलवारों की छाँह में यमुना के दो किनारे मिले और मिलकर बढ़ चले।

तेज चाल से सवार बढ़े जा रहे थे। किला पीछे रह गया था।

—"विक्रम भैया, विक्रम !"

सेना से लगभग पन्द्रह-बीस कदम आगे घोड़ा दौड़ाते हुए विक्रम ने पीछे मुड़कर देखा कि हनीफ सवारों की पाँत से आगे निकलकर उसी की ओर बढ़ा चला आ रहा है।

—"ठहर विक्रम, देखें, छुर्रा अन्दर तो नहीं रह गया है ?"

किन्तु विक्रम ने घोड़ा रोका नहीं, अँगरखे के रक्त से सने भागको सिकोड़ कर छिपाने का प्रयत्न करते हुए उसने कहा—"छुर्रा-वर्रा कहीं नहीं है। हनीफ हवलदार, फुरसत में देख लेंगे। देखो तो भला, ये जो सामने बुर्ज दिखाई दे रहा है, कोई दरवाजा है क्या ?"

—"हाँ, यह राजघाट का दरवाजा है।"

—"तो फिर इसे ही खुलवा दो, हमें कोटला जिसलिए भेजा जा रहा था वह तो तुम समझ ही गये होगे। अब कोटला जाकर क्या करना है। रिपले तो खैर दूसरे लोक पहुँच ही गया है, फिर भी यह मुमकिन हो सकता है कि वहाँ जाकर गोरी सेना से और भी भिड़ना पड़े। कितना जबरदस्त धोखा दिया गया हमें बादशाह के नाम पर— मानो हम गाजर-मूली हों और फिरंगियों की तलवारों से कटने ही आये हों।"

हनीफ ने विक्रम की बात का कोई उत्तर नहीं दिया। अकेले विक्रम के क्या, सभी सिपाहियों के हृदय में यही बात थी। अलबत्ता रिपले की मृत्यु से उन्हें जो पहली सफलता मिली थी, उसकी प्रसन्नता ने यह

बात भुला दी थी।

दूर से ही राजघाट दरवाजे के ऊपर खड़ा प्रहरी सैनिक सेना के सम्मान में भाला नीचा किये और ऊपर हाथ उठाए अभिवादन कर रहा था।

न किसी ने कुछ कहा, न किसी ने कुछ पूछा। सेना के दरवाजे के निकट पहुँचते ही उल्लास से किलकारियाँ मारते हुए दरबानों ने दरवाजा खोल दिया। खून से भीगे कंधे को छिपाने का व्यर्थ प्रयत्न करते हुऐ फिरंगी शासन के प्रथम विद्रोही सवार विक्रम ने दिल्ली में प्रवेश किया, फिर हनीफ ने, और फिर दिल्ली और मेरठ के घुड़सवारों के सावन के घने मेघों के समान दल बादल ने।

—" किले की ओर चलो !" हनीफ ने आदेश दिया।

राजघाट के दरवाजे से सेना पुनः किले की ओर चल दी। किले के सामने बने खानम बाजार के दूकानदारों के मानो मेहमान आये हों। हिन्दू दूकानदारों ने तुरन्त ही लोटों और गंगा-सागरों में बताशे घोल-कर मीठा जल पिलाकर चलते सैनिकों का आतिथ्य किया। मुसलमान दूकानदार भी भला कैसे पीछे रहते। बाजार में जितने फल मिले, तरबूज, खरबूजे, ककड़ी और खिरनियाँ, सभी सैनिकों को भेंट किये। फल वालों के लिए आज त्यौहार का दिन था, अभी माल दूकानों में जँचाया भी नहीं था कि बिक गया।

विक्रम और हनीफ ने अभी न तो पानी पिया था और न ही कोई फल लिया था। जो भी उनके सामने आता वह पीछे संकेत कर देते।

आगे बढ़कर दिल्ली की सेना के नायक किले के देहली दरवाजे की ओर चले। कुछ सेना उनके पीछे चली गई। बाकी सेना किले के लाहौरी दरवाजे की ओर बढ़ी।

लाहौरी दरवाजे की ओर घूमते ही विक्रम मुस्कराया। मानो सिर के ऊपर रखा बोझ उतर गया हो।

—"हनीफ भैया, सूबेदार गुलाबशाह अव्वल रहे। मालूम होता है कि

टुकड़ी किले में पहुँच चुकी है। उधर देखो वह सामने अपने सफेद घोड़े पर चढ़े दूसरे सवार से बातें कर रहे हैं।"

—"दूसरे सवार को पहचानते हो?"

विक्रम ने याद करने का प्रयत्न किया कि सूबेदार गुलाबशाह के निकट खड़े सवार को कहीं देखा है क्या? भरा हुआ सुन्दर चेहरा, घनी काली दाढ़ी, बेशकीमती सुन्दर पोशाक।

—"याद नहीं पड़ता हवलदार!"

—"ये मिर्जा मुगल बेग हैं, सबसे बड़े शहजादे!"

—"ओह!"

हवलदार हनीफ ने पीछे के सवारों को आदेश दिया कि सूबेदार और शहजादे के अभिवादन के लिए तैयार रहे। स्वयं दोनों ने घोड़ों की चाल तेज करके उनके पास पहुँचकर सलाम किया।

प्रसन्न मुद्रा में सलाम का उत्तर देते हुए गुलाबशाह ने दोनों को रुकने का आदेश दिया—"कहो हवलदार, रास्ते में तो खैरियत रही।"

—"जी हजूर, सिर्फ शहर पनाह में दाखिल होने से पहले कर्नल रिपले की फौज का सामना हुआ।"

—"कर्नल रिपले?" मिर्जा और सूबेदार दोनों ही चौंके।

—"जी हूजूर, वह खेत रहे।" उनके साथ जितने भी सवार थे, सब हमारे साथ आ गये।"

—"लेकिन कर्नल रिपले को ·····।"

सूबेदार कह ही रहे थे कि हवलदार हनीफ ने बीच ही में बात काट-कर कहा—"हम कर्नल को जान से मारना नहीं चाहते थे।" विक्रम की ओर संकेत करके हनीफ कहता गया—"इस सिपाही की होशियारी की वजह से दोनों फौजों में मुकाबला होते-होते बच गया। अकेला यही कर्नल के सामने था, इसकी कामयाबी से कर्नल गुस्से से पागल हो उठा और बिना अञ्जाम की परवाह किये उसने गोली दाग दी। यह देखिये।"

हनीफ ने विक्रम की ओर संकेत किया, कंधे से लेकर छाती तक अँगरखा खून में भीगा हुआ था। घायल होने के बाद पहली बार विक्रम और हनीफ की आँखें चार हुईं। एकबारगी हनीफ सिहर उठा, उसने देखा कि किस प्रकार पीड़ा को आँखों में छिपाये विक्रम अब भी मुस्करा रहा है।

—"शाबाश जवान!" सूबेदार ने पूछा—"तुम्हारा नाम?"

—"विक्रम सिंह।"

—"शाम तक यह शहर फतह हो जायेगा, तब तुम्हें बाकायदा हवलदारी दी जायगी। हुजूर शहजादे, हमारी फौज कुसूरवार नहीं है। अंग्रेज अपनी शहजोरी के जुनून मे मर रहे हैं। जिस तरह किलेदार डगलस और रेजीडेण्ट फ्रेजर ने खुद फायर करके मौत को चुनौती दी, उसी तरह यह कर्नल भी मारा गया।"

—"हजूर।" हनीफ ने कहा—"हमारे सवार तो काफी फासले पर थे। कर्नल अपने ही आदमियों के हाथों मारा गया है।"

—"सब ठीक हुआ, इस जवान को तुम दीवाने-आम में ले जाओ। फौजी छावनी कुछ देर बाद अंगूरी बाग में कायम की जायगी। हमारे जवान अंग्रेजी मैगजीन पर कब्जा करने दरियागंज गये हैं। जैसे ही मैगजीन पर कब्जा होने की खबर मिलेगी, अंगूरी बाग में खेमे गाड़ दिये जायेंगे।" इतना कहकर सूबेदार ने विक्रम से स्नेह भरे स्वर में कहा—"जाओ बेटे, दीवाने आम में जाकर आराम करो, मालूम होता है कि छर्रा जिस्म में है। हिम्मत रखना, वहाँ जर्राह मौजूद है। छर्रा निकलने के बाद पट्टी होते ही आराम आ जायेगा। हवलदार वहाँ और भी जख्मी हैं, सबका ख्याल रखना। जाओ!"

सब सवारों को वहीं छोड़कर हनीफ और विक्रम ने किले के लाहौरी दरवाजे से किले में प्रवेश किया।

नौबतखाने के दरवाजे पर हनीफ ने घोड़े से उतरकर विक्रम को

उतरने में सहायता देने के लिए हाथ बढ़ाया तो विक्रम ने प्रयत्न किया कि वह जोर से हँसे। प्रयत्न विफल हुआ। फीकी मुस्कान सहित वह बोला—"क्या हुआ है मुझे? खूब हवलदार भैया, तुमने तो जैसे मुझे एकदम लौंडिया ही समझ रखा है। अरे ऐसे-ऐसे हजार घाव भी देह पर हों तो भी परवाह नहीं है।"

मस्तिष्क का संतुलन और हृदय का साहस व्यक्ति की महानता के द्योतक अवश्य हैं। किन्तु इन सबसे ऊपर वह लाल खून है जिससे सम्पूर्ण मानवीय ढाँचे का संचालन होता है। कहने को तो विक्रम यह सब कह गया था, मुस्कराता भी रहा। परन्तु अगर हनीफ सहारा न देता तो घोड़े से उतरना अब विक्रम के बूते की बात नहीं रह गई थी। घोड़े से उतरने के बाद उसने चाहा कि वह हनीफ का सहारा न ले। सहारा छोड़कर उसने चार कदम चलने का भी प्रयत्न किया।

पैरों में लड़खड़ाहट-सी प्रतीत हुई। फिर भी साहस करके उसने कदम बढ़ाया। तब उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो सामने की सब वस्तुएँ घूम रही हों। धीरे-धीरे सब-कुछ धुँधला हो गया। मस्तिष्क की चेतना मानो गर्त में धसती जा रही थी। दोनों हाथों से सिर थामकर बैठते हुए विक्रम ने पुकारा—"भैया!"

हनीफ जो घोड़ों को साईसों के सुपुर्द कर रहा था, विक्रम की ओर दौड़ा—

—"घबराओ नहीं विक्रम, अभी सब ठीक हो जायेगा। आओ चलें।" विक्रम के सीधे हाथ को अपनी गर्दन से लपेटकर हनीफ ने उसकी कमर में हाथ डालकर सहारा दिया।

तेज चलती हुई साँस को सम्भालते हुए विक्रम ने कहा—"घबरा तो नहीं रहा हूँ भैया, केवल इतना कहना था कि अब शायद तुम्हारे सहारे के बिना न चल सकूँगा।"

—"तो मैं हूँ किसलिए?" रुँधे कण्ठ से हनीफ ने कहा।

दीवाने-आम जहाँ किसी समय मुगल बादशाह जनता के सभी वर्गों के सामने देश की समस्याओं पर विचार-विमर्श करते थे, जहाँ देश की खुश-हाली में राग-रंग होते थे और विपत्ति के समय बादशाह और आम जनता के बीच गम्भीर और संकट से उभारने वाले निर्णय हुआ करते थे, आज उसी वैभव हीन दीवाने-आम में कुछ घायल सिपाही लेटे हुए थे।

—"आओ।" वृद्ध जर्राह ने आत्मीय ढंग से विक्रम को सहारा देते हुए हनीफ से पूछा—"क्या गोली लगी है?"

—'हाँ बड़े मियाँ शायद छर्रा अभी तक जिस्म में ही है।"

—"हुँ···खून शायद काफी बह गया है। चलो, इधर लिटा दो।"

एक मैले कालीन पर दोनों ने विक्रम को लिटा दिया। बूढ़ा जर्राह अपने औजार आदि सम्भालने लगा।

लेटने से तनिक विक्रम की चेतना भी जगी। आँखें मूँदे ही उसने धीमे स्वर में कहा—"पानी।"

बूढ़े जर्राह ने बिना बोले ही हाथ से संकेत करके हनीफ को बता दिया कि पानी वहां रखा है। हनीफ दौड़कर पानी ले आया।

पानी पिलाकर कटोरा एक ओर रखते हुए हनीफ ने कहा—"बस विक्रम, अभी बड़े मियाँ पट्टी कर देंगे, सब कुछ ठीक हो जायगा।"

—"जानता हूँ।" होंठों पर स्वाभाविक मुस्कराहट लाने का प्रयत्न करते हुए विक्रम बोला—"साध यह थी कि दिन में दिल्ली फतह करते और शाम को तुम्हारी ससुराल में मेहमान बनते। हनीफ, भाभी के दर्शनों की बड़ी इच्छा थी, परन्तु अब तो न जाने कब यह साध पूरी होगी।"

जर्राह अपने औजारों सहित आ बैठा। घाव के ऊपर से वस्त्र हटा कर उसने जमा हुआ खून साफ किया। पीड़ा से विक्रम पसीने-पसीने हो गया, जर्राह ने जब छर्रा निकालने के लिए घाव कुरेदा तो कुछ क्षण को इस भयंकर पीड़ा को भी वह सहन करता रहा। फिर वह अचेत हो गया

किन्तु उसने मुँह से आह नहीं की।

जर्राह ने छर्रा निकालकर घाव पर मरहम रखकर पट्टी कर दी। और फिर हनीफ से कहा—"खून काफी बह गया है, लड़का चेत में तो जल्दी ही आ जायेगा। लेकिन घाव के भरने में अभी कुछ दिन लगेंगे।"

तभी भयंकर धड़ाका हुआ। मानो हजारों तोपें एक साथ छोड़ी गई हों। कई जख्मी चीख मारकर बेहोश हो गये।

बूढ़ा जर्राह और हनीफ दीवाने-आम से बाहर यह देखने दौड़े कि क्या माजरा है ?

आसमान में धुएँ के भयंकर काले बादल छा गये थे।

वेदना-भरे स्वर में जर्राह ने कहा—"आजादी की लड़ाई में हिन्दुस्तानियों की पहली हार हुई। शायद हमारे आदमी मैगजीन पर कब्जा नहीं कर सके। फिरंगी मैगजीन को गारत करने में कामयाब हो गये।

: ४ :

मैगजीन के धमाके से मुहल्ला दरियागंज की कई इमारतें धराशायी हो गईं। मैगजीन के आसपास के मकानों में आग इतनी जल्दी फैली कि उसमें रहने वाले मकान की आवश्यक वस्तुएँ भी नहीं बटोर सके।

धमाके से पहले भी मुहल्ला दरियागंज के अंग्रेज निवासी यह खबर सुन चुके थे कि मेरठ के बागी सिपाही दिल्ली के करीब आ गये हैं, किन्तु उनकी दृष्टि में यह कोई नई बात नहीं थी। छोटे-मोटे झगड़े-फिसाद अक्सर होते रहते और फिरंगी सेना के अफसर उन्हें बड़े कौशल से निपटा भी देते थे। फलस्वरूप मुहल्ला दरियागंज के अंग्रेज निवासी पूर्ण रूप से आश्वस्त थे कि भविष्य में कभी भी ऐसा समय नहीं आयेगा। उनका यह दृढ़

विश्वास था कि हिन्दुस्तानी काले आदमी अंग्रेज गवर्नर-जनरल की प्रभु-सत्ता को चुनौती नहीं दे सकेंगे।

किन्तु मैगजीन के धमाके के साथ ही उनका यह दृढ़ विश्वास चूर-चूर हो गया। उन्हें आभास हुआ कि वे चारों ओर से हिन्दुस्तानी दुश्मनों से घिर गये हैं। सभी के हाथ पाँव फूल गये, किसी में भी इतना धीरज नहीं रहा कि शान्ति से बैठकर संकट का उपाय सोचें, अथवा घरों से बाहर निकल कर देखें कि क्या परिस्थिति है।

"भाग चलो!" सभी की जबान पर यह शब्द थे, किन्तु ऐसा करने का साहस भी किसी में न था। कहावत है कि विपत्ति के समय मनुष्य का मस्तिष्क साथ छोड़ दिया करता है। मूर्ख योद्धाओं की भाँति अंग्रेजों ने एक बड़ी इमारत की छत पर स्त्रियों और बच्चों को एकत्र किया और स्वयं उनके चारों ओर रक्षा-पाँत बनाकर नीचे आम रास्ते से गुजरने वाले हिन्दुस्तानी नागरिकों पर व्यर्थ ही अंधाधुन्ध गोली चलाना आरम्भ कर दिया।

इस इमारत से लगभग चार-पाँच मकानों के बाद एक अंग्रेजी हस्पताल था। इस हस्पताल के डाक्टर दीवानचन्द ने इंगलैंड से डाक्टरी पास की थी और अब वह केवल कहने भर को ही हिन्दुस्तानी था। दर असल वह किसी भी अंगरेज से अधिक अंगरेज था।

धमाके से पूर्व हस्पताल में अनेकों रोगी थे। किन्तु धमाका होते ही ऐसी भगदड़ मची कि डाक्टर दीवानचन्द के अतिरिक्त वहाँ केवल एक अधेड़ अंग्रेज ही रह गया।

धमाके के बाद भी वह अंग्रेज शान्त भाव से यथा स्थान बैठा रहा। इस भगदड़ में हस्पताल के नौकर-चाकर आदि भी भाग गये थे। बौखलाये-से डाक्टर दीवानचन्द ने सर्व प्रथम हस्पताल का मुख्य द्वार बन्द किया, फिर खिड़कियाँ, और यह सब करने के बाद किंकर्तव्य-विमूढ़-सा इधर-से-उधर टहलने लगा।

काफी देर तक वह अधेड़ अंग्रेज डाक्टर की शेखचिल्ली-जैसी हरकतें इतमीनान से अपने स्थान पर बैठा देखता रहा। लगभग धमाके से आधे घण्टे बाद उसने अंग्रेजी में शिष्टता पूर्वक कहा—"डाक्टर महोदय, क्या मैं आशा करूँ कि मुझे दवा मिल सकेगी ?"

डाक्टर चौंका, द्वार और खिड़कियाँ बन्द करने के बाद वह अपने आपको अकेला समझ रहा था।

—"आप···आप कब आये ?"

—"जी मैं तकरीबन डेढ़ घंटे से यहाँ हूँ, जिस समय धमाका हुआ था तब एक मरीज के बाद ही मेरा नम्बर था। धमाके के बाद आप कुछ उत्तेजित हो गये, ऐसी हालत में मैंने भी आपको अधिक परेशान करना उचित नहीं समझा। अब भी मैं आपको अधिक कष्ट नहीं दूँगा। कृपया दरवाजा खोल दीजिये ताकि मैं बाहर जा सकूँ।"

अभी कुछ देर पहले बन्दर की तरह उछल-कूद मचाने वाले डाक्टर का सामने एक सभ्य अंग्रेज को बैठा देखकर साहस बँधा। ढंग से कुर्सी पर बैठ कर उसने चिन्तित स्वर में कहा—"यही तो सवाल है कि अब आप बाहर कैसे जा सकेंगे। हिन्दुस्तानी फौजें बागी हो गई हैं।। खून के प्यासे पागलों के बीच से जाना मौत को दावत देना नहीं तो और क्या है ?"

शान्त भाव से अंग्रेज ने उत्तर दिया—"जो कुछ आप कह रहे हैं, अगर मैं उसे सही भी मान लूँ······?"

डाक्टर ने तमककर बात काटी—"मेरे कथन पर विश्वास न करने का अर्थ है कि प्रत्यक्ष दिखाई देने वाली वास्तविकता से आप इन्कार कर रहे हैं। प्रतीत होता है कि आप आजकल में ही हिन्दुस्तान आये हैं ?"

—"जी मैं बताता हूँ। मैं कह रहा था कि अगर मैं आपके कथन को सच भी मान लूँ तब भी मुझे आम हिन्दुस्तानियों के बीच जाना ही होगा। वैसे मैं हिन्दुस्तान में विगत चार मास से हूँ, और लगभग डेढ़ मास मुझे दिल्ली में रहते हो गया है। मैं एक साधारण-सा लेखक हूँ, कुछ उपन्यास

लिखे हैं, थोड़ी-बहुत कहानियाँ भी लिखी हैं। हिन्दुस्तान आया था एक उपन्यास लिखने, वैसे मेरी एक पुत्री भी यहाँ हिन्दुस्तान में ही है। शायद आप जानते हों घुड़सवार सेना के लैफ्टिनेण्ट जान ब्रिस्टी मेरे दामाद हैं ?"

—"ओह अच्छा, मिस्टर ब्रिस्टी को मैं जानता हूँ। बड़े अच्छे और हँसमुख नौजवान हैं......।"

—"मैं कह रहा था कि मैं हिन्दुस्तान में एक उपन्यास लिखने के इरादे से आया था। यों लिखना-पढ़ना तो होता ही रहता है, किन्तु कही-सुनी बातों के आधार पर मैं हिन्दुस्तान के जीवन सम्बन्धी जो अनुमान इंगलैण्ड से करके चला था, वह गलत निकले। हिन्दुस्तानी जनता के बीच रहकर जो कुछ देखा है उसीके आधार मैं आपके कथन पर विश्वास न कर पाने की धृष्टता कर रहा हूँ। परन्तु अगर आपका कथन सही भी है तब भी मुझे जाना ही होगा, कारण यह है कि कुछ आर्थिक कारणों के वश होकर लगभग दो महीने से मैंने इंगलैण्ड के एक दैनिक समाचार-पत्र के विशेष सम्वाददाता होने का उत्तरदायित्व भी अपने सिर पर ओट लिया है। क्या हो रहा है, यह जानने के लिए मुझे बाहर जाना ही होगा।"

—"किन्तु मित्र, जीवन का मूल्य इन समस्त कर्तव्यों से ऊपर है।"

—"सही है, दरअसल डाक्टर साहब अभी तक मैं यह नहीं समझ पाया हूँ कि मेरे प्राण क्यों संकट में हैं ? फौजी तथा सरकारी अंग्रेजों से आम हिन्दुस्तानी तथा सिपाहियों की लाग-डाँट हो सकती है। किन्तु मुझसे कोई क्यों दुश्मनी निकालेगा ?"

—"दुर्भाग्य की बात है कि आप आम हिन्दुस्तानी आदमी की प्रकृति से परिचित नहीं हैं। आपकी तो शकल से जाहिर है कि आप अंग्रेज हैं। मैं स्वयं हिन्दुस्तानी हूँ, फिर भी मैं अपनी रक्षा के विषय में चिन्तित हूँ।"

यह सुनकर वह अंग्रेज इतनी जोर से हँसा कि अस्पताल का चारों ओर से बन्द हाल गूँज उठा।

—"बहुत खूब, हमारी अंग्रेज जाति का भी जवाब नहीं है। देखिये न कितने लाजवाब मित्र बनाये हैं हिन्दुस्तान में, अंग्रेजों की मित्रता में वे यह भी भूल गये कि हम हिन्दुस्तानी हैं। खैर डाक्टर साहब छोड़िये इस फिजूल की बहस को, मैंने आपको कष्ट इसलिए दिया था कि तीन-चार दिन से कुछ पेट खराब है।"

अनमने ढंग से डाक्टर ने अंगरेज का निरीक्षण किया और पुन: अपने स्थान पर बैठकर रोजनामचे में नुस्खा लिखते हुए पूछा—"नाम ?"

—"आर० विक्टर।"

—"साधारण बात है, मेदे में तनिक गर्मी है।"

—"जी।"

दवा के नाम पर विक्टर को चार छोटी-छोटी पुड़ियें देते हुए डाक्टर ने कहा—"पानी के साथ लीजियेगा। सोच देखिये, अगर उपद्रव शान्त होने तक यहीं रह सकें तो ?"

—"धन्यवाद, डाक्टर साहब।" उठते हुए विक्टर ने कहा—"एक हितैषी के नाते मैं आपको सलाह दूँगा कि आपके ऊपर एक बहुत बड़ी सामाजिक जिम्मेदारी है, आप डाक्टर हैं और ऐसी परिस्थिति में आपका कर्त्तव्य है कि बिना शत्रु और मित्र का भेद किये आप घायल और बीमारों की निस्वार्थ सेवा करें। विशेषतया इस समय आपका हस्पताल खुला होना चाहिए। आप हिन्दुस्तानी हैं, और आज जैसा कि मैं देख रहा हूँ, हिन्दुस्तानी आज अपनी आजादी के लिए उठे हैं, स्वाधीनता के सैनिकों को जो भी सहयोग आप दे सकें, अवश्य देना चाहिए।"

डाक्टर चौंके। सन्देह उत्पन्न हुआ कि यह व्यक्ति या तो पागल है अन्यथा फिर कोई जासूस है। कोई भी हो, डाक्टर को उससे कोई भय नहीं था। जबसे होश सँभाला था तभी से वह इंगलैण्ड के धर्म से लेकर आचरण तक सभी वस्तुओं से प्रभावित थे। कुछ आर्थिक कारण अगर बाधक न होते तो अब तक वह कभी के ईसाई हो चुके होते।

—"मिस्टर विक्टर !" वह बोले—"मुझे आश्चर्य है कि आप-जैसा सम्भ्रान्त और शिक्षित अंग्रेज भी इतना गलत सोच सकता है। इस देश में जहाँ इस उन्नीसवीं सदी में भी आदिम युग की तूती बोलती थी आपकी जाति ने कितने परिश्रम से आधुनिक व्यवस्था लाने का प्रयत्न किया है। नागरिक अधिकारों से लेकर यातायात के साधनों तक में जो आश्चर्य-जनक क्रान्ति हुई है उसका श्रेय अंग्रेज जाति को ही है। ईमानदारी के साथ इन सब बातों पर जब कोई भी हिन्दुस्तानी व्यक्ति सोचेगा तब उसका हृदय अंग्रेज जाति के प्रति कृतज्ञता से भर जायगा। विद्रोह तो खैर पेशेवर गुण्डों का काम है। दयानतदार हिन्दुस्तानी स्वप्न में भी अंग्रेज जाति का अहित नहीं सोचेगा।"

—"बहुत खूब। हिन्दुस्तान में अङ्गरेजी राज्य आप-जैसे स्वामि-भक्तों के कारण ही स्थिर है डाक्टर साहब! खेद केवल इतना ही है कि आप अपनी रक्षा के लिए चिन्तित हैं, और मैं भी अब अधिक समय यहाँ रहना नहीं चाहता। फिर भी एक सवाल है, हिन्दुस्तान में अङ्गरेजों की जिन बरकतों को आप गिना रहे थे, कभी अवकाश के समय सोचियेगा कि यह सब अंग्रेजों ने क्यों किया है?"

डाक्टर कुछ कह ही रहा था कि विक्टर ने दरवाजे के निकट पहुँच-कर कहा—"मैं इस बात का उत्तर आपसे नहीं माँग रहा हूँ, आप केवल शान्त हृदय इस बात पर विचार करें।"

इतना कहकर विक्टर ने दरवाजा खोला और वह अंग्रेज-भक्त डाक्टर दीवानचन्द को अपनी रक्षा की चिन्ता में डूबा भीतर ही छोड़कर बाहर आ गया।

बाहर सभी तरफ सन्नाटा छाया था। पीछे से कभी-कभी बन्दूक छूटने की आवाज आ जाती थी। सामने मैगजीन तथा आस-पास के अन्य मकानों से अब भी लपटें उठ रही थीं।

विक्टर सीधा काश्मीरी दरवाजे जाने वाले जन-शून्य मार्ग पर चल

दिया। वह अभी पन्द्रह-बीस कदम ही गया होगा कि सहसा ठिठककर खड़ा हो गया। भयभीत होने का कोई कारण नहीं था। फिर? विक्टर को उसकी आत्मा ने ही कचोटा। 'घर क्यों चल दिये, इसलिए कि आज अङ्गरेज सुरक्षित नहीं है? डाक्टर झूठ थोड़े ही कह रहा था। प्राणों का मूल्य मानवीय सम्बन्धों से बहुत अधिक है?' विक्टर को ऐसा लगा मानो उसके ही शरीर के कण उसका उपहास कर रहे हों। भीषण अट्टहास के साथ सैकड़ों कंठों से जैसे एक ही बात निकल रही थी, "कायर!"

मैं और कायर? विक्टर मुस्करा दिया। तब, जब मैं कायर नहीं हूँ तो इस समय घर की ओर क्यों चल दिया? मानव में बने विभिन्न विभागों में बहस चली। हृदय ने कहा कि मस्तिष्क का दोष है, मस्तिष्क ने कहा कि मुझसे किसी ने पूछा था? क्षणिक वाद-विवाद के बाद सभी निर्दोष सिद्ध हुए। दोष केवल पैरों का था।

मुस्कराता हुआ विक्टर जन-शून्य प्रमुख मार्ग को छोड़कर जामा मस्जिद की ओर चल दिया। उसका हृदय अपनी विजय पर प्रसन्न था। जामा मस्जिद तक कोई परिचित नहीं मिला, किन्तु किसी अपरिचित ने भी उसकी ओर उँगली नहीं उठाई। जामा मस्जिद के बाद वह पुनः गली कूँचों में ही चलता रहा। कई परिचित भी मिले, दुआ-सलाम भी हुई, वैसे ही जैसे पहले होती थी।

एक साधारण-सी हवेली के सामने विक्टर रुका। खुला दरवाजा खट-खटाते हुए उसने पुकारा—"मिर्जा अब्दुल्लाह खाँ साहब!"

कोई उत्तर नहीं मिला। उसने फिर आवाज दी—"मिर्जा साहब!"

अब की बार दरवाजे के पीछे लगा पर्दा हिला, किसी स्त्री कंठ ने उत्तर दिया—"सुबह सैर को गये थे, अभी तक लौटे नहीं हैं। बैठक खोले देती हूँ। आप तशरीफ रखिए।"

विक्टर कुछ कह ही रहा था कि कहीं दूर से आने वाले सितार के तारों के झनझनाने की मद्धिम-सी स्वर लहरी ने उसका निश्चय बदल दिया।

—"जी रहने दीजिये, मैं उस्मान खाँ साहब के पास चलकर बैठता हूँ। मिर्ज़ा साहब आयें तो कहियेगा कि खाँ साहब के यहाँ विक्टर आपका इन्तजार कर रहा है।"

—"जी बहुत अच्छा।" उत्तर मिला।

विक्टर मिर्ज़ा असदुल्लाह खाँ की हवेली से आगे की ओर चला, जहाँ सितार बज रहा था। पाँच मकानों के बाद एक छोटे किन्तु सुन्दर बने मकान की बगल में बनी बैठक के सामने वह रुक गया। अन्दर बैठक में देसी कालीन बिछे थे और चारों ओर स्वच्छ मसनदें लगी हुई थीं। एक पचास-पचपन साल का अधेड़ व्यक्ति, जो उम्र के लिहाज से अधिक बलिष्ठ और सौम्य प्रतीत होता था, एकाग्र चित्त से सितार बजा रहा था। अपनी धुन में वह स्वयं इतना मस्त था कि विक्टर काफी देर तक बाहर दरवाजे पर खड़ा रहा परन्तु वादक उसे देख नहीं पाया।

सितार की धुन में ज्यों-ज्यों तीव्रता आ रही थी वादक की उंगलियों के साथ साथ सिर भी तीव्र गति से झूम रहा था। जैसे ही एक बार सिर उठाकर वादक ने दरवाजे की ओर देखा कि उसकी उँगलियाँ अपने-आप ही रुक गई।

मुस्कराते हुए वादक ने कहा—"अस्सलाम वालेकुम मियाँ विक्टर साहब, तशरीफ लाइये!"

—"वालेकम अस्सलाम उस्मान खाँ साहब!" बैठक के द्वार पर जूता उतारकर उस्मान खाँ की ओर हाथ बढ़ाते हुए विक्टर ने कहा—"मिजाज शरीफ······।"

—"नवाजिश है आपकी, जाने कब से जनाब की सवारी बाहर खड़ी थी। अन्दर क्यों नहीं चले आये, आवाज ही दे देते। क्या अर्ज करूँ।" सितार एक ओर रखते हुए उस्मान खाँ ने कहा—"ये कम्बख्त दिलफरेब तार जब बजने लगते हैं तो दीन-दुनिया की खबर ही नहीं रहती, और ये उँगलियाँ भी जब तक रोज की कसरत पूरी नहीं कर लेतीं तब तक चैन

ही नहीं लेतीं। सुबह किले गया तो फ़िज़ा गड़बड़ की वजह से कोई शहज़ादा आज रियाज करने की फ़ुरसत में नहीं था। वहाँ से ज़ुबैदा के कोठे पर गया तो उसकी बेटी मुनव्वर ने भी यही जवाब दिया कि खाँ साहब, आज रियाज करने का दिन नहीं है, आज तो दिल्ली की क़िस्मत का फ़ैसला होने वाला है, जाकर आराम कीजिए। घर चला तो आया, लेकिन इन उँगलियों की तड़पन का इलाज नहीं हुआ था, इसलिए मजबूरन छेड़ बैठा। फातिमा······बेटे फातिमा!" बात समाप्त होते ही उस्मान खाँ ने आवाज दी।

—"जी अब्बा साहब!" आवाज आई।

—"आ जाओ बेटा, पर्दा कैसा? यह तो तुम्हारे चचा विक्टर साहेब हैं, मेरिया के अब्बा······।"

—"सलाम चचा जान!" लगभग इक्कीस वर्ष की सुन्दर तरुणी ने बैठक के अन्दर वाले दरवाजे का पर्दा हटाकर विक्टर का अभिवादन किया।

—"जीती रहो बेटी!" विक्टर ने पूछा—"अच्छी तो हो?"

—"जी आपकी नवाजिश है।"

—"फातिमा, दूध लाओ बेटा! देखना एक गिलास में खाँड कम डालना, तुम्हारे चचा न तेज मिर्च खा सकते हैं और न तेज खाँड पी सकते हैं।"

—"उस्मान खाँ रहने दीजिये। कई रोज से पेट में गड़बड़ चल रही है, सोचता हूँ कि आज बिना कुछ खाये-पिये ही रहूँ।"

—"अमाँ छोड़ो यार, दिल्ली आये हो तो यहाँ के खान-पान का भी मजा लो। याद करोगे इंगलैण्ड जाकर कि दुनिया में एक दिल्ली भी है, जहाँ के बाशिन्दे अनाज का सही इस्तेमाल जानते हैं। सुनो बेटा, दूध तो ला ही रही हो उसके बाद दोपहर का खाना ऐसा बनना चाहिए कि तुम्हारे चचा की पेट की खराबी दूर हो जाय।"

—"जी !" शिष्ट भाव से फातिमा ने कहा और चली गई।

—"उस्मान साहब," फातिमा के जाने पर विक्टर ने पूछा—"कितनी लड़कियाँ हैं आपकी ?"

—"बस विक्टर साहब, एक यही है। लड़की कहिए या लड़का, जो कुछ भी है, बस यही है।"

—"दरअसल मेरिया कुछ और नाम बता रही थी...शायद......।"

—"इसका असल नाम तो फातिमा ही है। वैसे जब यह पैदा हुई तभी कम्बख्त दाई ने इसका नाम 'हसीना' रख दिया। हालत यह है कि सारे मुहल्ले की औरतें, ससुराल में शौहर तक, सभी इसे हसीना कहते हैं। मौलवी का रखा नाम 'फातिमा' समझिये कि मैं ही लेता हूँ। मेरी आँखें मूँदते ही लड़की का नाम हसीना ही होकर रह जायगा।"

"और मैं अब तक यही समझे था कि आपकी दो लड़कियाँ हैं; मेरिया अक्सर हसीना की ही बात किया करती थी।"

बात बीच में ही बन्द हो गई। दूध के दो गिलास लिये हसीना बैठक में आई। एक गिलास विक्टर की ओर बढ़ाते हुए उसने कहा—"चाचा जान, मेरिया बहन वायदा करके गई थी कि हफ्ते में एक बार जरूर मिलने आया करेंगी, लेकिन एक महीने से ज्यादा गुजर चुका है, उनसे कहियेगा कि मैं उनकी बे-मुरोवती से नाराज हूँ।"

—"जरूर कह दूँगा।" विक्टर बोला—"वैसे मेरिया कुसूरवार है नहीं, अक्सर वह तुम्हारी बात करती है। लेकिन दिल्ली की पेचीदा गलियों में अकेली आकर तुम्हारा मकान ढूँढ़ ले इतनी अक्ल उसमें नहीं है। किसी दिन फिर उसे अपने साथ ही लाऊँगा, वैसे वह कल शाम से किलेदार डगलस के यहाँ है।"

दूध के गिलास देकर हसीना चली गई। उसके जाते ही गम्भीर होकर उस्मान बोले—"भई ऐसी गड़बड़ के मौके पर लड़की को डगलस साहब के यहाँ नहीं छोड़ना चाहिए था ?"

—"कल शाम तो सब ठीक-ठाक था। दर असल मिस्टर डगलस की पत्नी से मेरिया का पुराना मेल-जोल है।" इतना कहकर विक्टर कठोर मुस्कराहट सहित बोला—"उस्मान खाँ साहब, हमारी कौम ने हिन्दुस्तानियों के साथ जो सुलूक किये हैं कौम को उसका बदला तो चुकाना ही पड़ेगा। हो सकता है कि किसी के किये का बदला किसी को देना पड़े, मैं या मेरिया शायद हम दोनों में से भी किसी को······।"

—"विक्टर साहब, कैसी बातें कर रहे हैं। आपने और उस सीधी-सादी लड़की ने किसी का क्या बिगाड़ा है। अब यहीं आराम कीजिए मैं किले में जाकर डगलस साहब के यहाँ से लड़की को ले आता हूँ।"

—"परेशान होने की क्या बात है। बात आ गई तो कह दी, वरना मेरिया चाहे जहाँ भी हो, मैं जानता हूँ कि उसका बाल भी बाँका नह होगा। उस्मान साहब मैंने हिन्दुस्तानियों के बारे में बहुत-कुछ सुना है और बहुत-कुछ देखा है। सर टामस रो से लेकर लार्ड एडनबरा तक सभी हिन्दुस्तानियों के लिए अँग्रेजों ने जितने जाल बिछाये हैं, वे किसी भी दृष्टि से क्षम्य नहीं है। किन्तु फिर भी हिन्दुस्तानी जाति इन सबका बदला किसी निर्दोष अँग्रेज पुरुष या स्त्री से नहीं लेगी। हिन्दुस्तान बुद्ध और अशोक का मुल्क है, यहाँ रहीम खानखाना-जैसे सिपाही पैदा हुए हैं जिनके हाथ में तलवार अवश्य थी लेकिन दिल में दया और ममता खजाना भरा पड़ा था। अरे हाँ, एक बात याद आ गई, असदुल्लाह खाँ साहब ने अपना उपनाम काफी शायरी कर लेने के बाद बदला मालूम होता है, कल रात मैंने इनकी कुछ गजलें पढ़ी जिन्हें उन्होंने 'असद' के नाम से लिखा है।"

—"जी हाँ, पहले इनका तखल्लुस 'असद' ही था। गालिब के नाम से तो अभी कुछ साल से ही लिखने लगे हैं। यह भी एक मजेदार वाकया था, 'असद' उपनाम से लिखने वाला एक शायर और भी था। उसका एक मक्ता नौशा मियाँ की शायरी के किसी आशिक ने किसी से सुना। मक्ता

उसे कुछ हल्का जँचा, आया वह नौशामियाँ के पास,

असद तुमने बनाई यह गजल खुब
अरे ओ शैर रहमत हैं खुदा की।

मक्ता सुनाकर उसने पूछा—"नौशामियाँ क्या यह आपका मक्ता है?"

मक्ता ऐसा भौंडा था कि नौशामियाँ चिढ़कर बोले—"मियाँ कैसे आदमी हो तुम, ताज्जुब है कि तुम्हें शक कैसे हुआ कि यह मेरा मक्ता है। शक की गुञ्जाइश तब थी जब कि मक्ता इस तरह होता—

असद तुमने बनाई यह गजल खूब,
अरे ओ शैर लानत है खुदा की।"

बस वह दिन तो नौशामियाँ ने किसी तरह गुजारा, लेकिन रात को जो गजल कही उसका तखल्लुस 'असद' की बजाय 'गालिब' था।

—"लानत है खुदा की, बहुत खूब। उस्मान साहब इस शहर में आम तौर से लोग उन्हें नौशामियाँ कहते हैं, जब कि हिन्दुस्तान के दूसरे शहरों के शायर उन्हें गालिब या असदउल्लाह खाँ गालिब के नाम से ही जानते हैं।"

—"मुसलमानों में नौशामियाँ दामाद को कहते हैं। चूँकि नौशामियाँ दिल्ली के दामाद हैं इसलिए दिल्ली के हिन्दू-मुसलमान छोटे-बड़े सभी उन्हें नौशामियाँ कहते हैं। वह हमारे मुल्क का आम रिवाज है विक्टर साहब कि एक घर का रिश्तेदार पूरी बस्ती का रिश्तेदार समझा जाता है।"

विक्टर कुछ बोला नहीं, इंग्लैंड में बाजीगरों और साँपों का देश कहलाने वाले हिन्दुस्तान को अब वह अपनी आँखों से देख चुका था। वह सोच रहा था कि आर्थिक स्वार्थों में लिप्त होकर उसकी जाति कितनी पतित और ढीठ हो गई है।

हिन्दुस्तान वह देश है जहाँ के मानवीय सम्बन्ध चरित्र और संस्कृति अनुकरणीय हैं।

: ५ :

दोपहरी ढल रही थी, और सूर्य सिर के ऊपर से हटकर पश्चिम की ओर बढ़ रहा था। सम्राट् अभी तक बैठकखाने में ही थे। शान्त और उदास भाव से मसनद के सहारे बैठे थे। पल-पल में होने वाली घटनाओं का ब्यौरा उनके खास मुसाहिब मुख्तार गुलाम अब्बास और हकीम एहसान उल्ला आते और सुना जाते। प्राप्त समाचारों पर सम्राट् मौन ही रहते, मानो आज उपवास का दिन हो और उपवास की सार्थकता के लिए मौन रहना आवश्यक हो।

उसी समय सम्राट् के समधी और उनके खास मुसाहिब मिर्जा इलाही बख्श ने आकर दरे-दौलत पर कोरनिस की। उस समय हकीम एहसान उल्ला अंगूरी बाग में सूबेदार गुलाब शाह से मिलने गये थे, और मुख्तार गुलाम अब्बास उन अँग्रेज स्त्रियों और बच्चों के रहने की व्यवस्था करने गये थे जिनके संरक्षक हिन्दुस्तानी सिपाहियों के मुकाबले में युद्ध करते हुए मारे गये थे।

शाही गुलाम बसंत खाँ मिर्जा इलाही बख्स को देखते ही क्रोध से जल उठा। उसके ओठ घृणा से सिकुड़ गये और हाथ अनजाने ही तलवार की मूँठ पर चला गया, किन्तु इसके अधिक करना चाहने पर भी वह कुछ नहीं कर सका। गर्म हवा के एक तेज झोंके ने मानो उसे सचेत किया कि वह इन्सान नहीं गुलाम है।

—"जिल्ले सुभहानी······। इस कदर उदासी क्यों है, हुजूर के दुश्मनों की तबियत तो·········।"

—"ठीक है इलाही बख्श बैठो। कप्तान डगलस और फ्रेजर साहेब मारे गये, कोशिश करने के बाद भी हम उन्हें नहीं बचा सके। उनकी मौत के बाद हमने महसूस किया कि हम बूढ़े हो चुके हैं, और किसी के मारने या बचाने की कुव्वत हममें नहीं है। सुना है कि मैगजीन उड़ा दी गई फिरंगियों और बागी सिपाहियों में जंग हुई, फिरंगी खेत रहे और शहर पनाह दिल्ली से बाहर चले गये। बागी सिपाहियों ने अंग्रेजी बैंक पर

कब्जा कर लिया है, और अंगूरी बाग में अपने खेमे में गाड़ दिये हैं। हम किसी से क्या कहें, ऐसे मजबूर हैं कि न किसी का साथ दे सकते हैं और न ही किसी का साथ छोड़ सकते है। हकीम साहब बागी सिपाहियों के अफसरों से मिलकर उनके इरादे जानना चाहते थे, हमने न उन्हें जाने का हुक्म दिया और न जाने से रोका। मुख्तार साहब अँग्रेज औरतों और बच्चों को महफूज रखना चाहते थे। हमने उनके इरादे में भी दखल नहीं दिया। अब आप जो करना चाहें करें हम आपको भी नहीं रोकेंगे।" एक साँस में ही सम्राट् यह सब कह गये। बैठक खाने में फिर खामोशी छा गई।

अंग्रेज अफसरों के विशेष प्रिय और विश्वास-पात्र मिर्जा इलाही बख्श इसलिए आये थे कि बागियों के खिलाफ शहन्शाह का लिखित आदेश प्राप्त करके कमाण्डर इन चीफ तक पहुँचा दें। ताकि उन्हें बादशाह को बागियों से विमुख करने का श्रेय प्राप्त हो सके। परन्तु किले में आते ही उनके साहस को ग्रहण लग गया था। सभी शहजादे तथा अन्य राज-कुल के व्यक्ति एक बार पुनः मुगल वैभव स्थापित होने का स्वप्न देख रहे थे। सभी बागियों के पक्ष में थे और सभी के मुँह पर एक ही बात थी, अंग्रेजों से युद्ध होगा। हिन्दुस्तानी विजयी होंगे। देश पर एक बार फिर बादशाह की सत्ता स्थापित होगी।

किसी व्यक्ति से इलाही बख्श अपनी बात कहने का साहस न कर सके। अभी तक उनकी आशा बादशाह पर केन्द्रित थी किन्तु बादशाह पर छाई रहस्यमय और विस्मयजनक निराशा देखकर इलाही बख्श समझ नहीं सके कि अपनी बात किस ढंग से कहें।

किसी प्रकार साहस बटोरकर मिर्जा बोले—"मुझ नाचीज के जिन्दा रहते शहन्शाह गमगीन न हों। यह बवण्डर चन्द रोजा है, जल्द अमनो-अमान कायम हो जायगा·········।"

मिर्जा की बात बीच में ही काटी बादशाह ने—"मिर्जा बवण्डर और

तूफान की बातें छोड़ो। यह जिन्दगी ही चन्द रोजा है। क्या खूब है इन्सानी फितरत भी, बूढ़ा हो गया हूँ, न जबान में ताकत है, न बाजुओं में फिर भी मरना नहीं चाहता, डर लगता है।"

—"मरें हुजूर के दुश्मन, खुदा आपका साया हमेशा मुल्क पर बनाये रक्खे, क्या बात है? मैं कोई गैर नहीं हूँ आलम पनाह दिल की कहिये, आपके हुक्म पर इलाही बख्श बिना हुज्जत के सर कटवा देगा।"

—"हम तुमसे कोई बात छुपा नहीं रहे हैं मिर्जा, हमें किसी से कोई शिकायत नहीं है। फिरंगी तुम्हारे बादशाह के बादशाह हैं।"

—"हुजूर।"

—"हकीकत यही है मिर्जा, फिरंगी तुम्हारे बादशाह के बादशाह हैं और ये बागी सिपाही तुम्हारे बादशाह के बच्चे हैं। मुगल बादशाहों ने हमेशा रिआया को अपनी औलाद समझा था, हम बादशाह तो नहीं रहे, लेकिन आज भी अपनी रिआया का दिया खाते हैं। बस यही सोच रहे हैं कि क्या करें? कमजोर और काँपते हुए हाथों में तलवार उठाकर किसकी तरफ खड़े हों, अपने बादशाह की तरफ या अपनी औलादों के साथ। शायद यह फैसला भी हम कर डालते अगर बाजुओं की रगों में खून होता, जबान में ताकत होती, कदमों में कुव्वत होती। काश, कुछ भी हमारे पास होता।"

वातावरण में पुनः मौन छा गया। क्या कहें, किस तरह सम्राट् के मन का भेद जानें? मिर्जा इलाही बख्श इसी चिन्ता में लीन थे कि हकीम एहसान उल्ला बैठक खाने में आये।

सम्राट् अब भी पूर्ववत् मौन ही रहे। कुछ क्षण बाद हकीम साहब बोले—"हुजूर, एक बार दीवाने-खास तक चलने की जहमत फरमायें। मैंने बागी अफसरों को बहुत समझाया लेकिन उनके सिरों पर जुनून सवार है वे आपसे रूबरू होकर बातें करना चाहते हैं।"

सम्राट् ने निराशा-भरे स्वर में कहा—"हमसे क्या मिलेगा उन्हें? कह

दो जो चाहें करें ?"

—"कौन कहे, शहजादे मिर्जा मुगल इन अफसरों के साथ हैं। उनके अलावा किले के किसी भी आदमी का उन्हें एतबार नहीं है। हुजूर एक बार उनके सामने जाकर जो चाहें कह दें।"

—"नहीं जिल्ले-सुभहानी।" मिर्जा इलाही बख्श मानो नींद से जगे—"आप सिर्फ तहरीर फर्मा दीजिए कि बागी सिपाही दिल्ली की शहर-पनाह से बाहर चले जायें। हुजूर इन बागियों ने बरसों अँग्रेजों का नमक खाया है, जब उनके ही वफादार नहीं हुए, तो क्या शाही खानदान की वफादारी को निभा सकेंगे ?"

—"मिर्जा साहब, इसका मतलब यह हुआ कि मैं बादशाह-सलामत को बागियों के साथ मिल जाने की सलाह दे रहा हूँ। घर में आराम फरमा रहे थे न, इसलिए उस मुसीबत का अहसास आपको नहीं है जो आज कहरे-खुदा बनकर शाही खानदान पर नाजिल हुई है। आइये मेरे साथ, और बागी सिपाहियों और उनके अफसरों से बातें कीजिये, आज वही लोग दिल्ली पर काबिज हैं, पूरे किले पर वह कब्जा कर चुके हैं। उनके सामने जाने का हौसला है जनाब में ?"

—"हकीम साहब......!" गुस्से से लाल होकर मिर्जा कह रहे थे कि हकीम साहब फिर बोले—"मिर्जा साहब, आपको अपने अलफाज लौटाने होंगे।"

—"आप लोग आपसी झगड़ा बन्द कर दीजिये।" उठते हुए सम्राट् बोले—"हम क्या करें, यह आप दोनों हम पर ही छोड़ दीजिये। बसंतखाँ, हम दीवाने-खास में जायेंगे।"

बैठकखाने के दरवाजे पर खड़े बसंत के चेहरे पर हर्ष की रेखायें उभर आईं। दौड़कर वह दीवाने-खास तक पहुँचा और शाही महल की दिशा वाले दरवाजे का पर्दा हटाकर बोला—"बाअदब, बामुलाहिजा...!"

दीवाने-खास में मेरठ की सेना के लगभग बीस अफसर, लगभग इतने

ही दिल्ली की सेना के, तथा मिर्जा मुगल सहित समस्त शहजादे उपस्थित थे। बसंत के आवाज लगाने से पहले वहाँ काफी शोर था, किन्तु अब पूर्ण शान्ति छा गई। सभी व्यक्ति नीची दृष्टि करके यथा स्थान खड़े हो गये।

कुछ क्षण बाद छड़ी के सहारे धीमी चाल से चलते हुए सम्राट् ने दीवाने-खास में प्रवेश किया। मिर्जा इलाही बख्श बैठकखाने में ही रह गये। सम्राट् के साथ केवल हकीम साहब ही थे।

सम्राट् ने अपना स्थान ग्रहण किया, यथास्थान सभी व्यक्तियों ने कोरनिस की। कुछ क्षण सम्राट् मौन भाव से उपस्थित व्यक्तियों को देखते रहे, एक बार उन्होंने हकीम एहसान उल्लाह की ओर देखा और फिर कहा— "हमें हुक्म मिला था कि दीवाने-खास में फौजी अफसरों के हुजूर में हाजिर हों। हुक्म की तामील हमने कर दी है।"

सम्राट् के इस व्यंग से सभी अफसर सिहर उठे। केवल मिर्जा मुगल साहस करके कुछ कहने जा रहे थे कि तभी सम्राट का तनिक कठोर आदेश सुनाई दिया—"मन्शा बयान किया जाय।"

आदेश पाकर गुलाबशाह आगे बढ़े, सम्राट् के निकट पहुँचकर एक बार उन्होंने फिर कोरनिस की और विनीत स्वर में कहा—"जिल्लें सुभहानी मेरे साथ तकरीबन तीन हजार फौज तोपखाने के साथ मेरठ से आई है। मेरठ के फिरंगी अफसरों ने हिन्दू और मुसलमान दोनों मजहबों से ताल्लुक रखने वाले सिपाहियों को मजबूर किया कि वो अपने बाप-दादा का दीनो-मजहब छोड़कर चर्बी से बने कारतूसों को मुँह से काटें। हरचन्द कोशिश की गई कि फिरंगी अफसर अपना यह हुक्म वापस ले लें, लेकिन हमारी मिन्नत और खुशामद को उन्होंने हमारी कमजोरी समझा और जिस सिपाही ने अन्याय के खिलाफ आवाज बुलन्द की, उसे ही उन्होंने फौजी जेल में डाल दिया। आलीजहा, अब हमारे पास इसके अलावा कोई चारा नहीं रह गया था कि हम अपने बादशाह के दरे दौलत पर आकर दस्तक

दें और फरियाद करें कि फौजी और गैर फौजी रिआया पर फिरंगी जुल्म कर रहे हैं। गुलाम की बेअदबी माफ की जाय, आलमहपनाह मैं यह भी अर्ज करना चाहूँगा कि कल से अब तक हमने रिआया के किसी आदमी के साथ ज्यादती नहीं की है। हिन्दू, मुसलमान, और ईसाई किसी के साथ भी किसी तरह की बेअदबी नहीं की गई है, अलबत्ता यह सही है कि हमारे सिपाही ऐसे लोगों पर हथियार उठाने को जुरूर मजबूर हुए हैं जिन्होंने पहले हथियार उठा कर हम पर वार किया है।"

दीवाने-खास में फिर शान्ति छा गई। सम्राट् नीची दृष्टि किये विचार-मग्न थे।

गुलाबशाह फिर बोले—"शाही इकबाल बुलन्द रहे! आलमपनाह, हम इन्साफ चाहते हैं!"

—"मेरे बच्चो!" कवि-हृदय सम्राट् ने रुँधे कंठ से कहा—"तुमने हमसे बहुत गलत उमीदें बाँधी हैं। क्या है हमारे पास जिसके जरिये पूरे मुल्क में फैली फिरंगी हुकूमत के सामने हम सर उठा सकें। हमारे पास न दौलत है और न ताकत। हम तुम्हें कैसे समझायें कि हम और खानदाने-शाही अंग्रेजों के रहमो-करम पर ही जिन्दा हैं।"

—"आलम पनाह की उम्रदराज हो! आप हैं तो सब-कुछ है। मेरठ और दिल्ली की फौजें आपका हुक्म मिलते ही जंगे-आजादी शुरू कर देंगी। जंगे-आजादी में चाहे हमें कितनी ही बड़ी कुर्बानी देनी पड़े, लेकिन हमारा कदम पीछे नहीं हटेगा।"

निरन्तर तीन पीढ़ियों से मुगल-वंश शासन के उत्तरदायित्व से मुक्त हो चुका था। सम्राट् की स्थिति एक लाख रुपया मासिक पेन्शन पाने वाले एक जागीरदार से अधिक नहीं थी। बाबर से लेकर औरंगजेब तक शौर्य और पराक्रम का इतिहास आज उनकी दृष्टि में अलिफ—लैला और नानी की कहानियों से अधिक नहीं था। अंग्रेजों से देश मुक्त हो सकता है यह बात उनकी कल्पना से भी परे थी।

—"हम मजबूर हैं बरखुरदार, हमारे पास इतनी भी दौलत नहीं है कि हम सिपाहियों को एक महीना भी तनखुवाह दे सकें।" सम्राट् को केवल एक यही राह सूझी जिसके द्वारा वो बागी सिपाहियों से अपना पिंड छुड़ा सकते थे।

—"आलीजहाँ!" गुलाबशाह ने विनीत स्वर में अपनी दृढ़ बात कही—"मुल्क में दौलत की कमी नहीं है। सारे मुल्क के खजाने हम आपके कदमों में लाकर रख देंगे। हुजूर आज या कल हमें या हमारी औलादों को फिरंगियों से जंगे-आजादी लड़नी ही है। इस लड़ाई में लड़कर अगर हम अपनी जान भी दे दें तब भी कुछ नुकसान नहीं है, कम-से-कम ऐसा करके हम आने वाली पीढ़ियों के इस उलाहने से बच जायेंगे कि हमारे बुजुर्ग बुजदिल थे। यह तवारीखी दाग हम पर न लग पायेगा कि हमने जंगे-आजादी नहीं लड़ी। आलम पनाह, उन जवानों का दिल न तोड़िये जो अपने सिरों की बाजी लगाकर मेरठ से आये हैं।"

वृद्ध सम्राट् की आँखें डबडबा आईं। उन्हें आभास हुआ कि इनके अन्तर का हीन भाव न जाने कितने नौजवानों का दिल तोड़ देगा, किन्तु अगर संघर्ष सफल न हुआ तो? एक लाख मासिक की पेन्शन—जिससे हजारों शाही खानदान के व्यक्ति पलते हैं,—क्या होगा उन सबका?"

गुलाबशाह फिर बोला—"जिल्ले-इलाही, दुश्मन दूर नहीं है। सल्तनत की बागडोर अपने हाथ में सम्भालिये और हमें हुक्म दीजिये कि हम फौज को हमले के लिए तैयार करें।"

सम्राट् के अन्तर में अभी तक विचारों का संघर्ष चल रहा था कि अचानक ही वह अपने स्थान से उतरकर नीचे खड़े हो गये। सभी उपस्थित व्यक्ति स्तब्ध थे, अब……अब क्या होगा?"

—"जिल्ले सुभहानी।" गुलाबशाह सिर झुका कर घुटनों के बल बैठता हुआ बोला।

काँपते हुए हाथों से छड़ी उठाकर सम्राट् घुटनों के बल बैठे

गुलाबशाह के निकट पहुँचे अनजाने ही उन्होंने अपना हाथ उसके सिर पर रखते हुए कहा—"तुम्हारी वफादारी पर हमें नाज है, जो मुनासिब समझो करो !"

बैठकखाने की ओर लौटते हुए सम्राट् ने सुना कि गुलाबशाह किसी से कह रहा है—"तोपखाने वालों को हुक्म दो कि हुजूर बादशाह की सलामी में इक्कीस तोपें दागी जायँ ।"

सम्राट् ने फिर कुछ नहीं कहा, वह फिर बैठकखाने में जा बैठे, जहाँ मिर्जा इलाही बख्श अभी तक पाषाण-प्रतिमा की भाँति खड़े हुए थे ।

—"बैठो इलाही बख्श,...... !"

आदेश पाकर इलाही बख्श बैठ गये । उनकी सूरत से प्रतीत होता था कि मानो उन्होंने किसी स्वजन की मृत्यु का समाचार अभी-अभी सुना हो ।

सम्राट् उसके चेहरे को देखकर निश्चित भाव से मुस्कराये—"मिर्जा जो कुछ हमने किया वह तुम्हें पसन्द नहीं आया होगा । हमें भी पसन्द नहीं है । हमें अपनी बुजदिली का अहसास है । हमने कभी अंग्रेज हुक्मरानों के सामने सिर नहीं उठाया और सिर्फ इसलिए कि शाही-खानदान तबाही और बरबादी से बचा रहे । शाही खानदान के लिए ही आज हमने बागियों के सामने भी घुटने टेक दिये हैं ।"

—"बेअदबी माफ हो हुजूर, ताज्जुब सिर्फ इस बात का है कि आपने अंग्रेजों की ताकत को भुला दिया है । चन्द रोज की उछल-कूद के बाद बागियों का क्या हश्र होगा यह आपने नहीं सोचा । अंग्रेजी फौजों के मुकाबिले में यह लोग चार दिन भी नहीं टिक सकते ।"

—"ठीक कहते हो, लेकिन खानदाने-शाही को यह लोग एक दिन में ही खत्म कर सकते हैं । यह शायद तुमने नहीं सोचा ?"

तभी बसन्तखाँ ने आकर सूचना दी—"जिल्ले सुबहानी खाने का वक्त हो चुका है, महल से कई बार बुलावा आ चुका है ।"

बसन्त की बात अनसुनी करके सम्राट् ने मिर्जा से कहा—"तुमने मेरी बात का जवाब नहीं दिया मिर्जा ?"

—"शाही इकबाल बुलन्द रहे आलम पनाह, ऐसा कोई सोच भी नहीं सकता।"

सम्राट् मुस्कराते—"मुँह देखी बात कहने-भर से मुश्किलें आसान नहीं हो जाया करतीं। तवारीख देखो, न जाने कितनी बार अवाम ने बिगड़कर लाखों की फौजों वाले शहनशाहों को धूल में मिला दिया है। हमारी भला क्या हैसियत है ? शाही खानदान और चन्द मुसाहिबों में मामूली इज्जत पाकर अगर हम अपने-आपको शहनशा ह समझने लगें तो ये बहुत बड़ी भूल होगी, और फिर हवा के रुख में कौन किस वक्त बह जायगा इसका भी तो भरोसा नहीं है। हमने देखा कि बागी फौजों के आते ही शहजादे उन फौजों से मिल गये, आप देख ही रहे हैं। हकीम साहब भी हमारे साथ नहीं लौटे, वे शायद हमसे नाराज होकर घर चले गये हैं। किसका भरोसा करें, किसके भरोसे किसी की मुखालिफ करें, हम मजबूर हैं और लाचार हैं कि ताकतवर के सामने सिर झुकायें रखें।"

—"हुजूर बजा फरमाते हैं, लेकिन आलमपनाह कल अंग्रेज फिर दिल्ली पर काबिज हो सकते हैं। उस वक्त क्या होगा ? मेरी राय है कि अंग्रेजों से एकदम ताल्लुकात तोड़ देना अच्छा नहीं है।"

—"हम किले के कैदी हैं मिर्जा, शहरपनाह से बाहर जाकर अंग्रेजों का अदब बजाना हमारे बूते की बात नहीं है।"

—"अगर हुजूर चाहें तो मैं इस काम को अंजाम दे सकता हूँ हुजूर अपनी मजबूरी का बयान एक खत में कर दें। जान हथेली पर रखकर वह खत मैं गवर्नर जनरल तक पहुँचा दूँगा।"

—"मिर्जा !" तेजी से खड़े होते हुए सम्राट् बोले—"मेरे लिए नहीं अपने और अपने बच्चों की सलामती के लिए जबान बन्द रखिये। जमाने का साथ देना ही होगा मिर्जा, वक्त की तूफानी हवा हमारा साथ दे या न

दे हमें उसके साथ बहना ही होगा।"

अपनी बात का जवाब नहीं चाहते थे सम्राट्, उन्होंने हाथ के इशारे से मिर्जा को चुप रहने का संकेत किया और धीमी चाल से छड़ी के सहारे चलते हुए बैठकखाने से चले गये। —"धड़ाक।"

अंगूरी बाग में फौजी पड़ाव से पहला तोप का धमाका हुआ, और फिर निरन्तर धम······धड़ाक······धम की आवाजों से सम्पूर्ण दिल्ली दहल गई।

महल में प्रवेश करने से पूर्व एक बार सम्राट् ने आसमान की ओर दृष्टि उठाकर अपने हृदय और मस्तिष्क की भावनाओं को शून्य गगन में साकार होते देखा—

सर्वत्र मुगल वंश की कीर्ति-यशगान, विजय के उपलक्ष में सर्वत्र फह-राती हुई विजय-पताकाएँ; मानो आकाश लाल किले को पुनः उसका गौरव प्रदान कर रहा हो।

कल्पना फिर दूसरे रूप में साकार हुई। आसमान में छाये हुए घने-काले बादल, चारों ओर खून-ही-खून, हाहाकर और चीत्कारें, महा नर संहार···सर्वनाश।

सम्राट् ने एक लम्बी साँस ली। उपासना की मुद्रा में दोनों हाथ उठाकर मन-ही-मन ईश्वर से दया की याचना की। सूखे अधरों पर मुस्कराहट लाने का प्रयत्न करते हुए उन्होंने किसी नये गीत के बोल गुनगुनाते हुए महल में प्रवेश किया।

नित नये परिवर्तन देखने के अभ्यस्त दिल्ली के नागरिकों ने तोपों की गड़गड़ाहट के बीच सुना कि फिरंगी खेत रहे, दिल्ली पर अब बादशाह की हुकूमत है।

सम्राट् के सम्मान में इक्कीस बार तोपें दागी गईं।

: ६ :

नौशा मियाँ सेठ लक्ष्मणदास सहित तीसरे पहर घर लौटे, वहाँ से विक्टर का संदेश मिलते ही उल्टे पाँव उस्मानखाँ की बैठक में आ गये।

फिर जो चौकड़ी जमी तो रात हो गई। पहले लाला लक्ष्मणदास ने दिन-भर में जो कुछ देखा उसे सुनाया, फिर नौशामियाँ ने। हालाँकि दिन-भर दोनों साथ ही रहे थे फिर भी दोनों का वर्णन करने का ढंग अलग-अलग था। लाला दिल्ली की आम जबान 'करखनदारी' में बात करते थे और नौशामियाँ किले में बोले जाने वाली जबान फारसीयुक्त उर्दू बोलते थे। बातचीत किस्से और लतीफों का सिलसिला समाप्त होते ही लाला लक्ष्मणदास की ओर से आग्रह हुआ कि अब उस्मानखाँ कुछ सुनायँ।

लाखों के स्वामी और दिल्ली के प्रमुख अनाज के व्यापारी लाल लक्ष्मण दास की आयु तरेसठ वर्ष की होने आई, घर में बेटों-पोतों-बहुओं और बेटियों का भरपूर परिवार है किन्तु कोई उन्हें बूढ़ा कह तो दे, तुरन्त उत्तर मिलेगा—"मियाँ, जरा होश की दवा करो, दिल्ली का खून बूढ़ा नहीं हुआ करता।"

सचमुच अगर कोई बाहर का व्यक्ति लाला लक्ष्मणदास को दिल्ली के जीवन का प्रतीक मान ले तो उसे स्वीकार करना होगा कि दिल्ली का नागरिक पैदा होने के दिन से आखिरी साँस तक युवा ही रहता है।

बाजार की नई उम्र की गायिकायें उनके सामने मुजरा करते हुए डरती हैं। कहीं लाला नाराज न हो जायें। अभी कुछ दिन हुए कि आफत की मारी हमीदन ने लाला को बुलावा भेज दिया, दरअसल हमीदन की आज-कल बाजार में हवा बँधी हुई थी। आगरा, बुलन्दशहर, यहाँ तक कि लखनऊ तक के व्यापारी हमीदन पर फिदा थे। सारी रात महफिल जमती है और सुबह कई टोकरे मुर्झाये हुए गजरे कोठे से नीचे फेंके जाते हैं।

दोपहर होते-होते हजारों रुपये साहू गोपाल शाह की कोठी में हमीदन के रुपयों में और जमा हो जाते हैं।

बुलावा आया तो लाला गये। हमीदन की सलाम के जवाब में उन्होंने प्रश्न किया—"लौंडिया बीस तो पार कर गई होगी।"

—"बाइस बरस की हो चुकी हूँ, लाला जी!"

—'हूँ।" बस इतना कहकर लाला बैठ गये।

खयाल के बोल अभी पूरे भी न हो पाये थे कि जमी हुई मजलिस के बीच ही लाला उठ खड़े हुए। तमाशबीनों को अचम्भा हुआ। बेचारी हमीदन तो अवाक् रह गई।

—"लौंडिया!" लाला बड़े धीरज के साथ ही खड़े-खड़े बोले—"तू बशीरन की बेटी जरूर है पर बशीरन नहीं है। बावली अभी तेरी महफिल जमाने की उमर नहीं है। जिन्दगी पड़ी है, कुछ सीख ले, काम आयेगा।" और सौ रुपये की थैली हमीदन को थमाकर लाला कोठे से उतर आये।

यह तो लाला के चरित्र की बानगी भर है। शहर दिल्ली में कोई भी खेल-तमाशा हो, लाला उसमें अवश्य पहुँचते थे, और आयोजक भी लाला की उपस्थिति आवश्यक समझते थे। फूल वालों की सैर हो या कुश्तियाँ, जमना में नौका-विहार हो अथवा तैराकी का मुकाबला, हर जगह लाला की फबतियों और वाह-वाह का विशेष महत्त्व था।

तैराकी के मुकाबले में लाला की नाव तैराकों के साथ-साथ ही चलती। —"शाबाश बेटो; बढ़े चलो!" लाला तैराकों को प्रोत्साहन देते।

—"अबे ओ घसीटा वाले, हरामी क्यों बाप का नाम डबो रिया है? जरा तबियत से हाथ-पैर चला, अबे ओ फजल, किनारे पे क्या तेरी जोरू खड़ी वी है सीध में देख, अबे ओ शिब्बू ओ मौला भूतनी वालो तुम्हारा उस्ताद आगरे वालों से जीत के आया था नाम रक्खो उसका, शाबाश।" इस प्रकार लाला मीठी झिड़कियों सहित तैराकों को बढ़ावा दिया करते हैं।

हाँ तो लाला की ओर से फरमाइश हुई कि उस्मान खाँ कुछ सुनायें।

लाला का आग्रह उस्मानखाँ टालना तो नहीं चाहते थे किन्तु अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए उन्होंने कहा—"लाला इस वक्त तुम्हें गोपाली पर राग धवाल सुनाता, कसम खुदा की वो समाँ बँधता कि वाह-वाह कर उठते।"

—"तो क्या मक्खी ने छींक दिया?" उचककर लाला ने कहा।

—"लाला बिना पखावजिये के यह राग नहीं चलेगा!"

—"तो पखावजिये को भी बुलवाओ।" बाहर अँधेरे में किसी के आ जाने की आहट हुई। लाला ने पुकारा—"मियाँ शहजादे जरा सुनना।"

—"जी फ़रमाइये!" राहगीर एक पन्द्रह-सोलह साल का लड़का था दरवाजे के निकट खड़े होकर उसने पूछा।

—"मियाँ जरा नुक्कड़ वाले मकान में कल्लन पखावजिये को आवाज लगा देना, कहना कि उस्मानखाँ की बैठक में लछमन लाला बुला रिया है, पखावज समेत चला आवे।"

कुछ देर के बाद कल्लन पखावजिया भी आ गया, फिर जो राग चला तो आधे पहर तक विक्टर नौशामियाँ और लाला दीन-दुनियाँ की सुध भूलकर मंत्र मुग्ध बैठे रहे।

रात के खाने का समय जाने कब का बीत चुका था। हसीना कई बार पर्दे की ओट से झाँककर देख गई, किन्तु पिता तो संगीत की दुनिया में ऐसे खोये हुए थे कि रोटी और बेटी दोनों की ही सुध बिसार दी थी।

संगीत का तारतम्य तब टूटा जब कि उदास चेहरा बनाये हनीफ ने बैठक में प्रवेश किया।

"सलाम बाबा साहेब, बाबा साहेब सलाम!" नौशामियाँ और लाला लक्ष्मणदास की ओर तनिक झुककर अभिवादन करते हुए हनीफ उस्मानखाँ की ओर मुड़ा—"सलाम अब्बा साहेब, कल्लू भाई सलाम!"

—"सलामत रहो।" नौशामियाँ बोले।

—"जीते रहो।" लाला ने कहा।

—"उम्र दराज हो दुल्हा मियाँ !" उस्मान बोले—"सुबह एक बार तो मुझे ख्याल आया था कि शायद तुम भी सिपाहियों के साथ मेरट से आये हो। फिर सोचा अगर आते तो घर आते, नहीं आये होगे।"

—"अब्बा, वैसे तो अब भी यहाँ आने का इरादा नहीं था। लेकिन जरूरत से मजबूर होकर आना ही पड़ा है। मेरे पगड़ी-बदल भाई को आज सुबह छर्रा लग गया था, जाने क्या हो गया कि तीसरे पहर से ही ताप में अचेत पड़ा है। अगर आप उसे घर में जगह दे सकें तो······?"

उस्मानखाँ अवाक् रह गये। उन्हें आश्चर्य हुआ कि यह प्रश्न उनका दामाद पूछ रहा है ? जो भविष्य में उनकी प्रत्येक वस्तु का उत्तराधिकारी होगा। हनीफ कहे जा रहा था—"अब्बा जान बुरा न मानें, वक्त ऐसा है कि बाप और बेटे भी अलग-अलग रास्ता अपनाने को मजबूर हो सकते हैं।"

उत्तर दिया लाला लछमनदास ने—"दूल्हा बेटे, शायद विक्टर साहब को देखकर कुछ बहक गये हो ······।"

—"जी ये बात नहीं······।"

तनिक मुस्कराकर लाला ने हाथ के संकेत से हनीफ को चुप करते हुए कहा—"दिल्ली के दामाद जरूर हो, पर दिल्ली वालों का दिल अभी नहीं देखा है मियाँ, बोलो कितनी हवेली चाहिएँ मेरठ वालों को ? ठीक है उस्मान मियाँ की हवेली ज्यादह बड़ी नहीं है, पर बन्ने तुम्हारी ससुराल बहुत बड़ी है। अभी कयामत नहीं आई है कि सारे दिल्ली वाले ही मर गये हों। कहाँ है······?"

—"नूर चाचा ले आओ अन्दर !" हनीफ ने दरवाजे पर खड़े नूर को, जो विक्रम को पीठ पर लादे था, अन्दर आने का आदेश दिया।

नूर ने अन्दर आकर विक्रम को लिटा दिया और फिर धीमे से पूछा—"जाऊँ हवलदार !"

—"हाँ तुम जाओ, सूबेदार पूछें तो कह देना कि इसके होश में आते ही मैं चला आऊँगा।"

नौशामियाँ विक्रम की नब्ज देख रहे थे, बोले—"वैसे कोई खतरा नहीं है, तेज बुखार है सिर्फ इसी वजह से बेहोशी है; मैं जाकर हकीम साहेब को भेजे देता हूँ।"

पहले नूर गया, फिर नौशामियाँ गये। लाला लछमनदास विक्टर के लाख कहने पर भी कि मैं अकेला ही चला जाऊँगा उसे अपने साथ ले गये और चलते-चलते उस्मान खाँ से कह गये कि—"उस्मान मियाँ अगर हकीम साहब की दवा से मरीज की हालत बेहतर न हो तो मुझे रात में ही खबर भिजवा देना, विक्टर साहब को काश्मीरी दरवाजे से बाहर छोड़कर मैं सीधा घर ही पहुँचूँगा।"

विक्रम के निकट ही हनीफ बैठ गया। उस्मानखाँ कुछ क्षण हकीम साहेब की प्रतीक्षा में बैठक में टहलते रहे। फिर अन्दर वाले दरवाजे के निकट पहुँचकर उन्होंने पुकारा—"फातिमा, बेटे फातिमा···फातिमा!"

किन्तु कोई उत्तर नहीं मिला।

उस्मानखाँ ने फिर पुकारा—"फातिमा······!"

झुँझलाकर उस्मानखाँ कह रहे थे—"खुदा ने एक औलाद दी, वो भी इतनी सुस्त कि वही मसल है कि 'चिराग में बत्ती पड़ी, लाडो पलंग चढ़ी।' भला कोई बात है कि शाम हुई नहीं और सो गई।······फातिमा मियाँ जरा जगाओ तो उसे जाकर लड़की क्या है बबाल है, जाओ मैं यहाँ हूँ।"

उस्मानखाँ से कौन कहे कि रात आधी बीत चुकी है, बात सुनकर एक कोने में बैठा हुआ कल्लन पखावजिया मुस्करा जरूर दिया। हनीफ उठकर अन्दर चला गया।

छोटी-सी हवेली में घुसते ही सामने पत्थर के खम्भों पर टिका हुआ बड़ा-सा सहन था। सहन के बीचों-बीच खाने का थाल रक्खा था और पास ही पत्थर के फर्श पर हसीना सो रही थी। शायद खाना सजाये पिता की

प्रतीक्षा में वह काफी देर बैठी रही थी और फिर यों ही कमर सीधी करने के इरादे से लेटी होगी। अनजाने ही नींद आ गई होगी और अब गाढ़ी नींद में अचेत पड़ी हसीना शायद स्वप्न-लोक में थी।

—"हसीना, हसीना।" झंझोड़ते हुए हनीफ ने कहा।

हसीना ने आँखें खोलीं और मुस्करा दी। हनीफ उठकर खड़ा हो गया, समझा कि जाग गई है, किन्तु हसीना ने पुनः आँखें मूँद ली और सो गई।

इस अन्दाज से एक बार चिन्तित हनीफ भी मुस्करा दिया—"खूब रही, बेगम हकीकत को भी ख्वाब ही समझ रही है। हसीना······हसीना उठो!" अबकी बार जोर से झँझोड़ा हनीफ ने।

—"···जी···जी···आप।" हड़बड़ाई-सी हसीनाउठकर खड़ी होगई और यों ही कंधे पर पड़ी ओढ़नी को करीने से ओढ़ने का प्रयत्न करने लगी।

—"हसीना अब्बा तुम्हारी शिकायत कर रहे थे कि बहुत सोती हो।"

हसीना ने कोई उत्तर नहीं दिया। लजाकर झुका हुआ सिर और भी झुका लिया।

—"सुनो मैं सुबह फौज के साथ दिल्ली आया था, मेरे साथ मेरा एक दोस्त भी है, दोस्त क्या मेरा भाई ही समझो। सुबह एक फिरंगी की गोली से घायल होकर वो ताप चढ़ा बैठा है।"

—"जी, अन्दर लाकर लिटा दीजिये, मैं चूल्हा जलाकर आपके लिए खाना बनाती हूँ, उनके लिए क्या बनाऊँ?"

—"खाना रहने दो, वो तो सुबह से ही चेत में नहीं है, मुझे भी भूख नहीं है। मैं तुम्हें जगाना भी नहीं चाहता था लेकिन अब्बा का हुक्म तो बजाना ही था सो बजा दिया, अब मैं जाता हूँ, मुँह धो डालो, सुस्ती उतर जाय तो बैठक के दरवाजे पर आ जाना।"

हनीफ बैठक में लौट आया। बैठक में हकीम साहब आ चुके थे। और वे विक्रम की नब्ज देख रहे थे।

शायद उस्मान खाँ ने हकीम साहब को हनीफ और विक्रम के घनिष्ठ सम्बन्ध की बात बता दी थी। विक्रम का निरीक्षण करके उन्होंने हनीफ को ही सम्बोधित करके कहा—"दूल्हे मियाँ, कोई खतरे की बात नहीं है, मैं दवा भिजवाये देता हूँ इन्शा अल्लाह सुबह तक बुखार उतर जायगा। बेहोशी महज बुखार की वजह से ही है। बेहतर होगा कि इन्हें ऊपर छत पर लिटा दो।"

हकीम साहब उठकर चले तो उनके साथ उस्मान खाँ भी उट गये, किन्तु कल्लन पखावजिया उठता हुआ बोला—"उस्ताद मैं ले आता हूँ दवा, आप तशरीफ रखिये।"

हकीम साहब और कल्लन के जाते ही पर्दे के पीछे से हसीना की आवाज आई—"अब्बा जी!"

—"अब्बा की लाडली ऐसी भी क्या नींद, कि दिन छिपा नहीं और सो गई, जा ऊपर छत पर दो चारपाइयों पर कपड़े बिछा दे।"

उस्मानखाँ और हनीफ दोनों मिलकर अचेत विक्रम को बाँहों में उठाकर ऊपर छत पर ले गये। हसीना भी वहीं एक कोने में घूँघट काढ़े खड़ी थी।

विक्रम को चारपाई पर लिटाकर उस्मान बोले—"क्या हुआ री तेरी अक्ल को, चलकर खाना बना दूल्हे मियाँ के लिए।"

—"जी इस वक्त खाना मैं नहीं खाऊँगा, आप जाकर खाना खा लीजिये और आराम कीजिये!"

—"ससुराल में कुछ न खाना ससुराल की तौहीन हुआ करती है बेटे·········!"

—"ससुराल में कुछ नहीं खाऊँगा ऐसा तो मैंने नहीं कहा अब्बा साहब, सिर्फ इस वक्त के लिए माफी चाहता हूँ।"

उस्मान नीचे चले गये, उनके पीछे-पीछे हसीना भी चली गई। एक बार हनीफ ने विक्रम का हाथ पकड़कर ताप का अनुमान किया और फिर

निरर्थक आकाश में खिले तारों को निहारने लगा।

प्रथम सुहाग रात के बाद हसीना से उसकी आज दूसरी भेंट ही तो थी। चार महीनों में कौन-सा दिन ऐसा था जब उसने हसीना के बारे में न सोचा हो। सुहाग रात के दिन ही वह मन में कुछ इस तरह रम गई कि अगले दिन विदा के समय उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो ससुराल वाले उसका हृदय निकालकर लिये जा रहे हों। जाने कितनी सहस्र प्रतीक्षा की घड़ियाँ गिनने के बाद आज साक्षात् हुआ तो कर्तव्य रूपी मानवीय स्नेह की दीवार ने केवल चिन्ता में ही लिप्त रखा। किन्तु दूसरे ही क्षण उसकी दृष्टि फिर आकाश से हटकर विक्रम पर जा टिकी। दूर से वज्र की तरह कठोर दिखने वाला सैनिक का हृदय कितना निर्बल होता है यह बात आम व्यक्ति नहीं जानते। हनीफ पुनः इस कल्पना से सिहर उठा कि अगर विक्रम न बचा तो?

हृदय को बेधने वाले विचारों का क्रम तब टूटा जब सीढ़ियों पर हसीना की पायलों की झन-झन सुनाई दी।

हसीना के एक हाथ में छोटी-सी प्याली थी और दूसरे हाथ में गिलास। हनीफ के निकट आकर बोली—"यह इनकी दवा है, और यह आपका दूध।"

हनीफ की गम्भीरता अब भी न टूटी उसने हसीना के हाथ से प्याली ली और हाथ के सहारे से विक्रम का सिर उठाकर दवा मुँह में डाल दी।

—"दूध!" खाली प्याली हाथ में लेकर गिलास बढ़ाते हुए हसीना बोली।

—"दूध रहने दो।"

—"हकीम साहब कहते थे कि ये सुबह तक ठीक हो जायेंगे।"

—"अच्छा।"

—"दिल्ली के हकीम झूठ नहीं बोला करते।"

—"तो मैं कब कहता हूँ कि दिल्ली के हकीम झूठ बोलते हैं।"

—"नहीं कहते तो दूध पी लो!"

—"दूध का उसके अच्छे होने से क्या ताल्लुक है? दरअसल तबीयत ही नहीं करती इस वक्त दूध पीने के लिए।"

—"तबीयत न हो तो भी पी लो!"

—"अगर हुक्म न मानूँ तो?"

—"ये हुक्म नहीं है, अर्ज है कि दूध पी लीजिये, मुमकिन है ससुराल में नखरे दिखाना मर्द जरूरी समझते हों, लेकिन इस वक्त इसे अपनी ससुराल मत समझिये।"

—"क्यों?" हनीफ हँसा।

—"इसलिए कि अब्बा इस वक्त नहीं हैं।"

—"इससे क्या, शहर उनका है, मकान उनका है।"

—"मैं भी उन्हीं की हूँ, लेकिन जब आपके घर जाऊँगी तब वह आपकी ससुराल नहीं कहलाने लगेगी, दूध पी लीजिये।"

—"लाइये, दिल्ली वालियों से जीतना हम सिपाहियों के बूते की बात नहीं है।"

—"शुक्रिया।"

—"किस बात का?"

—"हार मानने का।"

हनीफ फिर मुस्करा दिया। किन्तु चिन्ता का बोझ अब भी उसके सिर से नहीं उतर सका।

सारी रात जागते ही बीती। दूध पीने के बाद हसीना ने हुक्का भरकर ला दिया। एक चिलम पी, फिर दूसरी, फिर तीसरी, इसके बाद हसीना जागरण में हनीफ का साथ न दे सकी और खाट के पैताने बैठी-बैठी ही सो गई।

भोर के उजाले के साथ ही विक्रम की बेहोशी भी टूटी, करवट बदलते

ही धीमे स्वर में उसने कहा—"पानी।"

हनीफ के चेहरे पर वास्तविक प्रसन्नता नाच उठी। शीघ्रता पूर्वक उठकर उसने हसीना को झंझोड़ा—"उठो हसीना, पानी लाओ, जल्दी।"

रात दिन का कुल समय मिलाकर जागने से अधिक सोने वाली हसीना तुरन्त उठ खड़ी हुई।

चली तो छत पर ही ठोकर खाते-खाते बची।

—"सँभलो कहीं गिर मत पड़ना।"

हसीना लजा गई। पानी लेकर लौटी तो मारे शर्म के सिर न उठा सकी।

—"विक्रम, लो पानी!" हाथ से विक्रम का सिर ऊँचा करके हनीफ ने कटोरा विक्रम के होठों से लगा दिया।

विक्रम ने पानी पी लिया। किन्तु आँखें उसने अब भी नहीं खोली थीं। —"विक्रम, आँखें खोलो विक्रम, देखो तो तुम कहाँ हो?"

विक्रम ने आँखें खोलीं, हनीफ की ओर देखा, मुस्कराने का प्रयत्न किया और फिर आँखें मूँद लीं।

—"विक्रम आँखें खोलो और जरा सामने देखो कौन खड़ा है?" हसीना ओढ़नी का पल्ला नीचे सरका ही रही थी कि हनीफ ने संकेत द्वारा ऐसा करने से रोक दिया।

—"विक्रम......।"

विक्रम ने आँखें खोलीं, सामने लजाई-सी नीची दृष्टि किये हसीना खड़ी थी।

विक्रम चौंका—"ये भाभी हैं।"

—"हाँ।"

वह हिला, शायद उसने उठने का असफल प्रयत्न भी किया, किन्तु दूसरे ही क्षण स्थिर होकर उसने कहा—"इन्हें जरा पास बुला लो।"

हसीना चारपाई के निकट आकर खड़ी हो गई।

—"यहाँ।" हाथ से चारपाई की पट्टी को थपथपाते हुए बिखरे से स्वरों में विक्रम ने कहा—"यहाँ, भाभी जी अपना पाँव उठाकर जरा यहाँ रखिये।"

हसीना सकुचाई, किन्तु हनीफ की आदेशभरी दृष्टि देखकर उसने अपना पैर ऊपर रख दिया।

हाथ से हसीना का पैर छूकर माथे से लगाते हुए विक्रम बोला—"हम हिन्दुओं में यह रीत होती है कि माँ और पिता की तरह भाभी के पांव छूते हैं।"

—"हिन्दुओं में बड़े भाई के भी तो पाँव छूते हैं तुमने मेरे पाँव तो कभी नहीं छुए ?"

—"उठाओ ऊपर अब सही..........।"

तभी नीचे से आवाज आई—"दूल्हे मियाँ तुम्हारे दोस्त की तबीयत कैसी है ?"

हनीफ उठकर मुँडेर के निकट जाकर बोला—"शुक्र है खुदा का, अब अच्छी है।"

हनीफ उस्मान खाँ को उत्तर देकर लौटा तो विक्रम ने आँखें मूँद ली थीं।

कुछ क्षण बाद ही मधुर स्वर-लहरी में सितार के तार झनझना उठे। विक्रम का वास्तविक उपचार अब आरम्भ हुआ। उसने आँखें खोलीं और कुहनी के बल उठते हुए हसीना से पूछा—"यह अब्बा जी हैं।"

मौन हसीना ने केवल स्वीकृति-सूचक सिर हिला दिया। विक्रम कह रहा था—"बहुत बड़े बाप की बेटी हो भाभी, तारों की इतनी तेज झन-झनाहट में भैरवी के इतने सच्चे सुर पूरे मुल्क में चन्द ही उस्ताद लोग निकाल सकते हैं।"

: ७ :

विक्रम रोज़ सुबह ७ बजे कहता—"बहुत आराम किया, कल मैं चला जाऊँगा।"

उस्मान ख़ाँ कहते — "नहीं मियाँ, ऐसी गलती मत करना; जब तक हकीम साहब नहीं कहते तब तक तुम्हारा घर से बाहर जाना भी ठीक नहीं है। और फिर तुम मरहूम पण्डित मोहनदास आगरा वालों को अपना उस्ताद मानते हो। मैं और वो दोनों एक ही उस्ताद के शागिर्द थे। इसी रिश्ते से तुम मेरे भी शागिर्द ही कहाओगे। क्या रक्खा है तलवारबाजी में, बेटे सीख', लो कुछ—वर्ना जिस दिन हम भी मोहनदास की तरह दुनिया के पर्दे से उठ जायेंगे उस दिन कहोगे कि अब किससे सीखें।"

विक्रम निरुत्तर-सा हो जाता। दिन चढ़े हकीम साहब आते, घाव की की पट्टी करने, पट्टी हो जाती तो गम्भीर होकर विक्रम कहता—"हकीम साहब···।"

बात बीच में ही काटकर हकीम जी कहते—"फिर वही, मियाँ कोई मामूली फोड़ा फुंसी नहीं है। अभी तो खैर घाव भी बाकी है, मैं तो घाव भरने के बाद भी एक महीने तक ज्यादह हिलने-डुलने की सलाह नहीं दूँगा।"

पट्टी कराने के बाद सारा पसीने-पसीने होकर विक्रम बैठकखाने से उठकर अन्दर चौक में बिछी चारपाई पर लेटता। तब चाहे डोल बीच कुएं में हो अथवा चूल्हे पर रोटी जल रही हो, हसीना दूध से भरा गिलास और पंखा लेकर दौड़ी आती।

कभी-कभी तो इस भाग-दौड़ में ओढ़नी सिर से ढलक कर पीछे कमर पर जा गिरती। तब हसीना की परेशान मुख-मुद्रा देखकर विक्रम की हँसी भी रोके नहीं रुकती थी। क्षण-भर को वो ठिठकी-सी खड़ी रहती। एक हाथ में दूध का गिलास, दूसरा हाथ झालरदार भारी पंखे से घिरा हुआ, ओढनी सँभाले तो कैसे ? एक उड़ती हुई दृष्टि से वो विक्रम को देखती और फिर

नीचे नजर किये चारपाई के निकट आकर दूध का गिलास विक्रम को थमाती और पंखा एक ओर रखकर ओढ़नी भली प्रकार ओढ़ते हुए कहती—"कमबख्त रेशमी है ना, ठहरती ही नहीं सिर पर, और तुम क्यों हँसते थे ? रिश्ते में बड़ी हूँ तुमसे, क्या तुम्हारे सामने सिर ढकना जरूरी है ?"

—"है तो जरूरी ही।" विक्रम हँसी दबाकर गम्भीर होने का प्रयत्न करते हुए कहता तो हसीना मुँह बिचका देती।

—"कल तुम्हारे भैया की औलादें होंगी तो कहना कि इनके सामने भी सिर ढको; क्यों ?"

कुछ देर बाद विक्रम दूध का गिलास खाली करके हसीना को लौटाता हुआ कहता—"भाभी अब मुझे चला ही जाना चाहिए, दिल्ली फिरंगी से लड़ने आया था, न कि मेहमानी खाने ?"

बस यही बात हसीना को बुरी लगती थी। झुँझलाकर वह कहती—"जो आदमी जान-बूझकर मरना चाहता हो भला उसे कोई कैसे रोक सकता है, जाओ भला मैं कौन होती हूँ रोकने वाली !"

रोज विक्रम यह कहकर हसीना को नाराज करता और फिर तुरंत ही मनाने उसके पीछे दौड़ता।

हसीना कुए पर जाती तो विक्रम झुककर रस्सी पकड़ लेता, चूल्हे के पास जाकर बैठती तो विक्रम वहीं जा बैठता। हसीना मानो उसकी ओर न देखने की सौगन्ध लेकर लौटी हो।

—"भाभी नाराज हो गई क्या ?"

—"........."

—"लाओ पैर दबा दूँ।" विक्रम जैसे-ही पैरों के हाथ लगाता हसीना मुस्करा देती।

—"ना बाबा ना, ये उँगलियाँ हैं कि लोहे की सलाखें, रहने दो मुझे अपने पैर नहीं तुड़वाने हैं।"

बस सुलह हो जाती।



कुछ दिन तो हनीफ साँझ होते ही आता रहा। किन्तु पिछले सप्ताह से वह आधी रात करके आता था। हनीफ अब कहने-भर को ही हवलदार था, वैसे सूबेदार गुलाबशाह के युद्ध में मारे जाने के बाद उनकी टुकड़ी का नेतृत्व अब हनीफ के ही हाथ में था।

मेरठ से आने के सप्ताह-भर बाद ही एक घटना घटी, अंग्रेजों की अनेकों स्त्रियाँ और बच्चे, जो भागते समय सेना के हाथों बन्दी बना लिये गये थे, सम्राट् द्वारा मुक्त कर दिये गये। समस्या यह थी कि उन्हें कहाँ छोड़ा जाय? सेना के अफसर और सेनापति मिर्जा मुगल बेग इस पक्ष में थे कि समस्त बन्दियों को काश्मीरी दरवाजे के बाहर छोड़ दिया जाय। किन्तु हनीफ इस पक्ष में नहीं था, दो अन्य हवलदारों को साथ लेकर वह स्वयं सम्राट् के पास गया और सुझाव रक्खा कि बन्दियों को फिरंगियों के पड़ाव तक हमें सुरक्षित पहुँचाना चाहिए अन्यथा कैदियों को छोड़ने का उद्देश्य ही व्यर्थ हो जाता है।

सम्राट् और सेनापति दोनों ने हनीफ का सुझाव स्वीकार किया। हनीफ अपने चन्द विश्वासी सैनिकों को साथ लेकर कैदियों को छोड़ आया, यह बात अलग है कि उसने फिरंगी अफसरों से कोई बात नहीं की, केवल इतना ही कहा कि कुछ कैदी घायल हैं और अभी वे भली प्रकार स्वस्थ नहीं हैं। उन्हें ठीक होते ही पहुँचा दिया जायगा।

तभी से सम्राट् भी अक्सर हनीफ को बुलाकर कुशल पूछ लिया करते थे, और मिर्जा मुगल को जब से यह मालूम हुआ था कि हनीफ उस्मान खाँ का दामाद है तभी से वह उसे—"सूबेदार दूल्हा मियाँ" कहने लगे थे। किन्तु हनीफ खुश नहीं था, विक्रम से उसने कई बार गम्भीरता पूर्वक कहा था—"अगर हम लड़ाई हारे तो इसकी वजह शहजादे होंगे; जो वैसे तो फौज के अफसर बन गये हैं, लेकिन फौजी कायदे आम सिपाही जितने भी नहीं जानते।"

हनीफ खुश नहीं था, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वह उदासीन

हो। उसमें अब भी वही साहस था, वही धैर्य था, जिससे प्रेरित होकर वह मेरठ से चला था। एक प्रतिशत भी उसने नहीं गँवाया, न धैर्य न साहस।

आज भी हनीफ आधी रात के बाद ही आया, किन्तु आज मुहल्ला सुनसान नहीं था। चौकीदार की 'जागते रहो' की आवाज के बजाय घरों की चहारदीवारी के अन्दर स्त्रियों के गानों का समाँ बँधा हुआ था।

हनीफ ने बैठकखाने में प्रवेश किया तो वहां उसे केवल विक्रम ही मिला, जो एक कोने में बैठा धीमी गति से सितार बजा रहा था।

—"जख्म सूख गया है भैया, अब हरा नहीं होगा।" सितार एक ओर रखते हुए विक्रम ने कहा—"आज फ़ौरन खाना नहीं मिलेगा, बैठो कुछ देर इन्तजार करना होगा।"

—"खाना मैं नहीं खाऊँगा, मुझे भूख नहीं है।"

—"वाह यह कैसे हो सकता है। भाभी साहिबा जरा-जरा देर बाद यहाँ एक छोटा-सा लड़का भेजती है जो मुझसे पूछता है 'मियाँ थितार बदाने वाले थाब, हथीना बुआ पूथ रही हैं आ दायें या दरा देर और धूल लें।' देखा कितना ख्याल है भाभी साहिबा को तुम्हारा।"

—"गई कहाँ हैं?"

—"आज पहली बार बारिस हुई है, पड़ोस वाले घर में झूल रही हैं। खीर बनाकर रख गई हैं और कह गई हैं कि जब वो आयेंगे तब गर्म माल-पूड़े बनाकर खिलायेंगी।"

—"और तुम, यानी तुम भी अभी भूखे ही बैठे हो?"

—"जी नहीं वो सवा सेर वाला लोटा दूध से भरा रक्खा है। एक लोटा पिला गई थीं दूसरा रखकर कह गई थीं कि 'मियाँ साहबजादे बीमार होना, दूध ही ज्यादा मुफीद रहेगा तुम्हारे लिए......'।"

—"तेरे सामने जबान खूब चलती है उसकी?"

—"बिलकुल उसी तरह, जैसे तुम्हारे सामने कतई नहीं चलती।"

—"तुझे कैसे मालूम कि मेरे सामने नहीं चलती?"

विक्रम हँसा—"हो सकता है एकान्त में चलती हो, क्या कहा करती हैं ?"

हनीफ भी उत्तर में हँस दिया—"छोड़ भी क्या करेगा जानकर, अरे हाँ अब्बा मियाँ भी नहीं दिखाई दे रहे हैं ?"

—"वे लाला लछमनदास की हवेली में गये हैं वहाँ भी आज बरसाती रात मनाई जा रही है।"

हनीफ ने पगड़ी उतार कर एक ओर रखते हुए कहा—"बस ठीक है सबको बरसाती रात मनाने दो, आज सारे दिन बरसते पानी में बहुत भाग-दौड़ करनी पड़ी है। मैं तो लेटता हूँ......।"

—"मियाँ थितार बदाने वाले थाव......।"

—"ओ हो खबर लाने वाले शहजादे, अबकी बार तुम अपनी बुआ से जाकर कह दो कि उनके मियाँ तशरीफ ले आये हैं, वे फौरन आ जायें।"

लगभग पाँच वर्ष का बालक जो बड़ी कठिनता से बैठक के ऊँचे दरवाजे पर चढ़ पाया था कूदकर भाग गया।

—"बेकार बुला रहे हो, आज वाकई मैं एक फिरंगी के साथ खाना खा आया हूँ। कुछ गोरी औरतें, जो घायल होने की वजह से अभी तक फिरंगियों की छावनी में नहीं पहुँचाई जा सकी थीं, आज छोड़कर आ रहा हूँ। वहीं छावनी में विक्टर साहब से मुलाकात होगई...... ।"

—"ये विक्टर कौन हैं ?"

—"अब्बा साहब के एक दोस्त हैं, मैं जिस दिन बेहोशी की हालत में तुम्हें यहाँ लाया था तब वे भी यहीं मौजूद थे। फिरंगी वे जरूर हैं लेकिन फौजी नहीं हैं। बहुत ही अच्छे और नेकदिल इन्सान हैं। जैसे ही मैं कर्नल को कैदी सौंपकर चला वे आते मिल गये, ऐसी मुहब्बत से मिले मानो मैं उनकी ही औलाद हूँ, मुझे और मेरे साथ के चारों सिपाहियों को वे अपने खेमे में ले गये। लाख मना करने पर भी सबको खाना खिलाया। साँझ हो रही थी मैं लौटना चाहता था। लेकिन वो तो मुझ पर ऐसे फिदा थे कि छोड़ते ही नहीं थे। अपने दामाद के खेमे में ले गये, वहाँ दामाद और

लड़की से मिलवाया, और मजेदार बात यह है कि विक्टर साहब की लड़की तुम्हारी भाभी की सहेली निकली······ ।"

—"सुनते हैं कि फिरंगियों ने अपनी औरतों और बच्चों को करनाल भेज रक्खा है ?"

—"हाँ, लेकिन विक्टर साहब की लड़की के पैर में कुछ चोट लग गई थी, इसलिए अभी यहीं है। वह भी हमारी कैद में ही थी, देखा तो पहचाना कि मैं ही तो उसे पहले फरंगी कैदियों के साथ छोड़कर आया था। ·········सब-कुछ है, परन्तु विक्रम यह सही है कि दुनिया के पर्दे पर फिरंगियों-जैसी जलील कौम दूसरी नहीं है।"

—"अरे वाह, अभी तो विक्टर साहब की तारीफ कर रहे थे, अचानक ही ये नफरत का दौरा कैसे पड़ गया ?"

—"विक्टर साहब तो वाकई फकीर किस्म के इन्सान हैं, लेकिन वैसे ये पूरी-की-पूरी कौम जलील है। जानते हो विलायत में इन लोगों ने क्या खबर फैला रक्खी है ? छापे के अखबारों में छापा गया है कि हिन्दुस्तानी फौजियों ने उनचास फिरंगी कैदियों को, जिनमें औरतें और बच्चे भी शामिल थे, किले में कत्ल कर दिया।"

—"और तुम कितने कैदियों को वहाँ पहुँचाकर आये हो ?"

—"दो दफा करके इक्यावन कैदी वहाँ पहुँच चुके हैं।"

बात बीच में ही बन्द हो गई, बैठक के बराबर घर वाले दरवाजे के किवाड़ बन्द होने की आहट हुई।

दूसरे ही क्षण बैठक के पिछले दरवाजे का पर्दा हटाते हुए सहमी-सी हसीना ने कहा—"मैं जग········· ।"

—"झूल रहीं थीं और मल्हार गा रहीं थीं।" हनीफ ने वाक्य पूरा किया।

—"जी वो जेबुन्निसा आज ही ससुराल से आई है, मुई जबरदस्ती पकड़कर ले गई।" घबराये से स्वर में हसीना ने कहा।

बरबस ही हनीफ को हँसी आ गई—"हसीना मैं तुमसे यह तो नहीं पूछ रहा हूँ कि क्यों गई थी ?"

—"आइये खाना खा लीजिये।" सन्तोष की साँस लेते हुए हसीना बोली।

—"खाना तो······।"

—"बस रहने दो ज्यादा नखरे मत किया करो।" खड़े होकर विक्रम ने हनीफ का हाथ खींचते हुए कहा—"भाभी, यह अपना दूध का लोटा भी लिये जाओ। अब मुझे ज्यादा दूध नहीं भाता।"

—"दूध तो पीना ही होगा, जब तक नहीं पियोगे खाना भी नहीं मिलेगा।" हसीना ने दृढ़ स्वर में कहा।

—"नहीं मिलेगा तो न सही, आँख मीची और सुबह हुई, सुबह खा लेंगे।"

हाथ का अँगूठा दिखाते हुए हसीना हँसी—"इस भुलावे में मत रहना, दूध नहीं पियोगे तो खाना सुबह भी नहीं मिलेगा।"

—"अच्छा तुम चलो मैं पिये लेता हूँ।"

—"पीना है तो मेरे सामने पी लो, वरना साफ कह दो कि नहीं पीना है। तुमने अभी मेरा गुस्सा नहीं देखा है। मेरे गुस्से से अब्बा तक घबराते हैं।"

—"क्यों नहीं, जरूर घबराते होंगे; ये बड़े मियाँ तो देखो ना तुम्हारे गुस्से से थर-थर काँप रहे हैं।" दूध का लोटा उठाकर मुँह से लगाते हुए विक्रम ने कहा—"हनीफ तुम्हें तो सूबेदारी मिल गई है ना, हैरत की बात है, वरना तुम तो हवलदारी के भी काबिल नहीं थे। अब जरा भाभी को भी फौज की हवलदारी दिला दो। फिर देखना हवलदारी किसे कहते हैं, अगर एक-एक सिपाही के कान खींच-खींचकर छाज बराबर न कर दें तो कहना······।"

लजाकर हसीना भाग गई।

दूध पीते हुए विक्रम की कमर में एक धौल जमाते हुए हनीफ ने कहा—"मरदूद कहीं का, अगर यह हवलदारनी न होती तो दीवाने-आम में उठाकर अंगूरी बाग में डाल दिया जाता, महीनों जख्म भरने में लगते और खुद नहीं खाता तो कोई पूछने वाला भी नहीं मिलता कि पेट भरा है या खाली।"

—"हुँ, बड़ा प्यार उमड़ रहा है, अच्छा चलो एक बार यह बात भाभी के सामने भी कह दो।" दूध पीकर लोटा एक ओर लुढ़काते हुए विक्रम ने हनीफ की बाँह पकड़ी और खींचता हुआ अन्दर चौक में ले गया।

सामने हसीना ने चूल्हे की दबी हुई आँच जला ली थी और कढ़ाई चढ़ाकर अपना निश्चित आयोजन सम्पन्न करने के हेतु आटा घोल रही थी।

—"हवलदारनी भाभी, जरा गौर से सुनो कि भैया क्या कह रहे हैं!" 'हवलदारनी' ये शब्द विक्रम ने आज प्रथम बार कहे थे। हसीना का सिर नीचा ही रहा, किन्तु आँखें उठाकर एक बार विक्रम की ओर उसने देखा अवश्य लिया।

हसीना की आँखों की भाषा विक्रम ने मद्धम प्रकाश में भी पढ़ ली। हनीफ अपनी बाँह छुड़ाकर पास पड़ी हुई चारपाई पर बैठ गया था।

—"ऐसी-तैसी तुम्हारी हनीफ भैया! यह देखो तुम्हारी वजह से हमारी भाभी रूठ गईं।" छलांग लगाकर विक्रम चूल्हे के निकट जा पहुँचा—"भाभी फुँकनी दो, तुम्हारे चूल्हे की आँच जला दूँ।"

किन्तु चूल्हे में आँच खूब जल रही थी। हसीना चुपचाप अपना काम करती रही।

—"लाओ पाँव दबा दूँ।"

—"दिल्ली वाले खुशामद-पसन्द नहीं होते।" धीमे स्वर में हसीना ने कहा।

—"जानता हूँ, बस जरा तुनकमिजाज होते हैं। देखो बात सुनो,"

अगर नाराज हो तो साफ कहो कि मुझसे नहीं हनीफ भैया से नाराज हो, और नाराज होने की बात भी है। भला शरीफ आदमियों के घर आने का वक्त है ये;.......।"

—"विक्रम काले रंग पर और कोई रंग नहीं चढ़ता।" चारपाई पर बैठे हुए हनीफ ने कहा।

—"और सुन लो, हमारी गोरी-चिट्टी भाभी का काला रंग बता रहे हैं, सूबेदार।"

लाख होठों में दबाने का प्रयत्न किया हसीना ने, किन्तु मुस्कान दब नहीं सकी।

बायें हाथ से उसने बेलन उठाया—"अब्बा की कसम मैं मार बैठूँगी। खैर चाहते हो तो यहाँ से उठकर चारपाई पर बैठ जाओ।"

—"पहले दो-चार रसीद कर दो, फिर बात करना। लातों के भूत बातों से नहीं माना करते।" चारपाई पर लेटते हुए हनीफ ने कहा।

उत्तर में हसीना ने बेलन यथा स्थान रख दिया।

—"मैं ऊपर जाकर सोता हूँ।" मुँह फुलाकर विक्रम ने कहा।

".......और मैं चूल्हे में पानी डाले देती हूँ।" हसीना ने ईंट का जवाब पत्थर से दिया।

—"तब ठीक है।" हनीफ ने भी लेटे-लेटे ही स्वर-में-स्वर मिलाया—"मैं छावनी चला जाता हूँ।"

किन्तु यह सब तो जबान की कसरत थी। न तो विक्रम ऊपर जाकर सोया, न हसीना ने चूल्हे में पानी डाला, और न ही हनीफ छावनी गया। बल्कि हसीना और विक्रम को लड़ता-झगड़ता छोड़कर उसने आराम से नाक बजाना आरम्भ कर दिया।

कुछ समय बाद विक्रम ने हनीफ को जगाया—"उठो भई खाना खा लो!"

जमुहाई लेता हुआ हनीफ उठा—"तुम दोनों की लड़ाई खत्म

हो गई।"

—"लड़ाई ? कैसी लड़ाई ? भाभी हम दोनों को कभी लड़ाई भी हुई थी क्या ? अरे समझा, भैया ने सपना देखा होगा।"

दोनों हाथों में दो थाल लिये विक्रम के निकट खड़ी हसीना मुस्करा दी।

—"खुदा बचाये ऐसे बेहया इन्सानों से।" हनीफ ने कहा।

: ८ :

दिल्ली की शहर पनाह से लगभग एक मील दूर उत्तर-पश्चिम की दिशा में अंग्रेजी सेना पहाड़ियों के पीछे पड़ाव डाले हुए थी।

सेना के डेरों से तनिक हटकर विक्टर की अपनी छोटी-सी झोंपड़ी थी। एक साधारण बिस्तरा जमीन पर बिछा हुआ था, जिस पर विक्टर बेहोशी की नींद सो रहा था। कुछ कपड़े एक कोने में पड़े थे, इसके अतिरिक्त सारी झोंपड़ी में पुस्तकें और कागज ही अस्त-व्यस्त बिखरे पड़े थे।

झोंपड़ी के सामने से एक पतला-दुबला नंगे सिर सैनिक दो घोड़ों की लगाम एक हाथ से पकड़े घोड़ों के आगे चलता हुआ जा रहा था कि ठीक झोंपड़ी के दरवाजे के सामने रुककर उजड्ड अंग्रेजी में चिल्लाया—"चाचा विक्टर !"

"..........।"

—"चाचा विक्टर !"

विक्टर ने आँखें खोलीं, उठ रहा था कि सैनिक फिर चिल्लाकर बोला—"चाचा विक्टर सलाम !"

—"सलाम टोनी......।"

—"चाचा तुम तो सूरज निकलने से दो घंटे पहले ही उठ जाया

करते हो, आज तो सूरज भी निकल चुका।"

विक्टर उठकर पुआल के तिनके वस्त्रों से झाड़ता हुआ बोला—"दर असल टोनी, रात को दो साँपों ने आकर मुझे घेर लिया और पूरे दो घंटे तक लगाकर मुझे घेरे रहे।"

—"मेरे ईश्वर······।" चौंककर दो कदम पीछे हटते हुए टोनी नामक युवक सैनिक बोला—"ये जगह ही बहुत खतरनाक है चाचा, यहाँ से तुम आज ही अपनी झोंपड़ी हटा लो। दोनों साँप फिर आज रात को आ सकते हैं?"

—"हुँ······वे दोनों तो मर गये बेचारे।"

—"मर गये।" टोनी ने सन्तोष की साँस ली—"किधर हैं, चाचा किधर फेंका।"

—"अभी तो नहीं फेंका है। देखना है तो अन्दर आकर देख लो, इन किताबों के नीचे दबे हुए हैं।" एक ओर दस पन्द्रह पुस्तकों के ढेर की ओर संकेत करके विक्टर ने अपना बिस्तरा लपेटकर एक ओर रखते हुए मुड़कर दरवाजे की ओर देखा। टोनी जिज्ञासापूर्ण दृष्टि से पुस्तकों के ढेर की ओर देख अवश्य रहा था किन्तु वहीं-का-वहीं खड़ा था।"

—"आओ टोनी अन्दर आओ, लगामें छोड़ दो। फौज के सधाये हुए घोड़े भागा नहीं करते।" टोनी का हाथ पकड़कर अन्दर खींचते हुए विक्टर मुस्कराये—"किताबें हटाकर देखो, खूबसूरत जोड़ा है?

—"नहीं चाचा! खतरनाक खेल नहीं खेलना चाहिए, हो सकता सिर्फ जख्मी ही हुआ हो और तुमने मरा समझकर दाब दिया हो।" मुस्कराकर अपने भय को छिपाने का व्यथ प्रयत्न करते हुए टोनी बोला—"साँप रेंगने वाला कीड़ा है, इसलिए सब जानवरों से ज्यादह बेवकूफ होता है!······ और खूँखार भी।"

विक्टर हँसा—"बहुत बुद्धिमान हो टोनी, तुम्हें सैनिक होने की बजाय पार्लमेण्टेरियन या पादरी होना चाहिये था।" पुस्तकों का ढेर हाथ से एक

ओर ढेलते हुए विक्टर कह रहा था—"तुम कहते हो अबकी बार छुट्टियों पर जाओगे तो रोजी से विवाह करोगे, किसान की बेटी है और तुम्हें पसन्द करती है, लेकिन मैंने सुना है कि अधिक बुद्धिमान नौजवानों को अक्सर किसानों की लड़कियाँ पसन्द नहीं करती।"

तनिक पीछे हटकर शर्माते हुए टोनी ने कहा—"मैं तो कोचवान हूँ चाचा, कोचवान साधारण आदमी......।"

किताबों के ढेर के नीचे से दो मृत काले साँपों को हाथ से खींचते हुए विक्टर ने पूछा—"रुक क्यों गये।"

—"बहुत खतरनाक हैं, असली कोबरा नस्ल है।" विक्टर को उठता देखकर टोनी शीघ्रता पूर्वक झोंपड़ी से बाहर आकर घोड़ों की लगाम पकड़-कर खड़ा हो गया।

विक्टर दोनों मृत साँपों को हाथ में लटकाये झोंपड़ी से बाहर आया तो टोनी फिर बोल उठा—"इन्हें कम्पनी-कमाण्डर के सामने ले जाओ चाचा!"

—"और कहूँ कि वे इन्हें सीधे लन्दन भेज दें।" हँसते हुए पूरी शक्ति सहित साँपों को दूर फेंकते हुए उसने कहा—"चलो, करनाल चलोगे ना?"

—"हाँ, तुम भी चल रहे हो क्या?"

—"नहीं, आज शायद मेरिया जायगी आओ!"

कुछ दूर तक दोनों साथ-साथ चलते रहे, तत्पश्चात् टोनी दोनों घोड़ों को नीचे सड़क की ओर ले गया, और विक्टर मुड़कर अपने दामाद लैफ्टि-नेण्ट ब्रिस्टी के खेमे की ओर चला।

ब्रिस्टी के खेमे के अन्दर दो सैनिक बिस्तरा तथा अन्य सामान बाँध रहे थे। बाहर एक स्त्री और एक पुरुष खेमे के निकट बने छोटे-से मचान पर बैठे थे।

सैनिक वर्दी से सुसज्जित युवक पुरुष विक्टर का दामाद ब्रिस्टी और

उसके निकट बैठी दुबली-सी युवती विक्टर की पुत्री मेरिया थी।

विक्टर को देखते ही ब्रिस्टी मुस्कराता हुआ खड़ा हो गया। टोपी उतारकर उसने विक्टर का अभिवादन किया। किन्तु मेरिया ने जैसे ही विक्टर को देखा उसके धीरज का बाँध टूट गया। उसकी आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे। रोती हुई वह पिता से लिपट गई।

—"धीरज रक्खो बेटी, धीरज रक्खो। करनाल कोई दूर थोड़े ही है। जब भी इच्छा हो पत्र भेज देना, मैं तुम्हारे पास आ जाऊँगा।"

किन्तु विक्टर के शब्द मेरिया को सांत्वना न दे सके। आँसुओं से विक्टर का वक्ष भिगोते हुए मेरिया बोली—"पिताजी अब शायद मैं न बच सकूँगी।"

—"दुत पगली, तुझे हुआ क्या है? पैर तेरा ठीक हो ही गया है। कमजोर अवश्य हो गई है, करनाल में निश्चिन्त होकर रहेगी तो स्वस्थ भी हो जायगी। बेटी, अपने भाग्य की सराहना कर कि तू हिन्दुस्तानी दुश्मनों के बीच घिरी थी, और इसलिए बच भी गई। अन्यथा कौन जाने क्या होता। चल, चल बेटी!"

मेरिया के आँसू पोंछकर विक्टर सहारा देकर मेरिया को लेकर चला, पीछे-पीछे ब्रिस्टी था और उससे पीछे बिस्तरा तथा अन्य सामान उठाये दो सैनिक।

टोनी गाड़ी जोत चुका था। अन्य यात्रियों में दो स्त्रियाँ और थी तथा एक पत्रवाहक सैनिक था। मेरिया का रोना अभी तक जारी थीं, बार-बार वह गाड़ी से उतर आती थी। अन्त में करुण दृश्य का उपसंहार टोनी ने किया, चाबुक को एक बार हवा में फटकारते हुए, आदत के अनुसार चिल्लाते हुए उसने कहा—"अब बैठ जाओ मेरिया बहन, देर हुई जा रही है।" और जैसे ही मेरिया ने गाड़ी पर पैर रक्खा घोड़े को हाँकते हुए वह बोला—"चाचा शाम से पहले ही लौटकर मैं तुम्हें मेरिया बहन के सकुशल पहुँचाने का समाचार दूँगा। सलाम लेफ्टिनेण्ट।" और दोनों

में से किसी को भी कुछ कहने का अवसर दिये बिना ही उसने तेज गति से गाडी हाँक दी।"

ब्रिस्टी, जो पत्नी के बिछोह से रुआँसा-सा हो गया था, श्वसुर के सामने अपने दृढ़ चित्त होने का प्रमाण देता हुआ मुस्कराया, बोला—"कल कमाण्डर जनरल बरनार्ड आपको याद कर रहे थे, आज किसी समय उनसे मिल लीजियेगा।"

—"हुँ अच्छा, तो फिर कोई काम करने से पहले उन्हींसे मिल लेना उचित है, मैं अभी जाकर मिले लेता हूँ।"

—"अगर अभी चल रहे हैं तो चलिये, मैं भी उधर चल ही रहा हूँ।"

विक्टर और ब्रिस्टी दोनों ही कमाण्डर जनरल के कैम्प की ओर चल दिये। बीच छावनी में जनरल के कई खेमे थे।

खेमे के निकट पहुँचकर ब्रिस्टी की कमर थपथपाते हुए विक्टर बोला—"जाओ लैफ्टिनेण्ट जनरल को मेरे आने की सूचना दो।" उत्तर में ब्रिस्टी मुस्कराया विक्टर अक्सर ब्रिस्टी को लैफ्टिनेण्ट कहकर ही सम्बोधित करते थे, और ब्रिस्टी अभी तक अपने श्वसुर के इस सम्बोधन का आदी नहीं हो पाया था।

ब्रिस्टी खेमे के अन्दर चला गया। कुछ क्षण बाद आकर बोला—"आइये।"

अन्दर जाकर विक्टर ने देखा कि कमाण्डर जनरल कोने में टंगे नक्शे पर दृष्टि गड़ाये देख रहे हैं। क्षण-भर विक्टर ने प्रतीक्षा की कि वे स्वयं ही मुँह फेरकर इधर देखें, किन्तु कुछ क्षण बाद उसने स्वयं ही कहा—"कमाण्डर जनरल नमस्कार!"

अधेड़ उम्र के और सैनिक के कद से तनिक छोटे दढ़ियल कमाण्डर जनरल बरनार्ड नक्शे से दृष्टि हटाकर नम्र स्वर में बोले—"नमस्कार मिस्टर विक्टर बैठिये!"

आदेश पाकर विक्टर एक कुर्सी पर बैठ गया। दूसरी कुर्सी ..

बैठते हुए बरनार्ड ने एक ओर सैनिक ढंग से सीधे खड़े क्रिस्टी को आदेश दिया—"लैफ्टिनेण्ट मैंने आर्डर लिख दिया है, चार तोपें पहाड़ी से नीचे उतरवा दो।"

क्रिस्टी सलाम करके खेमे से बाहर चला गया।

—"मिस्टर विक्टर!" जेब से एक बड़ा पीला लिफाफा निकालकर विक्टर की ओर बढ़ाते हुए बरनार्ड ने कहा—"यह आपके समाचार शायद डाक-विभाग ने गवर्नर जनरल के आफिस में भेजे होंगे। वहाँ से यह आपके पास लौटे हैं, इनके साथ ही मेरे नाम भी एक आदेश था कि, आपको हिदायत दूँ कि आप भविष्य में ऐसे समाचार इंग्लैंड न भेजें। अन्यथा डाक-विभाग को यह अधिकार होगा कि वह उन्हें नष्ट कर दें।"

विक्टर ने लिफाफा खोलकर देखा उसमें विक्टर द्वारा लिखा हुआ एक समाचार था, जिसमें इंग्लैंड के अखबारों में प्रकाशित इस सरकारी समाचार का खण्डन किया गया था कि विद्रोही हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने उनचास गोरे कैदियों का, जिनमें स्त्रियाँ और बच्चे भी शामिल थे, निर्मम वध कर दिया है। इस समाचार में विक्टर ने लिखा था कि 'दिल्ली से जब अँग्रेजों की सामूहिक भगदड़ मची उस समय ये पुरुष-स्त्री और बच्चे हिन्दुस्तानी सेना द्वारा बन्दी बना लिये गये थे। इस दौर में ब्रिटिश फौजी अधिकारियों ने दिल्ली से दूर बैठे-बैठे ही यह अटकल लगा ली कि बन्दियों का वध कर दिया गया होगा। ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा संख्या का अनुमान भी गलत लगाया गया। भगदड़ के क्षेत्र में इक्यावन अंग्रेज स्त्री-पुरुष और बच्चे बन्दी बनाये गये थे, जिन्हें सम्राट् की आज्ञा से लाल किले में सिर्फ नजरबन्द रक्खा गया। दिल्ली की पहाड़ियों के निकट अंग्रेजी छावनी स्थापित होते ही उनमें से चालीस कैदी छावनी को सौंप दिये गये हैं और बाकी ग्यारह के बारे में यह आश्वासन दिया गया है कि भगदड़ के समय वे घायल हो गये थे, चलने-फिरने के योग्य होते ही तुरन्त यहाँ

पहुँचा दिये जायेंगे। यह महानता केवल हिन्दुस्तानियों में ही है कि बिना किसी प्रकार की युद्धबन्दी अथवा समझौते के उन्होंने कैदियों को इस प्रकार छोड़ दिया है। यूरोप के सम्पूर्ण इतिहास में ऐसा उदाहरण नहीं मिलेगा।'

इसके अतिरिक्त लिफाफे में विक्टर का एक लेख भी था, जिसका शीर्षक था 'दिल्ली के युद्ध का प्रथम अध्याय' इस लेख में विक्टर ने एक ओर भगदड़ में शहरपनाह दिल्ली से लेकर करनाल और अम्बाला तक पहुँचने में ब्रिटिश प्रजाजनों को जो विपतायें झेलनी पड़ी थीं उनका वर्णन किया था। दूसरी ओर मेरठ और दिल्ली के साधारण सैनिकों की वीरता की तारीफ करते हुए विक्टर ने उदाहरण देकर यह सिद्ध किया था कि नैतिक चरित्र एवं उच्चतम मानवीयता जैसी इन साधारण परिवारों में उत्पन्न हुए सैनिकों में है, वैसी इंग्लैंड के अभिजात वर्ग में भी नहीं मिल सकेगी।

एक बार समाचार और लेख पर दृष्टिपात करते हुए विक्टर ने पूछा—"कमाण्डर जनरल आपने यह सब पढ़ा है ?"

—"हाँ मिस्टर विक्टर, कल जब यह लिफाफा आया तो मैं अपनी उत्सुकता नहीं दबा सका, मैं आपके सामने स्वीकार करता हूँ कि मैंने यह सब पढ़ लिया है।" गम्भीर स्वर में बरनार्ड ने उत्तर दिया।

—"अगर आप आज्ञा दें तो एक सवाल मैं आपसे पूछना चाहूँगा ?"

बरनार्ड ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी।

—"मैंने जो कुछ भी इसमें लिखा है क्या वह झूठ है ?"

—"व्यक्तिगत रूप से मैं कहूँगा कि आपने इसमें जो-कुछ लिखा है वह सच है किन्तु इसके साथ ही एक फौजी अधिकारी के नाते यह भी कहूँगा कि आज जब कि ब्रिटिश सेना यहाँ जीवन और मृत्यु के बीच अपने दिन बिता रही है, हिन्दुस्तानियों की तारीफों से भरे हुए लेख और समा-

चार इंग्लैंड की जनता तक नहीं पहुँचने चाहिएँ। आज हमारा और पूरी ब्रिटिश सेना का हित इसीमें है।"

—"बड़े खेद के साथ मैं कमांडर जनरल को याह यद दिलाना चाहूँगा कि मैं भी ब्रिटिश प्रजाजन हूँ, ब्रिटिश प्रजाजन होकर ब्रिटिश-प्रजा का अहित चाहूँगा ऐसी बात मेरी कल्पना से भी बाहर है। अलबत्ता यह सही है कि मैं यह आवश्यक नहीं समझता कि ब्रिटिश प्रजाजन होने की यह शर्त भी है कि हिन्दुस्तानियों का बुरा चाहा जाय। हिन्दुस्तानियों ने हमारे देश के स्त्री, पुरुष और बच्चों को सुरक्षित हमारे पास पहुँचा दिया, और हम उन्हें हत्यारे ही कहते रहें, क्यों? इससे ब्रिटिश प्रजा, ब्रिटिश सम्राज्ञी, और कम्पनी सरकार को क्या लाभ होगा?"

—"मुमकिन है कोई लाभ न हो, सचमुच मिस्टर विक्टर मुझमें राज-नीतिक ज्ञान नहीं है। किन्तु आज हमारे राजनीतिज्ञ अगर ऐसा कहने में ही अपना हित देखते हैं तो मैं प्रतिरोध की आवश्यकता नहीं समझता, सच बात छिपी नहीं रह सकती। कल परिस्थिति अनुकूल होने पर मैं या आप स्वयं ही सच बात प्रकट कर सकते हैं।"

विक्टर ठहाका मारकर हँस पड़ा—"आज की अपेक्षा और कल का विश्वास बहुत भयंकर बात है कमाण्डर जनरल, कौन कह सकता है कि कल क्या होगा, हो सकता है कि हम दोनों, जो इस कठोर सत्य से परिचित हैं, उस समय से पहले ही चिर-निद्रा में सो जायें जब कि सत्य को प्रकट करने की अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न हो। हो सकता है कि आपके कथित कल के आने से पहले ब्रिटिश जनता नग्न सत्य को जान ले और हमें झूठा और बेईमान-जैसी पदवियों से सुशोभित करे, हो सकता है कि हमारे विश्वास के प्रतिकूल हमारे भाग्य में पराजय लिखी हो, तब हमें भारतीय इति-हासकार क्या कहेंगे, हमारे राष्ट्र को हमारी जाति को, अगर उन्होंने अनैतिक, पतित और और मनुष्यता हीन कहा तो हम कैसे उसका प्रतिरोध कर सकेंगे।"

—"निश्चित रूप से उसका प्रतिरोध कर सकेंगे।" दृढ़ स्वर में बरनार्ड ने कहा—"इसलिए कि हम हिन्दुस्तानी जाति को प्रगति की ओर ले जा रहे हैं। इससे भी बढ़कर हमें दिल्ली को जिससे अक्सर पूरे हिन्दुस्तान का भाग्य बँधा रहता है एक भीषण श्राप से मुक्त करने के पुण्य लक्ष्य को सामने रखकर लड़ रहे हैं। वह श्राप है लाल किला और उसके रहने वाले। मिस्टर विक्टर, पूरी दुनिया में ऐसे पतित और व्यभिचारी व्यक्ति आपको नहीं मिलेंगे, कितने कृतघ्न और पतित हैं वह लोग आप कल्पना भी नहीं कर सकते………"

विक्टर होठों-ही-होठों में मुस्करा दिया। बरनार्ड अपनी धुन में कहे जा रहे थे—"आज से पचास से भी अधिक वर्ष पहले जब लार्ड लेक यमुना नदी पार करके दिल्ली के इस मनहूस किले में प्रविष्ट हुए उस समय उन्होंने दया करके अन्धे तथा निर्बल नामधारी बादशाह शाह आलम को दया प्रदान की, बैठे-बैठाये उसे एक लाख रुपये महीने की पैंशन दी, तथा कम्पनी की सेना द्वारा विजित बड़ी जागीर भी दी।"

—"यह मैं सब-कुछ जानता हूँ, कमाण्डर जनरल!" कटुता भरे स्वर में विक्टर बोला।

—"यह इतिहास की बात है, आप अवश्य जानते होंगे, किन्तु आप यह नहीं जानते होंगे कि शाह आलम के युग से लेकर आज तक किले का वास्तविक जीवन क्या है? किले में स्थित महल के भीतर उच्च श्रेणी के कालीन और मैली-कुचैली चटाइयाँ साथ-साथ दृष्टिगत होती हैं, यहाँ सैकड़ों नवयुवक और नवयुवतियाँ निरर्थक जीवन व्यतीत करती हैं। संक्षेप में नवयुवक और नवयुवतियाँ व्यभिचार में व्यस्त रहते हैं और बूढ़े और बूढ़ियाँ षड्यंत्र में। जरा एक ऐसे जीवन की कल्पना कीजिये जहाँ अमानवीय भावनाएँ प्रत्येक सम्भावित रीति से उत्तेजित की जाती हों। यकीन मानिये मिस्टर विक्टर पतन के ऐसे उदाहरण यूरोप के निम्नतर चकलों में भी नहीं मिलेंगे।"

एक क्षण चुप होकर विक्टर के चेहरे पर दृष्टि गड़ाते हुए बरनार्ड ने कहना जारी रक्खा—"जहाँ नियम-पालकता न हो वहाँ नैतिक आचरण कभी भी अच्छी दशा में नहीं रह सकता, किन्तु किले के महल में व्यभिचार, हत्याकाण्ड, विष-प्रयोग और यंत्रणा देकर मारने की घटनायें नित्य की आम बातें हैं। बादशाह के महल की सीमा में अपराध-कला में दक्ष बनाने वाली अध्ययन शाला खूब उन्नत अवस्था में है। पहलवान, मसखरे नाचने वाली औरतें, जो कामाग्नि को उत्तेजित करने के लिये नंगी नचाई जाती हैं। षड्यंत्र वहाँ के जीवन का प्रमुख अङ्ग है, पत्नियाँ पतियों के विरुद्ध षड्यंत्र रचती हैं, रखेलियाँ ब्याहता स्त्रियाँ, और मातायें पुत्रों के विरुद्ध षड्यंत्र में भाग लेती हैं। स्त्री-पुरुष सुन्दर लड़कियों के लिये दूर-दूर प्रदेशों की खाक छानते फिरते हैं ताकि महलों में उन्हें कथित शाहजादों की काम-वासना-तृप्ति के लिये प्रस्तुत किया जा सके। दुष्टता के ऐसे केन्द्र में सभी कुछ संभव है मिस्टर विक्टर, किन्तु मूर्ख हिन्दुस्तानी इस किले को, किले में रहने वालों को ईश्वर के समान पूजते हैं। अङ्गरेज जाति को इस बात का गर्व है कि वो इस शर्मनाक परम्परा का अन्त करने की दिशा में प्रयत्नशील है।

—"यह हुई दिल्ली को शापमुक्त करने की कहानी।" विक्टर ने कहा—"जो विगत पचास वर्षों से पूरे इंगलैण्ड में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भागीदारों द्वारा दुहराई जा रही है, और जिसे संक्षेप में किन्तु प्रभावशाली ढंग से आपने भी दुहरा दिया है। किन्तु कमाण्डर जनरल, जिस प्रकार आपने यह कहानी कही है······इंगलैण्ड का प्रत्येक नागरिक जानता है कि जब कोई व्यक्ति इस प्रकार इस कहानी को दोहराये तो उसका क्या उद्देश्य होता है। मैं भी जानता हूँ जानता, हूँ इसीलिये एक सवाल पूछता हूँ कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी-जैसी व्यापारिक संस्था क्यों दिल्ली को शाप मुक्त करना चाहती है। क्या ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा निर्मित इस देश की शासन-व्यवस्था केवल कम्पनी के मुनाफे के दृष्टिकोण से नहीं

बनाई गई है ?"

—"शायद मुनाफे के लिए ही यहाँ की शासन-व्यवस्था बनाई गई हो, किन्तु कम्पनी द्वारा अनेकों कार्य इस देश के वासियों के हित में भी किये गये हैं……।"

—"एक दम गलत, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डायरेक्टर इतने परोपकारी नहीं हैं मैं जानता हूँ। कम्पनी की सेना एक के बाद एक प्रान्त फतह करती गई और निरंकुश शासकों की सत्ता अपने हाथ में लेती गई। किन्तु इससे प्रजा को क्या लाभ हुआ ? उनकी सीधी-सादी न्याय-व्यवस्था को आपने चौपट कर दिया। विलासी और निरंकुश हिन्दुस्तानी शासकों की लूट की एक सीमा थी किन्तु हमारी जाति ने इस लूट-खसोट को रबर के गुब्बारे की तरह बेहिसाब बढ़ाकर सीमाहीन कर दिया है।"

बरनार्ड की तर्क-शक्ति अब शायद समाप्त हो गई थी, इसीलिए उसने बात को समाप्त करना चाहा—"यूँ ही सही, यह बात तो आप मानेंगे ही कि यह सब ब्रिटिश जाति की सम्पन्नता के लिये ही किया गया है।"

—"जी नहीं, यह कुछ लोगों ने केवल अपनी सम्पन्नता के लिये किया है।" विक्टर मुस्कराया—"कमाण्डर जनरल, हिन्दुस्तान मैंने अपनी आँखों से देखा है, ईस्ट इंडिया कम्पनी के डायरेक्टरों के देश में उत्पन्न हुआ हूँ इसलिये उन्हें भी जानता हूँ। यह भी जानता हूँ कि इंगलैंड में इन कुबेरों के होते हुए भी इंगलैण्ड की जनता का एक बहुत बड़ा भाग दोनों समय पेट-भर भोजन भी नहीं जुटा पाता है।"

विक्टर से पार पाना कठिन है, यही सोचकर बरनार्ड चुप हो गये। अलबत्ता वह यह जताने के लिये मुस्कराते अवश्य रहे कि विक्टर की बातों का उन्होंने बुरा नहीं माना है।

बात समाप्त करते हुए विक्टर ने कहा—"आपका बहुत समय व्यर्थ किया। क्या कलम, दवात और कागज मिल सकेगा ?"

एक सैनिक द्वारा बरनार्ड ने सब वस्तुएँ मँगवा दीं। विक्टर ने सम्पादक के नाम अपना त्याग-पत्र लिखा :—

"सम्पादक महोदय,

चूँकि हिन्दुस्तान से निष्पक्ष समाचार भेजना अब सम्भव नहीं है, इसलिये मैं अब आपका विशेष सम्वाददाता बना रहना आवश्यक नहीं समझता।'—विक्टर।"

कागज बरनार्ड की ओर बढ़ाते हुए विक्टर ने पूछा—"क्या यह पत्र इंगलैण्ड जा सकेगा।"

—"अवश्य जा सकेगा, मैं इसमें कोई शब्द आपत्तिजनक नहीं देखता।"

विक्टर ने बरनार्ड से कागज लेकर उसे तह करके, ऊपर पता आदि लिखकर पुनः बरनार्ड की ओर बढ़ाते हुए कहा—"तब आप इसे अपनी डाक के साथ ही भिजवा दीजिएगा। ब्रिटिश फौज, गवर्नर जनरल तथा आपकी कृपा से मेरी चालीस पौण्ड की मासिक आमदनी आज से समाप्त हो गई है।"

हाथ उठाकर मौन अभिवादन करके बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये ही विक्टर खेमे से बाहर चला आया।

: ९ :

—"बेटे! अहले-हिन्द में एक दिन तुम्हारा नाम सूरज और चाँद की तरह चमकेगा।" इस आत्मीय आशीष सहित विक्रम को एक सितार भेंट करते हुए उस्मान खाँ ने उसे आदेश दिया कि—"रियाज करना मत छोड़ना।"

हसीना, जो कई दिन से विक्रम के वापस लश्कर में जाने की रट लगाये रहने के कारण मुँह फुलाये रही थी, विक्रम के चरण-स्पर्श करने पर

आशीष तो न दे सकी केवल इतना ही कह पाई कि—"देवर जी साफ कहे देती हूँ कि रोज शाम को अपने भाई को साथ लेकर यहाँ आना होगा। जिस दिन जान-बूझकर न आओ, उस दिन अपनी भाभी का मरा मुँह देखो।"

इस प्रकार आशीष से लेकर स्नेह सम्बन्धों की सौगन्ध के बन्धनों तक में बँधकर विक्रम लगभग पौने दो मास तक हनीफ की ससुराल की मेहमानी खाकर फिर अपने कार्य-क्षेत्र में आ गया।

दिल्ली का स्वाधीनता-संग्राम घिसट रहा था, शहजादों के अनुभवहीन सैन्य संचालन के कारण आम सिपाहियों में गहरी निराशा थी। स्वयं सेनापति मिर्जा मुगल के नेतृत्व में बुन्देलों की सराय पर अंग्रेजों पर आक्रमण किया गया, कई सौ हिन्दुस्तानी अंग्रेजों को वहाँ से हटा भी नहीं पाये। दूसरी इससे भी अप्रिय घटना हिण्डन नदी के किनारे घटी, वहाँ की कमान शहजादे मिर्जा अबूबकर के हाथ में थी। नाजों में पले शहजादे तोपों के धमाकों की आवाज को सहन न कर सके और सेना को दुश्मन के सामने खड़ा छोड़कर स्वयं वहाँ से भाग आये।

दिल्ली के उत्तर में स्थित काश्मीरी दरवाजे के सामने अस्त-व्यस्त कुदसिया बेगम के महल के निकट अंग्रेजों का अस्थायी तोपखाना दिनों दिन स्थायी होता जा रहा था।

यह परिस्थिति थी, किन्तु स्वाधीनता के सैनिकों और समर्थकों का हृदय अब भी अन्त में विजय-कामना से निराश नहीं था।

दोपहर को जब मिर्जा मुगल अपने फौजी पड़ाव वाले खेमे में तशरीफ लाये तब हनीफ विक्रम सहित वहाँ पहुँचा। अभी वह विक्रम का परिचय दे ही रहा था कि हसन अस्करी ने खेमे में प्रवेश किया।

हसन अस्करी के सम्मान में मिरजा मुगल आसन छोड़कर खड़े हो गये। हनीफ ने भी अस्करी का सैनिक ढंग से अभिवादन किया। मिर्जा और हनीफ की देखा-देखी विक्रम ने भी हसन अस्करी का अभिवादन किया।

विक्रम मन-ही-मन सोच रहा था कि यह साधु निश्चित रूप से कोई प्रभाव-शाली व्यक्ति होगा। तभी तो सेनानायक मिर्जा भी उसके सामने नत मस्तक हैं।

कुछ क्षण टकटकी बाँधे विचित्र मुख-मुद्रा में हसन अस्करी विक्रम को गौर से देखता रहा। मिर्जा मुगल ने समझा कि शायद वह सन्देहवश ऐसा कर रहा है।

—"पीर साहब, यह हवलदार बड़ा होनहार सिपाही है। बेचारा मुहीम के पहले दिन ही एक फिरंगी अफसर के हाथों घाव खा गया था.........।"

—"जानता हूँ।" गम्भीर स्वर में हसन ने कहा—"और यह भी जानता हूँ कि शहरपनाह दिल्ली में आकर जंगे-आजादी की रोशन शमा जलाने वाले मेरठ के बहादुर सिपाहियों में यह पहला बहादुर था जिसने सबसे पहले दिल्ली की मुकद्दस जमीन पर अपना घोड़ा बढ़ाया था—बहादुर तुम्हारा नाम क्या है?'

—"विक्रम।" झुककर अदब से विक्रम ने कहा।

—"राजपूत हो।"

—"जी।"

—"दौलतखाना शहर मेरठ है?"

—"जी नहीं आगरा में पैदा हुआ था, बदनसीब हूँ पैदा होने के चन्द साल बाद माँ-बाप दोनों ही परलोक सिधार गये। कोई नाते-रिश्ते में भी ऐसा न था जो सिर पर हाथ रखता। आगरा के पण्डित मोहन-दास ने दया करके मुझ अनाथ को अपने घर में पनाह दे दी थी।"

—"पण्डित मोहनदास, आगरा के मशहूर सितारिये?"

—"जी।"

—"उनका इन्तकाल हुए तो तीन साल से ज्यादा हो चुके हैं।"

—"जी, उनके स्वर्गवास के बाद मैं उनकी बहन के यहाँ मेरठ

चला आया था। वहाँ खाली बैठे-बैठे जी उकता गया तो फिरंगी फौज में भरती हो गया था।"

—"मियाँ शहजादे!" हसन ने मिर्जा को सम्बोधित किया—"ऐसे जवाँमद शहजादे को हुजूर बादशाह की तरफ से खिलअत[1] मिलनी चाहिये, तुम्हें मेरी बात पर ऐतराज तो नहीं है?"

—"नहीं पीर साहब, मैं बहादुरों की दिल से इज्जत करता हूँ, भला मुझे क्यों ऐतराज होगा? मैं आज ही बादशाह अब्बा से कहूँगा?"

—"तुम्हें तकलीफ नहीं करनी पड़ेगी, मैं खुद ही किले जा रहा हूँ। सूबेदार दुल्हे मियाँ?"

—"जी।" हनीफ ने कहा।

—"इस नौजवान को शाही बैठकखाने के दरवाजे पर ले आओ।"

—"जो हुक्म।" अदब से कोरनीस करते हुए हनीफ ने कहा।

तनिक पलकें झुकाकर ऊँचे किन्तु गम्भीर स्वर में हसन ने कहा—"मौला तेरी मेहरबानियों का लाख-लाख शुक्रिया। जिस इन्सान को ढूँढ़ रहा था आज वह मिल ही गया।"

सभी के अभिवादनों का संक्षिप्त उत्तर देकर हसन अस्करी तेजी से खेमे के बाहर चला गया।

मिर्जा मुगल ने आगे बढ़कर विक्रम की पीठ थपथपाते हुए कहा—"उम्र-दराज हो नौजवान, खुदा करे जिन्दगी में बड़ी-बड़ी कामयाबियाँ हासिल करो।"

हनीफ और विक्रम दोनों पैदल ही किले की ओर चले।

राह में विक्रम ने प्रश्न किया—"यह पीर कौन था?"

—"हसन अस्करी, बादशाह का दामाद।

—"दामाद?"

—"हाँ, एक शहजादी पहले इसकी मुरीद बनी फिर बीबी

१—सम्मान।

बन गई।"

—"अच्छा आदमी है ?"

—"कुछ पता नहीं, कुछ लोग इसे मसीहा की तरह पूजते हैं, कुछ ढोंगी और बदइखलाक भी कहते हैं। लेकिन शाही घरानों में इसकी बहुत इज्जत है। वैसे कैसा भी हो फिरंगी के दुश्मनों से बहुत खुश रहता है।"

राह-भर दोनों हसन अस्करी के बारे में ही बातें करते रहे। शहर से दूर एकान्त में रहने वाला यह व्यक्ति समस्त दिल्ली-निवासियों के लिए रहस्यमय था। इसके द्वारा उत्पन्न किये गये अलौकिक चमत्कारों की कहानियाँ दिल्ली में बड़े चाव से कही और सुनी जाती थीं। शहजादी के साथ हसन की प्रेम-लीला का वर्णन की चर्चा दिल्ली की चौपालों और बैठकखानों में आम थी, और इन सबमें महत्वपूर्ण बात यह थी कि हसन अस्करी सेना का बहुत प्रिय हो चुका था। सेना की भिन्न-भिन्न टुकड़ियों में कभी फलों से लदी हुई गाड़ियाँ, कभी मिठाइयों से भरे टोकरे हसन अस्करी द्वारा पहुँचते रहते थे। युद्ध में घायल होने वाले सिपाहियों के खेमों में वह कभी-कभी आधी-आधी रात तक देखा जाता था।

किले के दक्षिणी द्वार से विक्रम और हनीफ जब शाही बैठकखाने के द्वार पर पहुँचे अन्दर पूरी मजलिस जमा थी। ऊँची मसनद पर सम्राट् विराजमान थे और उनके निकट ही हसन अस्करी बैठे थे। उनके सामने हकीम एहसान उल्लाह बैठे कुछ कागजात देख रहे थे। हकीम साहब के पास मिर्जा गालिब और उस्मानखाँ उपस्थित थे।

द्वार पर बसंतखाँ था। सम्भवतः उसे पहले से ही आदेश दे दिया गया था।

सलाम बजाते हुए उसने कहा—"सूबेदार साहब, जहाँपनाह आपका ही इन्तजार कर रहे हैं।"

हनीफ विक्रम सहित अन्दर बैठकखाने में पहुँचा। दोनों ने कोरनिस की और द्वार के निकट ही खड़े हो गये।

वृद्ध सम्राट् ने दृष्टि उठाकर देखा और मुस्कराये—"सूबेदार दूल्हे मियाँ आगे आओ ! तुमने हमें कभी अपने इस बहादुर दोस्त के बारे में नहीं बताया, उस्मान मियाँ कह रहे हैं कि तुम्हारे दोस्त जितने बहादुर है उतने ही बढ़िया गवैये भी हैं ?"

मन ही मन हनीफ मुस्कराया किन्तु प्रकट रूप में उसने गम्भीर हो कर कहा—"हुजूर मैं तो मामूली सिपाही हूँ। कोई दूसरा इल्म परखने की काबलियत मुझ में नहीं है।"

—"हूँ।" सम्राट् हँसे—"तुममें इन्सान परखने की काबलियत है। दूल्हे मियाँ, और यह काबलियत सबसे ऊँची काबलियत है। हम आज से तुम्हारे दोस्त को तुम्हारे बराबर रुतबा देते हैं—नौजवान आज से तुम किले के लाहौरी दरवाजे की गारद के सूबेदार बनाये गये।"

हनीफ और विक्रम दोनों ने कोरनिस की।

—"हम तुमसे बहुत खुश हैं नौजवान आगे आओ ·········यह लो पच्चीस मुहरों की थैली हम तुम्हें अपनी ओर से इनाम देते हैं।"

थैली लेकर विक्रम ने एक बार फिर कोरनिस की, —"हजूरे आला कुछ अर्ज करनी थी ?" दृष्टि नीचे करके विक्रम ने धीमे स्वर में कहा।

—"शौक से कहो नौजवान, क्या कहना चाहते हो ?"

एक बार सभी उपस्थित व्यक्तियों ने दृष्टि उठाकर विक्रम की ओर देखा दृष्टि नीचे किये ही विक्रम ने कहा—"आलीजहाँ अगर मुनासिब समझें तो मुझे लड़ाई के मैदान के करीब ही रहने दें।"

गम्भीर किन्तु स्नेह मिश्रित स्वर में सम्राट् बोले—"लड़ाई का मैदान दूर तो नहीं है बेटे, हमारा यकीन करो जिस दिन भी मैदान-जंग को तुम्हारी जरूरत होगी हम तुम्हें दिल के अरमान निकालने का पूरा मौका देंगे। उस्मान मियाँ कहते हैं कि अभी तक तुम्हारे घाव की जगह की खाल

कच्ची है। हाथ पर ज़ोर देने से घाव फिर हरा हो सकता है। बसंतखाँ ......। नौजवान को किले के लाहौरी दरवाजे के सूबेदार राजसिंह के पास ले जाओ। आज से दरवाजे की गारद के सूबेदार यह नौजवान विक्रमसिंह हुए, सूबेदार राजसिंह से कहो कि वह झाँसी के सफर के लिये तैयार होकर दोपहर बाद दीवाने-खास में हाजिर हों।"

विक्रम और हनीफ दोनों अभिवादन करके जा ही रहे थे कि सम्राट् फिर बोले—"सूबेदार विक्रमसिंह किसी दिन हम भी तुम्हारे गले का जौहर देखना चाहेंगे।"

सम्राट् की बात सुनकर विक्रम लजा गया। कुछ क्षण आश्चर्य-चकित सा खड़ा रहा। समझ नहीं पा रहा था कि सम्राट् की बात का क्या उत्तर दे।

सम्राट् हँसे—"हम तुम से कह रहे हैं सूबेदार विक्रमसिंह......!"

—"आलीजहाँ।" विक्रम के स्वर में शुष्क हकलाहट थी, मानो प्रयत्न करने पर भी जबान न हिल पा रही हो—"मैं......मैं इस काबिल कहाँ हूँ.........जिल्ले सुभहानी का बेकार ही वक्त खराब होगा।"

विक्रम की सूरत ऐसी हो रही थी मानो किसी छोटे बच्चे को 'हव्वा' कहकर डरा दिया गया हो। उसके पसीने से भरे चेहरे को देखकर नौशा मियाँ और उस्मानखाँ दोनों ही मुस्करा दिये। अपने स्थान पर बैठे-बैठे ही उस्मानखाँ ने उसका धैर्य बँधाते हुए कहा—"बेटे विक्रम परेशान होने की जरूरत नहीं है। हमारे शहन्शाह चूँकि फनकार हैं इसलिये फनकारों की कद्र भी जानते हैं। यह तुम्हारे लिए नादिर मौका है। इन्शा अल्लाह तुम्हारे गले में कमाल है, रियाज भी बुरा नहीं है। हुजूरे आली के रूबरू अपने इल्म को पेश करने से तुम्हारे हक में सबसे बड़ी बात यह है कि आलम-पनाह से इसलाह पाने का मौका तुम्हें बड़ी आसानी से हासिल हो गया है।"

सम्राट् उठे। विक्रम के पास पहुँचकर उन्होंने उसका कंधा थपथपाते

हुए कहा—"बेटे तुम हमारे बेटे नहीं पोते के बराबर हो, और यूँ भी बादशाह रियाया का बाप कहलाता है। मानते हैं कि बुजुर्गों का अदब करना जरूरी होता है लेकिन बुजुर्गों से डरना कतई लाजिमी नहीं है। जुमेरात की सुबह तुम हमें अपना गाना सुनाना। बोलो सुनाओगे······?"

—"जी······जी आलीजहाँ।"

—"उम्र-दराज हो। जाइयें।"

बैठकखाने से बाहर आकर हनीफ ने देखा कि विक्रम इस तरह हांफ रहा है मानो बहुत दूर से दौड़ता आया हो।

—"सचमुच तू तो बादशाह सलामत से डर गया विक्रम!" विक्रम की दशा देखकर मुस्कराते हुए हनीफ ने कहा।

—"नहीं डरा तो नहीं हूँ।" पसीना पोंछते हुए विक्रम बोला—"दरअसल भैया मैं सिपाही हूँ दरबारी नहीं हूँ।"

—"आइये सूबेदार साहब!" बसन्तखाँ, जो तनिक पीछे रह गया था, निकट आकर बोला।

—"अभी चलता हूँ, भैया यह लो!" मुहरों की थैली हनीफ की ओर बढ़ाते हुए विक्रम ने कहा—"घर जाओ तो भाभी को दे देना।"

—"मैं तेरा या तेरी भाभी का नौकर नहीं हूँ, क्या समझ रक्खा है तूने! क्या मुझे घर आने और जाने के अलावा और कोई काम ही नहीं है। खाँ साहब ले जाइये इसे।"

—"सूबेदार साहब चलिये।"

: १० :

हनीफ और विक्रम के दरवाजे से बाहर पाँव रखते ही नौशा मियाँ बोले—"हुजूर मेरे लिए क्या हुक्म है ?"

—"तुमसे हमें बहुत शिकायतें हैं नौशा मियाँ !" मुस्कराते हुए सम्राट ने कहा—"अगर एक-एक शिकायत गिनाने बैठें तो शाम हो जायेगी। मियाँ आखिर रहते कहाँ हो, तुम्हारे तो दीदार ही नहीं होते। कई दिन से हम सोच रहे थे कि बाकायदा हुक्मनामा जारी करके तुम्हें तलब करें—इत्तिफाक से कल उस्मान मियाँ नजर पड़ गये। उस्मान मियाँ हम तुम्हारे शुक्रगुजार हैं कि तुमने हमारे महबूब मुजरिम को सही वक्त लाकर हाजिर कर दिया और किसी कदर हमारी परेशानी को दूर करने में हमारी मदद की।"

—"मुझे अपने जुर्म का इकबाल है बादशाह सलामत, दरे दौलत पर सिर्फ यह सोचकर हाजिर नहीं हुआ था कि हुजूर आजकल जरूरत से ज्यादा मशरूफ[1] रहते हैं, यही सोचता रहता था कि कहीं मेरी हाजिरी बन्दानवाज के सर-दर्द की वजह न बन जाये।"

—"बहुत खूब. इसका मतलब यह हुआ कि हम हर रोज सुबह तलवार बाँधकर मैदाने-जंग में जाते हैं और शाम को हारे-थके लौटते हैं।"

सम्राट् की बात पर जोर का कहकहा लगा। हकीम एहसान उल्लाह, जो अभी तक कागज पत्रों में तल्लीन थे, कुछ कागजात सम्राट् के सम्मुख रखते हुए बोले—"गुस्ताखी माफ हो आलीजहाँ, सिर्फ मैदाने-जंग में जाने से ही तो आदमी नहीं थकता। इस उम्र में—दीवाने-खास में ही सही, आप जो ताकत ज्यादा-से-ज्यादा काम करते हैं क्या उसकी अहमियत नहीं है।"

—"हो सकता है कि अहमियत हो। लेकिन हकीम साहब जब हम अपने बारे में सोचते हैं तो महसूस करते हैं कि हम ऐसी मुहर हैं

---

१. व्यस्त।

जिसकी घिसने के बाद कोई अहमियत नहीं रहेगी; और तब......शायद जल्दी ही हम भी बेकार चीजों की तरह से एक तरफ फेंक दिये जायेंगे।"

सम्राट् की बात में गहन पीड़ा और निराशा थी। क्यों? इसका उत्तर शायद उनके मुँह लगे मुसाहिब हकीम साहब दे सकते हों। किन्तु नौशा मियाँ और उस्मान खाँ इस निराशा का अर्थ नहीं समझ पाये।

केवल बात का रुख बदलने के इरादे से नौशा मियाँ बोले—"हुजूर का इकबाल बुलन्द रहे। इन बेकार की बातों को दिल और दिमाग में जगह नहीं देनी चाहिये।"

हसन अस्करी, जो विक्रम और हनीफ के जाने के बाद से ही आँखें मूँदे ध्यान मग्न-सा बैठा था, उठ बैठा। बड़े ही रहस्यमय ढंग से सभी उपस्थित व्यक्तियों पर दृष्टिपात करके अन्त में सम्राट् पर अपनी दृष्टि स्थिर करता हुआ गम्भीर स्वर में बोला—"बादशाह सलामत जिन्दगी एक जुआ है, एकदम अनजाने हाथ से फेंकी गई बेजान कौड़ियों की तरह। लेकिन हार-जीत का फैसला करने वाली कौड़ियों के सिर्फ दो पहलू होते हैं चित्त और पट। आम तौर से हर आम और खास इन्सान को जिन्दगी के हर मोड़ पर दाँव लगाना पड़ता है और दाँव लगाने के लिये इंसान के पास सिर्फ एक चीज है, जिन्दगी। क्या बादशाह सलामत मेरी बात का एतबार करते हैं?"

सम्राट् ने सिर हिला कर स्वीकृति दी।

हसन अस्करी कुछ कदम चला, बैठकखाने के दरवाजे के निकट पहुँचकर वह फिर मुड़कर खड़ा हो गया—"इंसान जिन्दगी का दाँव लगाने को इसलिये मजबूर होता है कि इसके अलावा उसके पास कोई ऐसी चीज नहीं है जिसके एवज में वह जिन्दगी को महफूज रख सके......और हुजूर बादशाह, सबसे अहम बात यह है कि जो खुदा हसन अस्करी का है वही बादशाह और शाही खानदान का है, और वही खुदा उन मासूम

लड़कों का भी है जो सुबह से शाम तक सिर से कफन बाँधे मैदाने-जंग में दुश्मन से लोहा लेते हैं। खुदा सबका है, सबका भला-बुरा सोचता है।"

इतना कहकर बिना किसी के उत्तर की प्रतीक्षा किये हसन अस्करी चला गया।

उसके जाने से एक आम उदासी सी बैठक में छा गई। सम्राट् हकीम साहब द्वारा रक्खे कागजों पर अपने कांपते हुए हाथों से दस्तखत कर रहे थे।

ऐसे ही उदासी-भरे वातावरण में बसंत खाँ ने आकर सूचना दी—"शाहादरा चौकी के दारोगा दरे-दौलत पर हाजिर हैं और एक जरुरी खबर अर्ज करना चाहते हैं।"

—"आने दो।" सम्राट् के आगे से कागज समेटते हुए हकीम साहब ने आदेश दिया।

सैनिक वेश में एक बूढ़ा किन्तु चुस्त व्यक्ति बैटकखाने में उपस्थित हुआ। सम्राट् की ओर कोरनीस करके प्रफुल्ल स्वर में उसने समाचार दिया—"बन्दा परवर बरेली की सेना के दो घुड़सवार आज सुबह शहादरा पहुँचे हैं, उन्होंने खबर दी है कि बरेली की फौज मय खजाने और तोप-खाने के गाजियाबाद पहुँच चुकी है और दोपहर के पड़ाव के बाद चलकर शाम तक शहादरा पहुँच जायेगी। घुड़सवारों के हाथ सूबेदार मुहम्मद बख्त खाँ ने आलीजहाँ को बाअदब सलाम भेजा है, और दिल्ली शहर में दाखिल होने का हुक्म चाहा है।"

सम्राट् के चेहरे पर मुस्कराहट फैल गई—"बरेली की फौजों और उसके सूबेदार मुहम्मद बख्त खाँ की बहादुरी का चर्चा हमने लखनऊ से आने वाले कितने ही मुसाफिरों से सुना है। यह सुनकर हमें खुशी हुई कि बरेली की बहादुर फौज दिल्ली के करीब पहुँच चुकी है। दारोगा साहब आप फौरन जाकर मुहम्मद बख्त खाँ को हमारा पैगाम खुद जाकर दीजिये कि हमारी दुआएँ उस बहादुर इंसान के साथ हैं।" सम्राट् ने अपने

हाथ की उँगली में से एक अँगूठी उतारकर दारोगा की ओर बढ़ाकर कहा—"हमारी निशानी सूबेदार को देकर कहना कि रात का पड़ाव शाहदरा मुकाम पर ही करें, और कल आला सुबह जमना पार करें।"

दारोगा अँगूठी लेकर लौट गया। सम्राट् फिर बोले—"हकीम साहब हुक्म जारी किया जाय कि कल सुबह जमुना के पुल पर बरेली की फौज का आम इस्तकबाल किया जायगा। हमारी नुमाइन्दगी आप खुद कीजियेगा, नवाब अहमद कुली खाँ और जनरल समद खाँ को भी अपने हमराह ले जाइयेगा।"

—"जो हुक्म।" उठते हुए हकीम साहब ने कहा—"मैं यह हुक्मनामे शाहजादे मिर्जा मुगल को पहुँचा दूँ।"

—"साथ-साथ उन्हें बरेली की फौज के पहुँचने की खबर भी दे देना।"

हकीम साहब के जाते ही सम्राट् ने नौशामियाँ की ओर दृष्टि फेरी—"बातें अब होंगी नौशा मियाँ, बादशाही बवाल से कुछ देर के लिये ही सही, पीछा छुट गया है।"

—"सबसे पहले हुजूर यह फरमायें कि क्या बन्दे से अब भी नाराज हैं?"

—"ये नाराजगी तो जीते जिन्दगी रहेगी नौशे मियाँ, न तुम अपनी जानिब से बेरुखी छोड़ोगे और न हमारी नाराजगी खत्म होगी। अलबत्ता इस वक्त जो हमारी हालत है उस पर एक शैर अर्ज है......।"

—"इरशाद फरमाइये।" नौशा मियाँ और उस्मान खाँ दोनों एक साथ ही बोल उठे।

कुछ क्षण गुनगुनाकर सम्राट ने शैर कहा :—

मेरे दिल में था कि कहूँगा मैं जो ये दिल में रंजो मलाल है।
वोह जब आ गया मेरे सामने, न तो रंज था न मलाल था॥

—"बहुत खूब हुजूरे आली, गजब का शैर है। क्या खूब 'वोह जब

आ गया मेरे सामने न तो रंज था न मलाल था।' कमाल पैदा किया है, पूरी गजल सुनाइयेगा बन्दा परवर ?"

—"कल ही कहा है, गजल अभी पूरी नहीं हुई है, इससे पहले का एक शैर और है वो चाहो तो सुन लो।"

—"जरूर इरशाद फरमाइये हुजूर !"

—"शैर अर्ज है:—

मेरी आँख बन्द थी जब तलक वोह नजर में नूरे जमाल था।
खुली आँख तो न खबर रही कि वोह ख्वाब था कि ख्याल था॥

—"वल्लाह क्या बुलन्द ख्याली है, खूब !"

—"वाहवाही की जरूरत नहीं है नौशे मियाँ, अब तुम्हारी बारी है। इरशाद हो कि इस दौर में क्या कहा है ?"

—"कुछ भी तो नहीं कहा है आलीजहाँ, जबसे दिल्ली की मुहीम शुरू हुई है तभी से सारा दिन लोगों से जंग के अजीबो-गरीब वाकयात सुनने में बीत जाता है। शाम होती है तो बिस्तरे का दामन पकड़ लेता हूँ। अर्ज नहीं कर सकता कि माजरा क्या है, यह जंग और तोपों के गोलों के धमाकों का असर है या बुढ़ापे का ?"

"कुछ ऐसी ही हालत हमारी है, न दिन को चैन मिलता है न रात को करार आता है। हकीकत यह है कि जिम्मेदारी का जो बोझ हमारे बूढ़े कंधों पर आ पड़ा है वोह हमसे उठाये नहीं उठता। उस्मान मियाँ तुम्हारा क्या हाल है ?"

उस्मान कुछ कह ही रहे थे कि मिर्जा नौशा बोल उठे—"जिन्दगी इन्हीं की है बन्दा परवर, एक यह और एक लखमणा सेठ दोनों ही दिल्ली की जिन्दगी के रोशन चिराग है। एक ओर मै अपने-आपको देखता हूँ और मायूस थका हुआ-सा पाता हूँ, दूसरी ओर उस्मान खाँ है मानो इनकी जवानी फिर से लौट आई हो। हमेशा की तरह आज भी सुबह-शाम इनकी बैठक में राग और साज गूँजते हैं, और इतने मुस्तैद कि

बाजार में इन्हें चलता देखकर दूकानदार वक्त का अन्दाज लगा लेते हैं।"

—"सुभान अल्लाह, उस्मान मियाँ सच बताओ वह आबे-हयात कहाँ मिलता है जो तुमने पी रक्खा है ?"

उस्मान खाँ हँस दिये—"आलम पनाह अपनी और मिर्जा नौशा की अहम जिन्दगी का मिलान मुझ हकीर इन्सान के साथ मत कीजिये। बे-मकसद जिन्दगी का भार उठाते-उठाते बूढ़ा हो गया हूँ। किसी भी वक्त अल्लाह मियाँ के यहाँ से बुलावा आ सकता है, बस इसीलिये जिन्दगी को उस पाक परवरदिगार की अमानत समझकर इसकी हिफाजत की फिक्र भी उसे सौंप दी है।"

—"खुदा तुम्हारे दुश्मनों को सलामत रक्खे, हमें तुम्हारे सूफियाना ख्याल अच्छे लगे। लेकिन मियाँ जिन्दगी की अहमियत इतनी कम नहीं है जितनी कि तुम समझ बैठे हो।"

—"जिन्दगी की अहमियत तो मैंने कभी कम नही समझी हुजूरे वाला, जिन्दगी का हर लहमा फर्ज पूरा करते बीते यही आरजू रही है। तलवार का बोझ सँभालने की ताकत तो जिस्म में है नहीं अलबत्ता उन बहादुरों का, जो तलवार चला रहे हैं— अपनी इन उँगलियों से तार झनझनाकर और गले से अलापकर जो कुछ भी खिदमत कर सकता हूँ कर रहा हूं— और जब तक जीता हूँ करूँगा।"

—"हम समझे नहीं, क्या हम तुम्हारे कहने का मतलब यह समझें कि फौजी अफसरों को भी तुम्हारे राग सुनने का फख्र हासिल है।"

—"बन्दा परवर मैं आम सिपाहियों के सामने गाता हूँ। दिन-भर की लड़ाई के बाद अगर मेरे काम से उनका दो घड़ी दिल बहल जाता हो तो ये मेरे लिये बड़ी सब्र की बात है।"

—"तुम्हारी बात सुनकर खुशी हुई, भला किस वक्त यह मजलिस होती है ?"

—"रोज शाम को अंगूरी बाग में, वैसे जहाँ तक मुझ नाचीज का

सवाल है मैं तो आठों पहर इस खिदमत के लिये तैयार हूँ।"

—"खुश रहो उस्मान मियाँ, तुम और लक्ष्मण सेठ बस दो ही इन्सान हमारी नजर में ऐसे आये जिनके दिल में फौजियों के लिये इतनी मुहब्बत है।"

तनिक दृढ़ स्वर में उस्मान बोले—"कुफ्र खुदा का उन पाजियों पर जिन्हें इन मासूम बच्चों से नफरत हो। बेअदबी माफ हो आलीजहाँ, जंगे-आजादी की मुहीम की कामयाबी के बाद हुजूर की पूरे मुल्क पर अमलदारी होगी, बड़े-बड़े अफसरों को जागीरें मिलेंगी, नामी और खानदानी लोगों को खिलअत और वजीफे मिलेंगे। लेकिन सिपाही तब भी सिपाही ही रहेंगे। जब कि हर इन्सान जानता है कि हर मुहीम में अदना सिपाही को ही सबसे पहले सर से कफन बाँधना पड़ता है। लड़ाई के मैदान में रोज कितने ही सिपाही मारे जाते हैं—उनके बीवी-बच्चों की इमदाद तो दूर की बात है आज के हालत में उनके लिए कब्र और चिता जुटाना भी मुमकिन नहीं है। फिर भी अगर कोई दिल्ली का बाशिन्दा इनकी शिकायत करता है या इन मासूमों के लिए दिल में नफरत रखता है तो हुजूर मैं उसे शैतान से कम नहीं समझता?"

कुछ क्षण सम्राट् चुप रहे। उसमान खाँ की बात से चाहे वो सहमत ही हों, किन्तु उनकी मुख-मुद्रा के भाव से प्रकट था कि उन्हें यह बात सुनकर खुशी नहीं हुई।

"उस्मान मियाँ!" धीमे स्वर में सम्राट् ने कहा—"तुम्हारी बात को हम गलत नहीं कहें। लेकिन इतना जरूर कहेंगे कि दिल्ली के चन्द बाशिन्दों ने सिपाहियों की जो शिकायतें की हैं वह भी सही हैं। यह मुमकिन है कि चाहे वह वाकयात सिपाहियों के गैर-तालीमयाफ्ता होने के सबब से ही हुए हों; फिर भी हकीकत है कि उन्होंने हमारी कमजोरी और लाचारी का फायदा उठाकर कई अमीरों को लूटा और कितने ही शाही खानदान के लोगों को बेइज्जत किया है। क्या तुम यह सब जायज समझते हो?"

इस भौंड़े और गलत सवाल से उस्मान खाँ तड़प उठे, उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो उनकी नसों के स्थान पर अंगारे दौड़ रहे हों।

नौशामियाँ ने स्थिति सँभालने का प्रयत्न किया, यह सोचकर कि कहीं उस्मानखाँ क्रोध में कोई अनुचित बात न कह डालें वे स्वयं बोल उठे—"सोचने लायक मुद्दआ हुजूरे आली यह है कि यह गलतियाँ क्या इतनी जबरदस्त हैं कि सिपाही इन गलतियों के बाद जिल्ले सुभानी के रहमो-करम के हकदार भी नहीं हैं ?

इस सवाल का सम्राट् क्या उत्तर देंगे यह मिर्जा नौशा जानते थे, और वही उत्तर सम्राट् ने दिया भी—"यह तो हमने नहीं कहा, हम आप सिपाहियों को बेटों की तरह प्यार करते हैं, अलबत्ता जब वह इस तरह का कोई काम करते हैं तो हमें अफसोस होता है। हमारा कोई चाहे जितना अजीज हो, हम यह कतई जरूरी नहीं समझते कि हम उसके ऐबों पर पर्दा डालें—बुरा काम इन्सान को नहीं करना चाहिये। लेकिन अगर हो जाये तो उसे आइन्दा के लिये तौबा जरूर कर लेनी चाहिये।"

अब उस्मान खाँ अपने-आपको न रोक न रोक सके—"आलीजहाँ आपकी यह बात एक आम नसीहत की शक्ल में निहायत ही सही है। बे-अदबी माफ हो, मैं सिपाहियों के गुनाहों के बारे में आपसे इल्तिजा करूँगा कि बराये मेहरबानी उन पर एक बार फिर गौर फरमायें। साथ-ही-साथ यह बात भी सोचें कि दिल्ली के सबसे बड़े रईस सेठ लक्ष्मणदास और शाही खानदान के नूरे-चश्म मिर्जा मुगल बेग आज तक सिपाहियों के हाथों न तो लूटे गये हैं, और न बे-आबरू हुए हैं। इस पहलू पर गौर करने के बाद क्या हुजूर इस नतीजे पर नहीं पहुँचेंगे कि लुटने और बे-आबरू होने वाले सिर्फ वही शख्स थे जो न सिर्फ फिरंगियों के दिली दोस्त थे बल्कि उनके मददगार भी थे, और वह भी ऐसे वक्त में जब कि आज फिरंगियों से अहले दिल्ली की जिन्दगी और मौत की जंग चल रही है।"

सम्राट् चुप रहे। सचमुच ही उन्हें इस बात का कोई उत्तर न सूझ सका।

उस्मान खाँ फिर बोले—"रियाया के मुझ-जैसे कितने ही आदमियों के मुँह बन्द हैं। इसलिये कि वह हजूर की मजबूरी को समझते हैं। हुजूर कौन नहीं जानता कि मिर्जा इलाहीबख्श आपके करीबी रिश्तेदार और खास मुसाहिब हैं, साथ-ही-साथ दिल्ली की रियाया यह भी जानती है कि उनकी फिरंगियों दोस्ती दिनोंदिन बढ़ती ही जा रही है। अच्छा तो यही होगा कि आम सिपाही यह बात कभी भी न जान पायें, लेकिन जिस रोज सिपाही यह सब जान पायँगे तो मिर्जा साहब को तबाह करने पर उतारू हो जायँगे। तब जाहिर है कि हुजूर मिर्जा साहब को बचाने की कोशिश करेंगे, और अहले दिल्ली को भी खानदाने-शाही की इज्जत का ख्याल रहेगा।"

—"..........।" सम्राट् अब भी मौन रहे।

—"हुजूर नाराज हैं ?" तनिक नम्र होकर उस्मान खाँ ने पूछा।

—"नहीं उस्मान मियाँ, हमें तुम्हारी साफगोई पर खुशी है। चुप हम इसलिये रहे कि तुम्हारे सवालों का हमारे पास कोई जवाब नहीं था।"

: ११ :

—"सूबेदार सूरज निकल आया है।" एक सैनिक ने विक्रम को जगाया।

जमुहाई लेता हुआ विक्रम उठ बैठा। वह मन-ही-मन सोच रहा था कि किले की सूबेदारी भी खूब है !

सारा दिन वह मसनद के सहारे बैठा रहा था, साँझ हुई तो अंगूरी बाग से हनीफ़ ने एक सैनिक के हाथ उसका सितार भिजवा दिया था। लगभग एक घण्टे उसने सितार बजाया, फिर उसमें भी मन नहीं लगा। लेट गया, और लेटते ही सो गया। अब जगाने से जागा तो सुबह हो चुकी थी।

तभी दूर से घोड़े के हिनहिनाने का पूर्व परिचित स्वर सुनाई दिया—"अरे, मेरा घोड़ा यह कहाँ से आ गया?"

सैनिक बोला—"एक पहर रात थी तब एक सूबेदार बाग से आये थे। नाम हनीफ बता रहे थे। घोड़ा छोड़ गये हैं और कह गये हैं कि दिन में किसी वक्त घर हो आइयेगा। आपकी भाभी ने बुलाया है।"

—"हूँ। अच्छा हवलदार!" सैनिक को सम्मानित स्वर से सम्बोधित करते हुए विक्रम ने पूछा—"कहो तो मैं जमना नहा आऊँ?"

—"आप मालिक हैं सूबेदार, चाहे जहाँ जाइये!"

—"मेरे बिना कोई काम......?"

—"यहाँ काम ही क्या है? दोपहर को कुछ आदमी बादशाह सलामत को सलाम करने आते हैं तब खिड़की खोल दी जाती है, वरना यहाँ तो आराम-ही-आराम है। तभी तो यहाँ के सूबेदार बादशाह के खास आदमी बनाये जाते हैं। आप सोये तो रात की गारद के हवलदार भी घर चले गये, मुझसे कह गये थे कि आपसे उनका सलाम कह दूँ।"

—"अच्छा! तो मैं नहा-धो आता हूँ। नई ग़ारद किस वक्त आयेगी?"

—"अभी देर है, कहीं दिन चढ़े तक आयेगी। सूबेदार जी, एक बात कहूँ?"

—"कहो!"

—"हवलदार कह रहे थे कि आप सितार बजाने में बड़े उस्ताद हैं, हमें नहीं सुनाइयेगा क्या?"

विक्रम हँसा, और उठकर सैनिक के गले में बाहें डालकर बोला—
"आज रात को सुनायेंगे, क्या रात नहीं सुना तुमने ?"

—"जी मैं नौबतखाने गया था।"

—"अच्छा, आज रात को सुनायेंगे, चलो जरा दरवाजा खोल दो; घोड़ा बाहर निकाल लूँ।

विक्रम को देखकर घोड़ा तनिक उछला, हिनहिनाया और बार-बार गरदन ऊपर-नीचे करता हुआ स्नेह से मचल गया।

—"बहुत दिन में मिले भैया !" घोड़े की पीठ थपथपाते हुए विक्रम ने कहा—"जरा धीमे-धीमे चलना। बाँह जरा कमजोर है।"

बे-जबान पशु ने पुनः सिर हिलाया, मानोविक्रम की बात उसने भली प्रकार समझ ली हो।

सैनिक ने विशाल द्वार का एक किवाड़ लगभग आधा खोल दिया। घोड़े पर चढ़कर बिना एड़ लगाये तनिक लगाम हिलाते हुए विक्रम ने धीमे स्वर में कहा—"चलो भैया !"

एक बार यों ही अनजाने में उसने घोड़ा खानम बाजार की ओर बढ़ा दिया, किन्तु इसके ही क्षण उसने उसे खाई के सहारे-सहारे चलाना शुरू कर दिया। किले के सहारे-सहारे लगभग एक फर्लांग उत्तर-पूरब में चलने के बाद यमुना दृष्टिगोचर हुई।

यमुना के किनारे आज विशेष चहल-पहल थी, हजारों व्यक्ति और सैनिक पुल के निकट खड़े थे। उन्हींमें से हार-फूल बेचने वालों की आवाजें आ रही थी—

—"ताजे गुलाब के गुलदस्ते।"

—"हार मोतिया के।"

—"गेंदे के गजरे।"

अलग-अलग गोलों में खड़े व्यक्तियों में बरेली की सेना और बख्त खा के शौर्य का ही चर्चा था। विक्रम वहाँ अधिक देर नहीं ठहरा, दूर

सुनसान घाट की ओर स्नान करने के निश्चय से उसने घोड़ा बढ़ा दिया।

उसका इरादा बेगम कुदसिया घाट पर जाकर स्नान करने का था, घोड़ा उसी ओर दुलकी चाल से दौड़ रहा था। अचानक एक दाढ़ी वाले वृद्ध पर उसकी दृष्टि पड़ी और साथ ही अनजाने में हाथों ने लगाम भी खींच ली।

यह नौशा मियाँ थे, भीड़ से दूर यमुना के किनारे खड़े लहरें निहार रहे थे।

—"मिर्जा साहब बन्दगी!" घोड़े से उतरकर विक्रम ने झुककर मिर्जा नौशा का अभिवादन किया।

—"जीते रहो बेटे, तुम्हारे सूबेदार बनने का हम दिली मुबारकबाद देते हैं।"

—"बड़ों की खुशी में ही मेरी खुशी है, वरना सच कहता हूँ मिर्जा जी कि मुझे यह ठाली बैठने वाली सूबेदारी पसन्द नहीं है।"

नौशामियाँ मुस्कराये—"तुम्हारे हौसले का हमें अहसास है बेटे···खुदा पर हम यकीन नहीं करते वरना उससे दुआ करते कि वह तुम्हारे हाथों से बड़े-बड़े काम कराये।"

—"मुझे आपकी दुआ ही काफी है।" विक्रम ने अपना अँगरखा उतारकर रेत में बिछाते हुए कहा—"तशरीफ रखिये!"

—"वाह याने हम तुम्हारे कपड़ों पर बैठें। नहाओ तुम; हम टहल रहे है।"

—"थक जाइयेगा टहलते-टहलते, बरेली वाली फौज अभी देर में आयेगी।"

—"हमें बरेली वाली फौज से क्या लेना है, मियाँ! वो लछमन सेठ जबरदस्ती अपनी बग्घी में बैठा लाये थे। वहाँ पहुँचकर हमें तो भूल गये और पुल की नावों में घुस कर देख रहे हैं कि ठीक से बँधी हैं या नहीं।"

—"खूब हैं सेठ जी भी, सारी रात पचासों सिपाही पुल ठीक करने में लगे रहे हैं और अब भी नावें खुली ही रह जायेंगी, आप बैठिये ना, मैं जरा एक गोता लगा लूँ।"

नौशामियाँ को अँगरखे पर बैठने से संकोच था, फिर भी वह विक्रम का आग्रह नहीं टाल सके, बैठ गये। विक्रम कपड़े उतार कर कमर में बंधा गमछा लपेटकर यमुना में कूद पड़ा।

कुछ देर नौशामियाँ ध्यान मग्न बैठे रहे, ध्यानटूटा तो उन्हें आश्चर्य हुआ कि उस्मान मियाँ के दामाद का दोस्त अभी तक नहाकर क्यों नहीं लौटा? उठकर क्या देखते हैं कि वह पुल की ओर से तैरता, आ रहा है।

—"जी जरा सेठ जी से दुआ-सलाम करने चला गया था, बेचारे सारे पुल की नावों में घुसते-घुसते बुरी तरह पसीने में नहाये हुए हैं।" पानी से निकलते हुए विक्रम ने कहा—"जब मैंने कहा बाबा जी, यह सब काम आपका काम तो नहीं था बेकार क्यों हलकान हो रहे हैं, किसी को भी हुक्म दे देते, तो हँसकर कहने लगे 'शहजादे हमारा मजाक उड़ाओ हो, मियाँ बुढ़ापे ने चौपट कर दिया वरना जब हम जवान थे तो अकेले ही पुल खोलकर बाँध दिया करते थे, साफ कहे हैं तुम जवानों के किये काम पर हमें भरोसा नहीं होता।"

—"छोड़ो बेटे किसकी बात ले बैठे।" नौशामियाँ ने कृत्रिम क्रोध से से कहा—"लोग तो बुढ़ापे में सठियाते हैं, वह शख्स तो पैदा होते ही सठिया गया था। आज कोई नई बात थोड़ी है—रोज शाम को जब तक सारी दिल्ली का चक्कर नहीं लगा लेता उसे खाना हजम नहीं होता। वो तो गनीमत है कि चालीस की उम्र तक बाप सर पर बैठा रहा और उसके मरते-मरते बेटे सयाने हो गये वरना उसके बूते का कारोबार चलाना नहीं था। पक्का तमाशबीन शोहदा है यह शख्स······।"

विक्रम ने कपड़े पहनते हुए चुटकी ली—"आपके खास दोस्त भी तो हैं!"

—"मालूम है, मियाँ मालूम है, यही तो हमारी बदनसीबी है।"

विक्रम कपड़े पहन चुका था घोड़े की रास पकड़ते हुए बोला—"आइये घोड़े पर बैठ जाइये!"

—"नहीं बेटे, नहीं, मैं तो अब लौटकर घर जा रहा हूँ।"

—"बैठिये तो सही, मैं भी आपके साथ उधर ही चल रहा हूँ"

—"लाहौल······याने तुम मेरी वजह से पैदल चलोगे?"

—"जी तो क्या हुआ, कोस-भर की भी तो बात नहीं है। कई कोस तो मैं पैदल दौड़ लेता हूँ···।"

विक्रम भली प्रकार अपना वाक्य पूरा नहीं कर पाया था कि जमना पार से तोप दगने का भीषण धमाका हुआ, साथ ही वातावरण में इस ओर खड़े जन-समुदाय का हर्ष-नाद भी छा गया।

—"घोड़े पर सवार हो जाइये मिर्जा साहब, बरेली की फौज आ रही है; एक नजर उसे भी देख लीजिये। फिर घर की तरफ ही चलेंगे।

नौशामियाँ घोड़े पर चढ़ गये। आगे आगे रास पकड़ कर विक्रम पैदल ही पुल की ओर चल दिया।

पुल के दूसरी ओर कुछ घुड़सवार दिखाई दिये उनके पीछे ऊँटों का कारवाँ था।

—"बादशाह की जय!" जनता ने हर्ष निनाद किया।

—"बख्त खाँ बहादुर की जय!" हजारों कंठों से निरन्तर यही ध्वनि निकलकर आकाश को गुँजा रही थी।

सवारों में से एक भरे बदन का हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति, जिसके चेहरे की छोटी दाढ़ी में ओज था, मुस्कराहट में सौम्यता थी, और खाल की बनी काली एवं तनिक ऊँची टोपी में से ऊँचा ललाट झाँक रहा था, आगे बढ़ा। एक हाथ से घोड़े की लगाम थामे दूसरा हाथ वह निरन्तर हवा में हिलाता हुआ जनता का अभिवादन कर रहा था।"

—"मालूम होता है यही मुहम्मद बख्त खाँ हैं।" विक्रम ने तनिक

उचककर कहा ।

—"शायद यही हैं ।" नौशामियाँ ने तनिक और दृष्टि बाँधकर देखते हुए कहा ।

—"बख्त खाँ, बहादुर की जय !" जन-निनाद और भी तेज होकर गूँजा ।

और जैसे ही वह व्यक्ति पुल के किनारे पर पहुँचा कि फूलों की इतनी तेज वर्षा हुई कि वह एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सका । तभी किसी ने उसे घोड़े से खींच लिया ।

—"यह देखो लछमन को, कम्बख्त ने उसे घोड़े से ही उतार लिया ।" नौशामियाँ कह रहे थे—"आधा पागल है यह शख्स ।"

बरेली का फौजी कारवाँ धीमी चाल से राजघाट की ओर बढ़ रहा था । लगभग एक हजार घुड़सवारों के पुल से गुजर जाने के बाद अब तो पखाने की बैलगाड़ियाँ आनी आरम्भ हो गई थीं ।

—"यह तोपखाना बहुत नामी है मिर्जा साहब, कहते हैं कि इसी तोपखाने और सूबेदार बख्त खाँ की बदौलत फिरंगियों ने अफगानी मोर्चा फतह किया था ।"

—"तो अब यह तोपखाना भी तुम्हारा हुआ ?"

—"जी, हमारा या हिन्दुस्तानियों का ।"

कितनी ही तोपें पुल से गुजर चुकी थी, किन्तु अब भी जहाँ तक दृष्टि जाती थी तोपगाड़ी ही दिखाई देती थीं । गाड़ियों के भारी-भरकम लोहे के पहियों से सारा पुल डगमगा रहा था । नौशामियाँ टकटकी बाँधे उधर ही देख रहे थे ।

आशा-निराशा, इन दोनों वस्तुओं का सैनिक जीवन में कोई महत्त्व नहीं है । महत्त्व केवल है तो आदेश का, आदेश मात्र पाकर जीवन को जाने या अनजाने में बलि दे देना ही उसका उद्देश्य होता है । किन्तु तब भी आशा-निराशा-जैसी मृग-मरीचका से सैनिक छुटकारा नहीं पा जाता ।

सैनिक बन जाने के बाद भी वह हाड़-मांस का पुतला ही तो है तनिक कठोर ही सही हृदय भी उसके पास होता है।

तोपगाड़ियों की लम्बी कतार देखकर विक्रम का हृदय सचमुच नाच उठा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो यह तोपें लोहे की निर्जीव नली न होकर विजय की बाँसुरी हों। मानों काले बादलों के परिधान पहने आकाश की बालायें विजय का संदेश देने आई हों।

सैकड़ों तोपों के गुजर जाने के बाद अब पैदल सैनिकों का दल आया। आगे-आगे लगभग दो सौ सैनिकों के कंधों पर कड़ाबीन थीं। फिर ढाल तलवार बाँधे हाथ में इस्पात की वर्दी लिये एक हजार सैनिक मस्तानी चाल चलते हुए पुल में भर गये।

—"चलो बेटे, अब घर चलें।"

—"चलिये।"

भीड़-भरी राह छोड़कर दोनों शहर घाट से शहर में प्रविष्ट हुए।

विक्रम की दृष्टि में मिर्जा नौशा महान् व्यक्ति थे, घोड़े की रास पकड़े पैदल चलने में विक्रम का हृदय गौरव अनुभव कर रहा था। दूसरी ओर मिर्जा नौशा का हृदय अपने प्रति ग्लानि से भर आया था—कैसा नौजवान है यह? मन-ही-मन वह सोच रहे थे कितनी खुशी से यह मुझे घोड़े पर चढ़कर पैदल चल रहा है। उन्हें अपने दो शिष्यों का ध्यान आया, जो बैठकखाने में उनका सम्मान बादशाह की भाँति करते हैं; किन्तु यह तो सर्वथा अलग बात है। वह शिष्य हैं—वह 'गालिब' से गालिब बनने के लिये सीखते हैं। किन्तु यह नौजवान तो संगीत जानने के बावजूद तलवार बाँधे हुए है। उनके मुख से अनायास ही निकल गया—"भई नौजवान, यह राज हम नहीं समझ सके कि गाने बजाने का शौक होते हुए भी तुम्हें सिपाहीगिरी से इतनी दिलचस्पी क्यों है?"

विक्रम कुछ क्षण रुका, शायद उत्तर सोचने के लिये, फिर बोला—"क्या हुजूर मिर्जा की नजर में सिपाही होना अच्छी बात नहीं है?"

—"यह हमनें कब कहा कि सिपाही होना बुरी बात है, बेटे तकदीर की बात है कि हमारी उँगलियाँ सिर्फ कलम का बोझ ही सँभाल सकीं वरना पुश्त-दर-पुश्त से हमारा खानदान तलवार का खिलाड़ी ही रहा है। हम तो सिर्फ तुम्हारी पसन्द का राज जानना चाहते हैं?"

—"यह बात तो कभी मैंने सोची नहीं, जात का राजपूत हूँ—आगरा के शाही गवैये गुरु मोहनदास आगरा वालों के यहाँ ही बचपन से पला.........।"

—"और दोनों घरानों की रवायातें बड़ी खूबी से तुमने अपना लीं।"

—"जी पहला घराना तो सिर्फ खून में ही है, वरना इतना अभागा हूँ कि होश सँभालने से पहिले ही माँ-बाप दोनों ही परलोक सिधार गये थे।"

मिर्जा नौशा कुछ क्षण चुप रहे; फिर स्नेह मिश्रित स्वर में बोले—"बेटे तुम अभागे नहीं हो; अलबत्ता तुम्हारे माँ-बाप जरूर बदकिस्मत थे जिनकी तकदीर में ऐसे बेटे का सुख पाना बदा नहीं था।"

: १२ :

किले के दिल्ली-दरवाजे पर हनीफ ने अभिवादन करके बख्तखाँ को संदेश दिया—"वलीअहद शहजादे मिर्जा मुगल बेग ने आपको सलाम भेजा है। दीवाने-आम में वह आपका इस्तकबाल करेंगे।"

बख्त खाँ के भारी किन्तु सौम्य चेहरे की दृढ़ स्थिरता मुस्कराहट बनकर फैल गई। संदेश के उत्तर में उन्होंने कुछ नहीं कहा। घोड़ा हनीफ के घोड़े के बराबर करके पूछा—"तुम दिल्ली की शाही फौज के सूबेदार हो?"

—"जी नहीं, मैं मेरठ से आया था।"

—"मेरठ के सिपाही जंगे-आजादी को शुरू करने वाले बहादुर हैं। मैं बख्त खाँ तोपखाने का सूबेदार, बरेली की तमाम फौज की तरफ से तुम्हें और तुम्हारे शहर के हर एक सिपाही को सलाम करता हूँ।"

इस बात को सुनकर हनीफ लज्जित-सा हो गया, बख्तखाँ के पराक्रम की कहानियाँ सुनकर वह उनका मन-ही-मन एक बुजुर्ग की भाँति आदर करने लगा था। हनीफ की कल्पना में बख्तखाँ एक रौबीले, फौलाद के समान कठोर इन्सान थे। किन्तु कल्पना के विपरीत नम्र, विनीत, और मुस्कराहट भरे चेहरे को देखकर अब भी वह मन-ही-मन यही सोच रहा था क्या यही वह बख्तखाँ हैं जिनके नाम-मात्र से फिरंगियों की नींद हराम हो चुकी है।

—"मेरी इल्तिजा है कि आप मेरे साथ दीवाने-आम चलें। वली अहद मिर्जा मुगल बेग तमाम फौजों के जनरल हैं, उनकी तरफ से मुझे हुक्म हुआ है कि मैं आपको शाही मुलाकात से पहले उनसे मिला दूँ।" कुछ पीछे जनरल समद खाँ तथा अन्य व्यक्ति घोड़े रोके खड़े थे। हनीफ ने उन्हें सम्बोधित किया—"हुजूर वली अहद का हुक्म है कि आप जिल्ले-सुभहानी को खाँ साहब की किले में आमद की इत्तला दें। खाँ साहब वली अहद साहेब के साथ दीवाने-खास पहुँच रहे हैं।"

बख्तखाँ ने अपने साथ के चारों सवारों को वहीं रुकने का संकेत किया और घोड़े को एड़ लगाते हुए कहा—"चलो भाई तुमने अपना नाम नहीं बताया।"

—"जी मेरा नाम हनीफ है।"

—"हनीफ दिल्ली में दाखिल होने के बाद मुझे अपना गँवार होना अखर रहा है। हकीकत यह है कि मैं शाही अदब कायदों से कतई भी वाकिफ नहीं हूँ, सोच रहा हूँ कि कहीं बादशाह या शाही खानदान वालों के सामने कोई बेअदबी न कर बैठूँ?"

हनीफ ने बात को हँसकर उड़ा दिया—"शाही अदब मुसाहिबों के लिए जरूरी हुआ करता है खाँ साहब, फौजी इन्सान को अदब के नाम पर सिर्फ सलाम करना जान लेना ही काफी है।"

उत्तर में बख्तखाँ भी मुस्करा दिये।

फिर नौबतखाँ ने तक दोनों खामोश घोड़ा दौड़ाते रहे। नौबतखाने के द्वार पर मिर्जा मुगल के लगभग पचास अंग-रक्षकों ने कड़ाबीन दागकर बख्त खाँ का स्वागत किया।

अंग-रक्षकों का अभिवादन लेने के बाद दोनों ने नौबतखाने के द्वार में प्रवेश किया। सामने दीवाने-आम था। सामने के सभी दरवाजों पर भारी मखमली परदे लगे हुए थे।

—"सचमुच खूबसूरत जगह है।" बख्त खाँ बोले—"मिर्जा मुगल बेग की उम्र क्या है हनीफ ?"

—"जी आपकी ही उम्र के लगते हैं, मेरा ख्याल है कि चालीस पैंतालीस के करीब होगी। आपकी तरह ही दाढ़ी है अलबत्ता चेहरा कुछ हल्का है।"

—"वैसे हनीफ एक बात है,तुम कह रहे थे कि मिर्जा बड़े जनरल हैं। इस ओहदे के कायदे से उन्हें मेरी फौज से दिल्ली-पड़ाव पर मुलाकात करनी चाहिये थी।"

—"जी, शायद वह यह मुलाकात आपसे वलीअहद होने के नाते कर रहे हैं।"

—"मैं समझता हूँ कि वली अहद का मुझ-जैसे मामूली सूबेदार से मिलना बेकार वक्त खराब करना है।"

दीवाने-आम निकट आ चुका था। दोनों में वार्तालाप बन्द हो गया। जैसे ही बख्त खाँ द्वार के निकट पहुँचे प्रहरियों ने पर्दा हटा दिया। बादशाही मसनद के नीचे संगमरमर की बनी सुन्दर चौकी पर मुलायम रेशमी मसनद लगी हुई थी, उसके ऊपर शाही रौब के साथ मिर्जा मुगल बेग

विराजमान थे। साधारण सैनिकों के अतिरिक्त यह हनीफ भी जानता था कि यह ठाठ-बाट आज ही जुटाया गया था।

—"वलीअहद मिर्जा मुगल बेग सदरे-आला शाही फौज.......।" हनीफ ने परिचय कराया—"आली जनाब बख्त खाँ बहादुर।"

बख्त खाँ ने तनिक सिर झुकाकर अभिवादन किया उत्तर में मिर्जा मुगल मुस्कराये—"कई हफ्तों से तुम्हारी बहादुरी के कारनामे सुन रहे थे खाँ साहब, आज तुम्हें रूबरू देखकर हम बहुत खुश हैं।"

—"शुक्रिया जनाब। मैंने तो सिर्फ अपने फर्ज को अन्जाम दिया है।"

मिर्जा मुगल ने दृष्टि फेरकर हनीफ को आदेश दिया—"सूबेदार दुल्हे मियाँ सुबह से ही परेशान हो, जाकर आराम करो। खाँ साहब का मुकाम कलाँ महल में रहेगा, तीसरे पहर इनसे मिल लेना।"

अभिवादन करके हनीफ चला गया। मिर्जा मुगल ने एक बार दीवाने-आम को निहारा। अन्दर केवल दो ही व्यक्ति थे वह स्वयं और बख्त खाँ।

मिर्जा उठे। बख्त खाँ के निकट पहुँचकर उन्होंने स्नेह का अभिनय करते हुए अपने दोनों हाथ उनके कंधे पर रख दिये—"हम तुमसे तनहाई में मिलना चाहते थे, खुशखबरी है कि तुम हमारी जगह जनरल का रुतबा पाने जा रहे हो। यह हुजूर अब्बा का फैसला है।"

इस समाचार पर बख्तखाँ ने किसी प्रकार की प्रसन्नता प्रकट नहीं की, साधारण भाव से उन्होंने कहा—"मैं इस रुतबे के काबिल नहीं हूँ बन्दा नवाज!"

—"हम क्या, तुम्हारी काबलियत का लोहा तो दुश्मन भी मानते हैं खाँ साहब, हम तुम्हें मुबारकबाद देते हैं और तुम्हें जनरल तसलीम करते हैं......दरअसल हम यह चाहते हैं कि हम दोनों आज अभी एक-दूसरे का रुतबा कबूल कर लें। हम तुम्हें सदरे-फौज तसलीम करते हैं, और

तुमसे उम्मीद करते हैं कि तुम भी हमें वलीअहद तसलीम करोगे।"

"सारा मुल्क आपको तसलीम करता है हुजूर, मुझ नाचीज को आप इतनी अहमियत क्यों दे रहे हैं?"

—"हम तुम्हें अपना दोस्त समझते हैं खाँ साहब, इसलिये किले की सियासत के पोशीदा राज से आगाह करते हैं कि बेगम जीनत महल चाहती हैं कि उनका लड़का जवाँबख्त वलीअहद बने। चूँकि हुजूर अब्बा वही करेंगे जो उन पर दबाव डालकर कराया जायगा, इसलिये हम तुम्हारी दोस्ती चाहते हैं। उनके मुँह लगे मुसाहिबों पर हमें ऐतबार नहीं है, जीनत बेगम के असर में कितने मुसाहिब हैं यह हम नहीं जानते, अलबत्ता यह राज जानते हैं कि रंगमहल और दीवाने-खास में एक खामोश साजिश हमारे खिलाफ चल रही है। अब तक हमें तसल्ली थी कि हमारे हाथ में फौजी-कमान है, अब फौजी ताकत की बागडोर तुम्हें सौंपकर हम सिर्फ तुम्हारी हमदर्दी के सहारे रहने का फैसला करते हैं।"

मिर्जा की यह बात सुनकर बख्त खाँ के माथे पर बल पड़ गये। स्वर में मानो कठोरता कूट-कूटकर भर गई—"बन्दानवाज एक अर्ज है, सिर्फ आपसे ही नहीं बल्कि पूरे शाही-खानदान से मैं रुहेलखंड के उन सिपाहियों के नाम पर अर्ज करता हूँ जो जान की बाजी लगाने के लिये ही यहाँ आपके हुजूर में आये हैं। खुदा के लिये यह घर के झगड़े बन्द कर दीजिए; आज न सिर्फ हमारे सिर पर फिरंगी-जैसा होशियार दुश्मन बैठा है बल्कि हम चारों तरफ से अपने हम-वतन गद्दारों से भी घिरे हुए हैं।"

—"हमें गलत मत समझो खाँ साहब, सारा शहर दिल्ली जानता है कि जिस दिन से मेरठ की फौजें यहाँ आई हैं तब से आज तक हमने लाखों रिस्क उठाने के बावजूद दिल से फौजों का साथ दिया है। यह हम नहीं जानते थे कि हमारी मुनासिब और जायज बात तुम्हें बुरी लगेगी।"

"मैंने आपकी बात को नाजायज तो नहीं कहा हुजूर, इतना कुसूर जरूर किया है कि आपकी बात के जवाब में अपनी कह दी है, जरा सोचिये

तो सही······।"

—"चलो दीवाने-खास चलते हैं, हुजूर अब्बा आपका इन्तजार कर रहे होंगे। हम सिर्फ यही चाहते हैं कि हमारी बात पर फुरसत में फिर सोचना।"

—"मैं कभी आपके खानदानी झगड़ों में नहीं पड़ूँगा।" बख्त खाँ का स्वर पूर्ववत् दृढ़ था—"सिर्फ किला ही पूरा मुल्क नहीं है हुजूर, हम आज दुश्मन से लड़ रहे हैं। इसलिये इस सवाल की कतई अहमियत नहीं है कि कौन जनरल बनता है और कौन वलीअद, अहमियत इस बात कि है कि या तो हम जंग में फतह हासिल करें या बहादुर की मौत मरकर मुल्क के नाम पर शहीद हो जायें।"

मिर्जा मौन रहे। केवल संकेत से उन्होंने चलने का उपक्रम किया।

"नाराज मत होना हुजूर, और अगर कोई गुस्ताखी हुई हो तो जाहिल और अनपढ़ समझकर माफ कर दीजिये। मैं कोशिश करूँगा कि दिल को पत्थर बनाकर आपका हुकम भी बजाता रहूँ लेकिन हुजूर इन्सान हूँ, जो-कुछ देखा है उसे लाख कोशिश करने पर भी भुला नहीं पाता। सोचिये तो सही बरेली की जग में और सफर की गर्मी से कितने ही मासूम नौजवान मर गये। उनमें से कई बूढ़े माँ-बाप के अकेले सहारे थे, कितनों की ही नई शादियाँ हुई थी। घायल सैनिक आखिरी साँसों में भी बीवी को याद करता रहा, मैदान की चिलचिलाती धूप में हैजे का शिकार आँखे पथरा देता है और खुश्क गले से दम निकलते तक सिर्फ 'माँ' लफ्ज ही दुहराता रहता है। इन मासूम लड़कों के काँपते हुए होंठ और बुझती हुई आँखें मैं न नींद में भुला पाता हूँ न जाग में। सोचिये हुजूर वो क्यों मरे ? खुदा करे जंगे आजादी कामयाब हो और एक दिन आप बादशाह बने, आपकी मेहरबानी से भी मैं खिलअत और जागीर पालूँगा। लेकिन सिपाही फिर भी सिपाही रहेंगे। जिस खूबसूरत और पाकीजा ख्वाब के लिये उन्होंने आज अपनी जान दाँव पर लगादी है वह है वतन की आजादी जिल्ले

सुभहानी का, आपका और मेरा, सिर्फ एक ही फर्ज है और वह यह कि इस पाक इरादे को अपने मफाद के लिये नापाक न करें।

इतना कहते-कहते बख्त खाँ की आँखें भीग गईं। निरुत्तर मिर्जा ने कहा—"चलिये!"

दोनों ने चुपचाप उत्तरी द्वार से दीवाने-आम पार किया, रंगमहल के सामने की फुलवारी के किनारे-किनारे चलकर फिर दीवाने-खास के सीधे मार्ग पर चलने लगे।

चारों ओर स्तब्धता छाई हुई थी। दीवाने-खास के मुख्य दरवाजे पर खड़े बसंतखां ने कोरनीस करके मुख्य द्वार का पर्दा हटा दिया, नव वधू की तरह सजे सफेद दीवाने-खास के वैभव की केवल एक झलक पाकर ही बख्त खाँ भौंचक रह गये। सामने मसनद पर सम्राट् विराजमान थे। मुसाहिबों, नागरिकों और शहजादों से दीवाने-खास ठसाठस भरा हुआ था।

बख्त खाँ ने झुककर सलाम किया। कोरनीस करने के वह आदी नहीं थे।

"खुशआमदीन।" सम्राट् ने तनिक मुस्कराकर कहा। बख्त खाँ आगे बढ़े, सम्राट् के निकट पहुँचकर सिर झुकाये ही किन्तु ऊंची आवाज में वह बोले—"मुहम्मद बख्त खाँ बतौर नजराने के चार ऊंटों पर लदे चाँदी के रुपये, जो मुझे फिरंगी खजानों से मिले हैं जिल्ले सुभहानी के कदमों में बतौर नजराने के पेश करता हूँ। किले के देहली दरवाजे पर जनाब लाला लक्ष्मणदास को यह रुपये सँभलवा दिये हैं।"

—"हमने कबूल किये, हम यह रुपये जंगे-आजादी की मुहीम पर खर्च करेंगे।"

—"जहाँपनाह, मैं बरेली के तोपखाने में सूबेदार था, मैं अपनी खिदमात हुजूर के कदमों में पेश करता हूँ, मेरे लिये हुक्म फरमाया जाय।" म्यान से तलवार निकालकर दोनों हाथों से उसे मसनद के किनारे रखते हुए बख्त खाँ ने कहा।

सम्राट् उठे। तलवार उठाकर उन्होंने बख्तखाँ की ओर बढ़ाई—"इसे म्यान में रक्खो। तुम्हारी आमद से हम बहुत खुश हैं। आज से तुम दिल्ली की तमाम फौज के जनरल बनाये गये; यह इस बात का सबूत है कि हमें तुम्हारी बहादुरी पर पूरा एतबार है।"

बख्त खाँ ने एक बार पुनः समाट् का अभिवादन करके दीवाने खास में उपस्थित व्यक्तियों को सम्बोधित किया—"मैं बादशाह सलामत और अहले देहली के दरबारियों के सामने तलवार की कसम खाकर कहता हूँ कि शहंशाह आलम का एतबार कायम रखने के लिये मैं हमेशा दुश्मन से जान की बाजी लगाकर लड़ूँगा।"

मुस्कराते हुए सम्राट् ने बख्त खाँ का कंधा थपथपाते हुए कहा—"हमें तुम्हारी कसम का एतबार है। जनरल बख्त खाँ जिन्दाबाद!"

"जनरल बख्त खाँ जिन्दाबाद!" दीवाने-खास में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति ने सम्राट् का वाक्य दुहराया।

: १३ :

नौशामियाँ को उतारकर विक्रम जब हनीफ की ससुराल पहुँचा तो घर का दरवाजा भी बन्द था और बैटक भी बन्द थी। आम तौर से उस्मान मियाँ हों या न हों, बैटक खुली रहती थी। एक बार विक्रम की इच्छा हुई कि लौट चले। किन्तु यह सोचकर कि भाभी का उलाहना बाकी रह जायगा उसने दरवाजा खटखटाकर आवाज दी—"चचा उस्मान खाँ साहब!"

अजीब परेशानी थी एक ओर एक हाथ में हनीफ घोड़े की रास थामे था दूसरे हाथ में ढेरों गुलाब के फूल लिये था। जैसे ही वह घोड़े की रास छोड़कर दरवाजा खटखटाता घोड़ा अपने थूथन से फूल लपकने की कोशिश

करता, और अन्दर वाले मानों उत्तर न देने की कसम खाये बैठे थे और वह था कि बराबर आवाज-पर-आवाज लगाये जा रहा था।

अन्त में दरवाजा खुला, परदे के पीछे से आँखें मलती हुई हसीना मुस्कराई—"कई दिन बाद आज भी सूरज दोपहर हुए निकला ?

—"सूरज दोपहर को निकले या शाम को, हमारी भाभी के लिये तो हर वक्त ही रात रहती है। पूरे एक पहर से पुकार रहा हूँ ?"

हँसती हुई हसीना ने बैठक का एक द्वार खोल दिया और स्वयं बैठक के घर वाले दरवाजे के निकट बैठते हुए बोली—"आये ही लड़ने के लिये, भला जब कुछ काम ही नहीं था तो क्या करती, वैसे ही बैठी थी कि आँख लग गई। अकेली थी न, अब्बा भी रात वल्लभगढ़ चले गये हैं।"

—"बल्लभगढ़ किस लिये ?"

—"ठाकुर जीतसिंह थे एक मृदंग बजाने वाले, अब्बा के पुराने दोस्त थे—वो मर गये।"

—"अरे……कब ?"

—"कौन जाने, कल शाम खबर आई थी, बस फौरन ही अब्बा भी खबर लाने वाले के साथ रवाना हो गये, खबर लाने वाला कहता था कि उनके जवान लड़के को फिरंगियों ने मार दिया; बस बेचारे उसी के गम में मर गये—कहता था कि एक लड़की पीछे छोड़ गये हैं, मौत ऐसी आई कि बेचारी के हाथ पीले भी न कर पाये।"

—"मैंने ठाकुर जीतसिंह की मृदंग सुनी है, सचमुच बहुत बुरा हुआ भाभी; उनकी मृदंग आगरा में सुनी थी। क्या कहने, ऐसा उस्ताद दूर दक्खिण में भी नहीं मिलेगा।"

—"अच्छा उठो अन्दर बैठना। बोलो क्या खाओगे?"

—"खाना मैं नहीं खाऊँगा, फौजी आदमी हूँ ना; ज्यादा चटोरा होना ठीक नहीं है।"

—"बड़ी अच्छी बात सुनाई। चपाती भी खाना छोड़ दो, घोड़े के साथ घास खाया करो·········।"

ठीक उसी समय हनीफ ने बैठक में प्रवेश करते हुए दाद दी—"क्या खूब; विक्रम सुझाव बढ़िया है! और ये फूल कहाँ से लाये, बहुत खूबसूरत हैं।"

चावड़ी बाजार में किसी कोठे वाली ने नौशामियाँ को सड़क से गुजरता देखकर भेज दिये थे। उन्होंने मुझे दे दिये। अच्छा यह तुम दोनों मियाँ-बीवी फूलों की खुशबू लो; हम जाते हैं। भाभी यह लो······!"अँगरखे के अन्दर से थैली निकालकर हसीना की ओर फेंकते हुए विक्रम ने कहा—"अशर्फियों की यह थैली बादशाह सलामत ने दी है।"

—"सुभान अल्लाह तुम तो अमीर होते जा रहे हो, कितनी अशर्फियाँ हैं?"

—"पच्चीस कहते थे देख लो, मैंने नहीं गिनीं।"

—"पच्चीस अशर्फियाँ और सत्तर रुपये तुम्हारे भाई जान ने तुम्हारे लिए दिये हैं—सुनो।" हसीना ने हनीफ को सम्बोधित किया—"कोई दुलहन ढूँढ दो ना उनके लिये, पचास अपनी तरफ से और सूद के मिलाकर ऐसा ब्याह कर दूँगी कि दिल्ली-भर में नाम हो जायगा।"

—"भई हम तो चल दिये···।" उठते हुए विक्रम ने कहा किन्तु हाथ पकड़ खींचकर विक्रम को बैठाते हुए हनीफ ने कहा—"चले जाना, बात का जवाब तो देते जाओ, कहूँ नाई और बरहमन से—दिल्ली की लड़कियाँ खूबसूरती और सलीके में अपना जवाब नहीं रखतीं।"

—"क्या कहने हैं दिल्ली की लड़कियों के मैया; मैंने सुना है नींद में भी उनका जवाब नहीं है। कई-कई दिन तक लगातार सोती रहती हैं।"

हसीना ने मुँह बिचका दिया—"दिल्ली की लड़कियाँ किस्मत वालों को मिलती हैं। सुनो जी, इनके लिये तो कोई रियासत अलवर या जयपुर की तरफ से 'काँई करै छै' बोलने वाली बींधनी ढुँढवाओ। मसल है कि

'बन्दर अदरक जायका क्या जाने' दिल्ली की दुलहन में क्या खूबियाँ होती हैं······?"

—"भैया जानते हैं, क्यों भैया जानते हो ना अदरक का जायका ?"

—"अरे छोड़ भी क्या अदरक और क्या अदरक का जायका।" हनीफ ने विक्रम का साथ दिया।

—"जरा दिल पर हाथ रखकर कहो—खुदा का शुक्र करो कि खान-दान में और कोई लड़का नहीं था और अब्बा मियाँ ने तुम्हें ही दामाद लिया, वरना कोई खाकरौद, सौकरोद, बागपात, आगपात की ऊँटनी पल्ले बँधती या फिर कोई बृज की बछिया आती और कहा करती चौंजी रिस है गये।"

बृज पर कटाक्ष सुनकर विक्रम बोल उठा—"मान गये भाभी, मेरठ की लड़कियों को तुम ऊंटनी समझती हो, बृज की तुम्हें बछिया दिखाई देती है—भला दिल्ली क्या है ?"

—"भैंस मत कहना विक्रम !" कठिनता से हँसी दबाते हुए हनीफ ने कहा।"

—"नहीं भैया राम-राम कहो। दिल्ली की तो मैना हैं हर देश की बोली बड़ी खूबी से बोलती हैं। क्यों ठीक है न भाभी ?"

—"सलाह करके आये हो दोनों। अच्छा बाबा हम भैंस ही सही। कहो कि खाना क्या बनायें।"

—"मैं तो जाता हूँ, जो कुछ बनाना हो भैया के लिये ही बनाओ।"

—"क्या जल्दी पड़ी है तुझे जाने की, अरे तुझ पर शहन्शाह मेहर-बान है—बस आराम कर। हसीना इसे बहुत जल्दी एक थैली और भी मिलने वाली है। जुमेरात को बादशाह सलामत इससे गाना सुनेंगे।"

—"अब की बार आधा बाँट लूँगी······।"

—"दिल्ली से जो कुछ मिलेगा वह सारा तुम्हारा है, और मेरठ जो कुछ है वो तुम्हें मुँह दिखाई में दिया।

— "मुँह दिखाई में तो मैं देवरानी लूँगी । छोटी-सी गुड़िया-जैसी······।"

—"तब फिर मुँह धोये रहो, ब्याह-बरात के झंझट में पड़ने का अपना इरादा नहीं है।"

—"तब फिर ऐसा करो कि शहर से दूर किसी पीर के मजार पर जा पड़ो—या किसी जंगल में जाकर भजन करो। शहर में रहोगे तो ब्याह करना ही होगा।"

विक्रम ने उत्तर देने को मुँह खोला ही था हनीफ बोल उठा—"उसका तो बातों से पेट भर जाता है। मैं तो कुछ खाने-पीने के इरादे से आया था·········।"

—"हाय अल्लाह, पूछ तो रही हूँ। बताइये ना, क्या बनाऊँ ?"

—"जो जल्दी बन सके वही बना लो।"

"—दूध लाती हूँ—पहले थोड़ा-थोड़ा दूध पी लीजिये।

हसीना अन्दर भाग गई। गुलाब का फूल उठाकर सूँघते हुए हनीफ ने पूछा—"कहाँ मिल गये थे मिर्जा नौशा ?"

—"जमना किनारे वहाँ से साथ-साथ ही आये—आदमी खूब हैं।"

—"हाँ।" अनमने ढंग से हनीफ ने कहा—"खूब हैं उनके लिये जो उनकी शायरी समझते होंगे। हम तो ठहरे गँवार आदमी। इतना जानते हैं कि फिरंगियों के लिये जितना गुस्सा दिल्ली के दूसरे बाशिन्दों में है उतना मिर्जा नौशा में नहीं है।"

—"भैया, यह तुम्हारा मिर्जा नौशा पर जुल्म है। यह मुमकिन है कि जाहिरा तौर पर उनमें तुम्हें फिरंगी के लिये नफरत नहीं दिखाई देती हो। यह जरूरी भी नहीं है कि दिखाई दे—वो आम इन्सानों से ऊँचे इन्सान हैं। उनके-जैसे इन्सान गोरों और कालों में भेद नहीं कर सकेंगे। ऐसे इन्सान इन्सानियत से प्यार किया करते हैं। उनकी बातों में, उनकी

गजलों में दुःख है और दुखी इन्सानों के लिए दर्द हैं, और उनके लिये या आम इन्सानों के लिये जो दुख के कारण हैं फिरंगी क्या खुद तक भी उनकी नफरत के शिकार हैं। जमाना ऐसा है कि इसमें आँसुओं का कोई मोल नहीं है शायद इसीलिये उनकी शायरी में आँसू नहीं है, लेकिन मुसीबतों को मुँह चिढ़ाना कोई उनसे सीखे.........।"

बात अधूरी ही रह गई, हसीना दोनों हाथों में दूध के गिलास लेकर आई और शीघ्रता पूर्वक उन्हें जमीन पर रखकर दोनों हाथों को हिलाती हुई उँगलियों में जोर-जोर से फूँक मारने लगी।

—"उँगलियाँ जला लीं क्या?" स्नेह भरे स्वर में हनीफ ने पूछा।

—"नहीं नहीं तो......जरा गरम ज्यादा था।"

—"देखूँ।"

हनीफ ने हसीना का हाथ पकड़ने को बढ़ाया ही था कि उसने दोनों हाथ पीछे करते हुए कहा—"रहने दो कुछ नहीं हुआ है।"

हनीफ सम्भवतः विक्रम की उपास्थिति के कारण हसीके हाथ अपने हाथों में लेकर संकोचवश नहीं देख सका, किन्तु विक्रम ने उठकर बरबस ही हसीना के दोनों हाथ आगे खींच लिये।"

—"कहती तो हूँ कि कुछ नहीं हुआ है।"

दोनों हाथों की उँगलियाँ लाल हो गई थीं,—"आखिर इतनी जल्दी क्या थी एक-एक गिलास करके भी तो ला सकती थी।" विक्रम ने कहा।

—"अरे......मैं पूछती हूँ कि हो क्या गया। मैं कोई शाहजादी तो हूँ नहीं कि फूलों की तरह नाजुक हूँ दिन में न जाने कितनी बार ऐसा होता है।" दोनों हाथ फिर पीछे करते हुए हसीना ने लजाते हुए कहा।

हनीफ बोला—"काम जरा धीरज से करना चाहिये, अब तुम बच्ची नहीं हो।

"जब तक अब्बा के घर में हूँ तब तक तो बच्ची ही हूँ।" हसीना हँस दी।

—"खैर।" दूध का गिलास उठाकर विक्रम को देते हुए हनीफ ने कहा—"दूध ही काफी है, खाने का झंझट रहने दो।"

—"वाह इसमें झंझट की क्या बात है। दूध पीकर दोनों अन्दर चलकर बैठिये। दर असल अकेली का जी नहीं लगता। खाना तैयार होने में ज्यादा देर नहीं लगेगी।"

—"भैया, मेरी राय मानो तो फौज की नौकरी छोड़ दो।"

—"क्यों?"

—"इसलिये कि भाभी का जी नहीं लगता......।"

—"बड़े भाभी के हमदर्द बने हो।" हसीना ने ताना दिया।

—"वाह भाभी तुम्हारा हमदर्द नहीं बनूँगा तो किसका बनूँगा, सच कहता हूँ, मेरा बस चले तो तुम्हारी टहल के लिये चार-चार बाँदियाँ रखदूँ।"

—"बस-बस, जरा थोड़ा झूट बोला करो। खुदा से डरो, खुदा से।"

—"क्यों इसमें झूठ क्या है?"

—"सुनो जी पूछते हैं कि इसमें झूठ क्या है?" बात हनीफ से कहने का उपक्रम करते हुए हसीना ने कहा—"मगर भाभी का इतना ख्याल है तो ब्याह कर लो ना?"

—"ब्याह से क्या होगा?" विक्रम ने पूछा।

—"घर में बहू आयेगी, दस कामों में हाथ बटायेगी और जी भी लगा रहेगा।"

—"हसीना तुम इस घर में बहू लाने की सोचती हो? हनीफ बाला—"विक्रम की बात और है, आम हिन्दुओं की मुसलमान की परछाईं से ही रसोई बिगड़ जाती है। जब विक्रम का ब्याह हो जायगा तब इसका घर तो अलग होगा ही, साथ-साथ तुम्हें इसकी बीबी से यह

बात भी छिपानी होगी कि इसे हमारे साथ खाने-पीने में परहेज नहीं है।"

हसीना को हनीफ की बात पसन्द नहीं आई। उसका जन्म से लेकर अब तक का जीवन यहीं इसी मकान में बीता था, और यह मकान मन्दिर या मसजिद तो नहीं था, फिर भी यहाँ केवल कलापूर्ण संगीत था। जो यहाँ आता था वह कला-प्रेमी होता था, आगन्तुक के लिये उस्मान खाँ के साज ही उसका धर्म होते थे, और उनका गला, आगन्तुक के लिये आनन्द का स्वर्ग उपस्थित करता था। धार्मिक संकीर्णता का वातावरण हसीना की कल्पना से भी परे था। उसे मूर्तिकार ठाकुर उदयसिंह अभी तक याद थे, जो कई सौ मील जयपुर से चलकर उसकी माँ से राखी बँधवाने आया करते थे। ठाकुर उदयसिंह और उसकी माँ आज इस संसार में नहीं हैं किन्तु लाला लक्ष्मणदास आज भी हैं। कितनी ही बार ऐसा हुआ है कि उस्मान मियाँ सुनाने में और लाला सुनने में सुबह से शाम कर देते थे। संगीत बन्द होता तो लाला के होश लौटते और अपने स्थान पर बैठे-बैठे ही वह आवाज देते—"फातिमा बेटे कुछ खाने को तो लाइयो, इस उस्मान ने तो आज शाम ही कर दी।"

—"ऐसी देवरानी मुझे नहीं चाहिये जी!" हनीफ द्वारा कहे गये कठोर सत्य को झुठलाते हुए वह बोली—"वाह यह क्या बात हुई, ऐसी खराब जगह में रिश्ता तय करूँगी ही क्यों? सब बातें पहले खोल दूँगी और फिर कहूँगी कि अगर सौ दफा गरज हो तो अपनी लड़की दो, वरना हमारे देवर कोई ऐसे-वैसे नहीं हैं लाखों में एक हैं और दरबारे शाही में खास इज्जत है।"

—"ये दुनिया सपना नहीं है हसीना, मैं और विक्रम फौजी हैं इस लिये हमारा तो कोई दीन-मजहब नहीं है। लेकिन बाकी जमाना ऐसा नहीं है······।"

—"आग लगे बाकी जमाने में, हमें क्या लेना है बाकी जमाने से, अगर देवरानी ने आकर सबसे पहले मेरे पैर दबाकर दुआ नहीं ली तो

समझ लो जहर खाकर मर जाऊँगी।"

बात का उपसंहार करने का प्रयत्न किया विक्रम ने—"ना तुम्हारा जहर खाना जरूरी है और न देवरानी का आना। देवरानी नाम को ही झाड़ू मारो—तुम्हारे पैर दबाने और जी लगाने को मैं क्या कम हूँ। बस जरा फिरंगी हार जायें, फिर इसी बैठक में ठाकुर विक्रमसिंह का सितार बजा करेगा।"

—"और देवरानी?" हसीना ने पूछा।

—"एक नहीं हजार लो, गले में वह जादू है कि शहर दिल्ली की तमाम तवाइफें आकर तुम्हारे पाँव पकड़कर कहा करेंगी 'ए जी जरा अपने देवर से मिला दो—जरा ठुमरी की गत सीखनी है। तुम्हारा बेटा जिये हम भी तुम्हारे देवर की बदौलत कमा खा लेंगी······।"

—"नशा पीकर तो नहीं आये हो······?" मुँह बनाकर हसीना बोली।

—"सच्ची बात है······जब तक यह सब होगा एक नहीं हम दो भतीजों के चचा बन जायेंगे। क्यों भैया।"

—"शेख चील्लियों जैसी बात बनाने के लिये तुम दोनों ही काफी हो। मुझे क्यों बीच में खींचते हो। दूध पियो ठंडा हो रहा है···।"

: १४ :

बख्त खाँ जब कलाँ महल लौटे तो दोपहरी बीत रही थी। सेना का आज सम्राट् की ओर से भोज था। अंगूरी बाग में पकवान बनाने के लिये सुबह से ही बड़े-बड़े कढ़ाव चढ़े हुए थे।

कलाँ महल में प्रवेश करते ही उन्होंने देखा कि यहाँ भी सैकड़ों व्यक्ति

जमा हैं।

—"यह सब क्या है सूबेदार ?" द्वार पर खड़े हनीफ ने अभिवादन का उत्तर देते हुए उन्होंने प्रश्न किया।

—"यह आपके लिये तोहफे लाये हैं। इनमें कुछ तो शहजादों के खास मुसाहिब हैं जो शहजादों की ओर से तोहफे लाये हैं, कुछ शाही खानदान के लोग हैं, और बाकी शहर दिल्ली के चुनीदाँ शहरी हैं।"

अनिच्छा पूर्वक बख्त खाँ महल के सहन में खड़े हो गये। सर्व प्रथम हकीम एहसान उल्ला आगे आये और एक बड़े थाल का पर्दा उठाते हुए बोले—"हुजूर बादशाह की ओर से।"

थाल में ढाल और तलवार थी। बख्त खाँ ने थाल अपने हाथ में ले लिया और फिर एक ओर रख दिया।

—"शहजादे मिर्जा मुगल बेग की ओर से।" थाल में एक रेशमी कपड़े का थान और मिठाई की टोकरी थी।

थाल को केवल हाथ लगाकर उन्होंने संकेत किया कि एक ओर रख दिया जाय।

फिर यही क्रम चला। विभिन्न व्यक्तियों के उपहारों से भरे थालों से सारा सहन भर गया। मिठाइयाँ, विभिन्न प्रकार के कपड़े, सूखे मेवे, रुपये, और अशर्फियाँ सभी कुछ थे।

अंत में जब यह क्रम समाप्त हुआ तो विनीत स्वर में उन्होंने उपस्थित जन-समुदाय को सम्बोधित किया—"आप सबने जो मेरी इज्जत बढ़ाई है उसका मैं शुक्रगुजार हूँ। अब तो मुझ नाचीज का आपके शहर में रहना-सहना रहेगा इन्शा अल्लाह मुलाकात होती रहेगी। बहुत-बहुत शुक्रिया!"

धन्यवाद पाकर धीरे-धीरे भीड़ खिसक चली, शेष रहे बरेली के कुछ सैनिक अफसर और हनीफ।

—"सूबेदार, तुमसे अब कुछ बातें करनी हैं, आओ इत्मीनान से

बैठकर बातें करेंगे।'' बरेली के अफसरों को सम्बोधित करते हुए जनरल बोले—"बादशाह सलामत का तोहफा यहीं रहने दो, बाकी सब फौजी सिपाहियों में खुद अपनी देख-रेख में बँटवा दो। आओ सूबेदार, बता सकते हो कि इतनी बड़ी हवेली में हमें कहाँ रहना है?"

—"जी हाँ आइये। हकीम साहब मुझे सब-कुछ बता गये हैं। एक अर्ज है खाँ साहब?"

—"कहिये।"

—"सिर्फ एक आदमी से आपको और मिलना होगा?"

—"कौन आदमी है?"

—"लाला लछमन दास, उन्हे मैंने ऊपर आपके रहने के महल में ही बैठा रक्खा है।"

—"ओह, शायद वही बुजुर्ग इन्सान जो जमना किनारे मिले थे, और मुख्तार गुलाम अब्बास के कहने पर मैंने उन्हें किले के बाहर ही चाँदी के रुपयों से लदे ऊँट सौंपे थे।"

—"जी मैं उस वक्त मौजूद नहीं था।"

—"वही होंगे, आइये मिले लेते हैं।"

जनरल के निजी निवास के लिये कलाँ महल का ऊपरी भाग यथा सम्भव सजा दिया गया था। महल के ठीक बीच का कमरा बैठक-खाने के उपयोग के लिये था। द्वार के सामने मखमली गद्दे की मुख्य मसनद थी। बाकी दोनों ओर साधारण गद्दों के ऊपर सफेद चादरों को बिछाया गया था और स्वच्छ आराम देह तकियों को लगाकर वह मसनदें आम अफसरों और मुलाकातियों के उपयुक्त बना दी गयी थीं।

जनरल ने देखा कि लाला लक्ष्मनदास द्वार के निकट वाली मसनद के किनारे बैठे ऊँघ रहे हैं और पास ही छै-सात मूली रक्खी हैं।

—"जनाब लाला साहब ......।" द्वार पर जूते उतारते हुए जनरल मुस्कराये—"आपने क्यों तकलीफ फरमाई, हुक्म भेज देते, मैं खुद दौलत-

खाने पर हाजिर हो जाता।"

लाला जनरल के सम्मान में उठने का प्रयत्न ही कर रहे थे कि उन्हें बैठाते हुए जनरल स्वयं भी उनके निकट ही बैठ गये—"देखिये आप मेरे मरहूम अब्बा की जगह हैं। मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता कि आप खुद यहाँ आने की जहमत उठायें, जब जरूरत हो तो हुक्म भेज दिया करें मैं फौरन कदमों में हाजिर हो जाया करूंगा। अब हुक्म कीजिये।"

गद्-गद् होकर जनरल की पीठ थपथपाते हुए लाला बोले—"मियाँ तुम्हें जनरल बनने की मुबारकबाद देने आया हूँ, सोचा शाही दावत में बदहजमी पैदा करने वाली चीजें खानी पड़ी होंगी इसलिये बेगम समरु वाले बाग से ये कच्ची मूलियाँ भी लेता आया।"

—"बहुत खूब।" मूली उठाकर खाते हुए जनरल बोले—"लाजवाब, सच मानिये मुझे इन्हीं की जरुरत थी। सूबेदार बहुत बढ़िया मीठी मूली हैं···ले लो···मियाँ ले भी लो।"

सकुचाते हुए हनीफ ने भी एक मूली उठा ली। लाला गम्भीर स्वर में बोले—"देखो मियाँ, ये मत सोचना बुड्ढा लाला मूलियों में ही टरका दिया है, नजराना जो जरुरत हो ले लो।'

—"नजराना उधार रहा, जब जरूरत होगी माँगने में शरमाऊंगा नही।"

—"नहीं मियाँ–हंसी दिल्लगी तो होती ही रहेगी। कहो तो कुछ नकद रुपया तुम्हारी फौज में बटवा दूँ।"

"तौबा-तौबा, हमारे इलाके में बुजुर्गों से हँसी दिल्लगी नहीं की जाती। सच कह रहा हूँ कि बरेली से चलते वक्त पूरी फौज को छै महीने की तनख्वाह पेशगी ही दे चुका हूँ। यहाँ आकर शाही खजाने में भी सिर्फ चाँदी के रुपये ही जमा कराये हैं। अभी मेरी फौज के पास सोने की अशर्फियां बाकी हैं जिनका बँटवारा खास वक्त पर कर दिया जायेगा।"

—"शाबाश बेटे······,उफ गलती की माफी चाहता हूँ। दरअसल

'बेटा' जबान पर इतनी बुरी तरह······।"

—"लाला साहब !" लक्षमन दास के पाँव पकड़ लिये जनरल ने —"एक सही बात जो इत्तिफाक से आपकी जबान से निकल गई है अब उसे लौटाइये मत, मैं क्या हूँ यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ। सूबेदार और जनरल—यह सब तो कहने की बातें हैं हकीकत यह है कि मैं एक सिपाही हूँ, जंग की हार-जीत के साथ ही मेरी किस्मत जुड़ी हुई है। दूर बरेली के देहात में अपनी बीवी बच्चे छोड़ आया हूँ, माँ-बाप मुद्दत हुई खुदा के प्यारे हो चुके हैं। दिल्ली के मोर्चे पर दुश्मन से लड़ने आया हूँ और बदले में अहले-दिल्ली से दिली-मुहब्बत चाहता हूँ। इसकी शुरूआत आप कीजिये, मैं आज से आपको चचा कहा करूँगा और आप हमेशा मुझे अपना बेटा समझिये।"

जनरल बख्त खाँ की हार्दिक शब्दावली दिल्ली के जिन्दादिल लाला लक्ष्मणदास के मन को झंझोड़ गई। आँखों में स्नेह के आँसू छलछला उठे और कंठ रुँध गया—"मैं क्या देखन हीं रिया हूँ, जाने कहाँ-कहाँ बच्चे-बाले छोड़-छोड़ के आने वाले जवाँ मर्दों के नाम पर रुपया-पैसा क्या मैं तो अपने तन की बोटी-बोटी निछावर करने को तैयार हूँ। तुम ही नहीं, सबके सब मुझे औलाद से भी बढ़कर प्यारे हैं······।"

—"तब कहिये मुझे भी, बेटा !"

—"हाँ-हाँ बेटा ही तो कह रिया हूँ······एक बात मानों बेटा—किसी दिन मेरे साथ इन दूल्हे मियाँ की ससुराल चले चलना······।"

—"सूबेदार की ससुराल दिल्ली में है ?"

हनीफ मुस्करा दिया बोला—"बाबाजी, जनरल साहब को इतनी फुरसत कहाँ है। अब्बा साहब तो फौज में आते रहते हैं मैं किसी दिन इनसे मिलवा दूँगा।"

—"जरूरी काम के लिये तो हर वक्त फुरसत है, चचा साहब कहिये वहाँ किस लिये चलना है ?"

—"वहाँ दिल्ली के दो मशहूर फनकार रहते हैं, एक तो इनके ससुर मियाँ उस्मान खाँ दिल्ली के गवैयों के उस्ताद और दूसरे मिर्जा असदुल्ला खाँ गालिब शायरों के शहन्शाह। हमारी मानो तो तुम्हें उन दोनों के घरों पर जाकर उन्हें इज्जत देनी चाहिये।"

—"चच्चा जान का हुक्म सर आँखों पर, मैं इसी वक्त चलने को तैयार हूँ......।"

—"दुहाई है, बख्त खाँ बहादुर को दुहाई है।"

बात अधूरी ही रह गई। नीचे सहन में से निरन्तर कोई पुकारे जा रहा था—"दुहाई है, बख्त खाँ बहादुर हमारी रक्षा करो।"

तीनों उठकर शीघ्रता से छज्जे पर पहुँचे। नीचे सहन में एक बुर्का पहने स्त्री खड़ी थी और पास ही बदन पर केवल एक धोती पहने माथे पर तिलक लगाये वृद्ध व्यक्ति था, सम्भवतः वह ब्राह्मण था।

तीनों व्यक्तियों को छज्जे पर खड़ा देखकर ब्राह्मण ने दोनों हाथ जोड़कर कहा—"हम फरियाद करने आये हैं। लालाजी हमारी फरियाद बख्त खाँ बहादुर तक पहुँचा दो।"

—"मैं नीचे आ रहा हूँ महाराज!"

इतना कहकर जनरल छज्जे से हटकर सीढ़ियों की ओर लपके। पीछे पीछे हनीफ और लक्ष्मणदास भी चले।

नीचे पहुँचकर वृद्ध ब्राह्मण को सलाम करते हुए जनरल बोले—"मेरा ही नाम बख्त खाँ है महाराज!"

—"खाँ बहादुर, इस विधवा की रक्षा कीजिये।" पण्डितजी ने बुर्के वाली स्त्री की ओर संकेत किया—"यह हकीम शमशुद्दीन की विधवा है, एक जमाना था जबकि हकीम शमशुद्दीन किले से लेकर दिल्ली के मामूली झोंपड़े तक में ईश्वर की तरह पूजे जाते थे—और आज हालत यह है कि उनकी बेगम मुहल्ले-मुहल्ले घूमकर लोगों से रहम की भीख मांगने को मजबूर हो गई है।"

—"बात तो बताइये महाराज, क्या बात हुई ?" विनयपूर्वक जनरल ने पूछा।

—"खाँ साहब, हकीम साहेब की कुआरी लड़की पर मिर्जा अबूबकर की बुरी नजर है। कई बार उसने अपने आदमियों के जरिये इन बेगम साहबा के पास खबर भिजवाई थी कि लड़की को किले में दाखिल कर दो। मिर्जा के एक नहीं तीन-तीन बीवी हैं। अब आप ही बताइये कि यह कैसे हो सकता है कि शरीफ घराने की बेटी रखेल बनकर रहे। कई बार मैंने बादशाह-सलामत से मिर्जा की शिकायत की लेकिन उनके दिलासे बस दिखावे के ही रहे। आज सुबह मिर्जा हथियारबन्द आदमियों के साथ आये और हकीम साहब की हवेली लूटकर ले गये। किसी तरह माँ-बेटियों ने मन्दिर में छिपकर अपनी लाज बचाई है।"

अनायास ही जनरल का हाथ तलवार की मूँठ पर चला गया—"चचा जान आप जानते हैं यह मिर्जा अबूबकर कौन है ?"

—"यह छोटे शहजादे हैं, बेटे। पण्डितजी आप कूँचा बुलाकी बेगम में ही रहते हैं ?"

—"जी लालाजी, मैं वहाँ के मन्दिर का पुजारी हूँ।

—"सूबेदार······।" गुस्से से जनरल की आंखें लाल हो रही थीं—"फौरन किले जाकर हुजूर बादशाह सलामत को पैगाम दो कि मैं फौरन उनसे मिलना चाहता हूँ··········या रहने दो। दिलावर खाँ······।" जनरल ने पुकारा।

कलाँ महल के मुख्यद्वार पर खड़े चार बल्लमधारी सैनिकों में से एक दौड़ा आया।

—"दिलावर खाँ, पड़ाव पर जाकर हवलदार रामभरोसे से कहो कि दस सिपाहियों को साथ लेकर मरहूम हकीम जनाब शमशुद्दीन साहब की हवेली······कौनसा कूँचा बताया महाराज ?"

—"कूँचा बुलाकी बेगम !"

—"कूँचा बुलाकी बेगम रवाना होने के लिये मेरे पास हुक्म लेने आयें। जा सकते हो। महाराज आप बेफिक्र रहिये, एक हवलदार और दस सिपाही मरहूम हकीम साहब की हवेली पर पहरा देंगे। वहाँ जो भी शरारती आयेगा, चाहे वह कोई शहजादा हो या आम शहरी, जिन्दा लौट कर नहीं जा सकेगा।

—"साहब आलम !" बुर्के वाली स्त्री ने धीमे स्वर में कहा—"आपकी उम्र दराज हो। अब उस वीरान हवेली में क्या बाकी बचा है। इतनी मेहरबानी कर दीजिये कि हम इज्जत आबरू समेत बुलन्दशहर पहुँच जायें। वहाँ मेरे भाई रहते हैं, वहीं लड़की का निकाह कर दूँगी और बाकी के दिन भाई के बच्चों की झूठन खाकर गुजार दूँगी।"

—"नहीं बहन, खाली हाथ और दुखी दिल लिये मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगा। सूबेदार।"

—"जी।" हनीफ ने अभिवादन किया।

—"कागज कलम मिल सकेगा ?"

—"जी अभी लीजिये।"

हनीफ कागज कलम लेने दौड़ा, तभी एक सैनिक ने मूढ़े लाकर बिछाने शुरू कर दिये।"

—"बैठिये, बहन तुम भी बैठ जाओ। चचा साहब आपकी दिल्ली में ऐसा अंधेर होता है, ऐसा तो मैं ख्वाब में भी नहीं सोच सकता था। बहन तुम्हारी हवेली से नकद रुपया कितना लूटा गया ?"

—"तकरीबन ढाई हजार।" रुँधे गले से स्त्री ने उत्तर दिया।

—"जेवरात भी होंगे ?"

—"जी।"

—"हुक्म फरमाइये।" कागज, कलम, दवात आदि लेकर जनरल के निकट नीचे फर्श पर बैठते हुए हनीफ बोला।

—"पहला हुक्म मिर्जा अबूबकर के नाम लिखिये। लिखिये कि

'आपको हुक्म दिया जाता है कि आज शाम तक मरहूम हकीम साहब की हवेली से लूटा हुआ तमाम माल हमारे पास यहाँ कलाँ-महल में भिजवा दीजिये। अगर हुक्म की तामील न हुई तो हम मजबूर होकर दौलतखाना लुटवा कर आपको जबरन शहर से बाहर खदेड़ देंगे'।"

एकबारगी सभी सन्न रह गये। हनीफ के हाथ हुक्मनामा लिख रहे थे और मन सोच रहा था कि क्या सचमुच सूरत से इतना उदार दिखाई देने वाला जनरल न्याय के प्रति इतना कठोर है।

—"दस्तखत कर दीजिये।" कागज और कलम जनरल की ओर बढ़ाते हुए हनीफ बोला—

केवल कागज हनीफ के हाथ से लेते हुए उन्होंने कहा—"अब दूसरा हुक्म लिखिये शहर कोतवाल के नाम। कोतवाल को साफ लफ्जों में ताकीद कीजिये कि अगर शहर में अब कोई भी लूटमार का वाकया हुआ तो मुज-रिमों से पहिले उन्हें फाँसी दी जायेगी।"

कुछ क्षण बाद जब हनीफ दूसरा हुक्म नामा लिख चुका तो जनरल फिर बोले—"अब एक खत हकीम एहसान उल्ला साहब के नाम लिखिये।"

—"फरमाइये।"

—"लिखिये कि 'पूरे किले में डुग्गी पिटवा दीजिये कि अगर किसी शहजादे ने शहर में लूटमार करने की कोशिश की तो मैं उसकी नाक कटवाकर, मुँह काला करके शहर पनाह दिल्ली से बाहर निकलवा दूँगा।"

तीसरा पर्चा भी लिखा गया। तीनों पर हस्ताक्षर करके हनीफ को देते हुए जनरल ने आदेश दिया—"इन दोनों के साथ आप चले जाइये। मैं हवेली की हिफाजत के लिये गारद भेज रहा हूँ, जब तक गारद वहाँ पहुँचे मरहूम हकीम साहब की हवेली आपकी हिफाजत में रहेगी। बहिन आप अपनी हवेली में जाकर रहिये। कल सुबह तक आपकी हर चीज हवेली में पहुँच जायेगी। महाराज जब भी मेरी जरूरत समझें शौक से

आकर मिल लें। अहले दिल्ली की खिदमत करने ही मैं यहाँ आया हूँ।"

—"आप दूधों नहायें पूतों फलें खाँ साहब, भगवान भला करे लाहौरी दरवाजे के सूबेदार का जिसने हमें आपका पता दिया, वरना हम तो आज भी बादशाह सलामत के सामने अपना दुखड़ा रोकर लौट आते।" पण्डित जी ने आशीष देते हुए कहा।

मन ही मन विक्रम के कार्य पर मुग्ध होकर हनीफ पण्डितजी और बुर्के वाली स्त्री सहित चला गया।

—"चचाजान ठीक किया न? " जनरल ने बच्चों की भाँति मुस्कराते हुए लाला की ओर देखा।

—"बहुत ठीक किया।" गद्‌गद् कंठ से लाला ने उत्तर दिया।"

—"आपकी बात का शायद मैं पूरा जवाब नहीं दे पाया हूँ। चाहें तो इसी वक्त चलिये, वरना कल सुबह अंग्रेजों के पड़ाव पर धावा बोलने का इरादा है। अगर शाम को जिन्दा लौटा तो बादशाह सलामत को सलाम करने के बाद आपके दरे-दौलत पर हाजिरी बजाऊँगा। फिर दिल्ली के जिन खास 'दिल्ली वालों से सलाम बजाने का हुक्म दीजियेगा बजा लाऊँगा'।"

—"ना बेटा, कोई जल्दी नहीं है। जब फुरसत हो तो एक नजर देख लेना दिल्ली को, और दिल्ली वालों को······।"

: १५ :

रात का प्रथम प्रहर बीत चला। जनरल दीवाने-खास और रंगमहल के बीच की खुली बारहदरी में शाही परिवार के साथ भोजन करने गये थे, और हनीफ नौबतखाने के द्वार पर बैठा उनकी प्रतीक्षा कर रहा था।

बस बेकार बैठना ही हनीफ के लिये कठिन था। मन ही मन वह सोच रहा था कि 'जनरल बख्त खाँ निडर और बहादुर अवश्य हैं किन्तु साथ-साथ खफ्ती भी हैं। भला सफर के हारे थके हैं, आज की रात उन्हें कौन-सा गढ़ जीतना है। मुझे बेकार ही यहाँ ऊंघने के लिये खड़ा कर गये। अजीब इन्सान है।' जनरल द्वारा कहे गये वाक्य बार-बार उसे स्मरण हो आते 'सूबेदार हमारा इन्तजार करना। लौटकर तुमसे कुछ सलाह-मशविरा करेंगे।'

साँझ से रात का प्रथम प्रहर हो गया। हनीफ कभी बैठता कभी टहलने लगता।

नौबतखाने की ड्यौढ़ी का पुश्तैनी राजपूत पहरेदार, साँझ से ही अपनी हुक्के की तलब दबाये बैठा था। भला साधारण सैनिक सूबेदार के सामने कैसे हुक्का गुड़गुड़ा सकता है?

अब तलब बरदाश्त से बाहर हो गयी। साहस करके बूढ़ा सैनिक हनीफ के निकट आकर बोला—"सूबेदार जी, साँझ से ही हलकान हो रहे हो। हुक्म हो तो चिलम भर लूँ। असली सुनपती गड़ाकू है।"

—"खूब कही चाचा नेकी और पूछ-पूछ।"

प्रहरी सैनिक को मुँह माँगी मुराद मिली। एक कोने में राख से दबी आँच को कुरेदकर उसने चिलम पर रक्खा और पुनः हनीफ के निकट आकर चिलम बढ़ाते हुए कहा—"लो सूबेदार जी।"

—"ये नहीं होगी चाचा, बड़े-बूढ़े हो तुम्हीं खींचो पहले, देखें हम भी कि कितना लम्बा कश खींचते हो।"

चिलम को छोटे से गीले कपड़े में लपेटकर प्रहरी सैनिक ने एक ही बार में मुँह से इतना धुँआ छोड़ा कि हनीफ दंग रह गया।

चिलम लेते हुए वह मुस्कराया—"मानते हैं चाचा, चिलम पीने में तो तुम एक दम जवान हो······।"

तभी आवाज आई—"मियाँ संतरी जागते हो कि सो गये?" आवाज

में एक कड़क थी, मानो चुनौती हो।

पीछे मुड़कर प्रहरी सैनिक ने द्वार की ओर गरदन घुमाकर प्रश्नकर्ता की-सी ही कड़क आवाज में उत्तर दिया—"सामने आओ कौन है ?" और फिर हनीफ ने हाथ से चिलम लेकर उंगलियों में जकड़ता हुआ बोला—"बोलो भला आदमी हमें दिन छिपे से ही सुला रहा है।"

द्वार पर जलती हुई मशाल के निकट आकर एक इकहरे बदन का किन्तु लम्बा-तड़ंगा व्यक्ति खड़ा हो गया—"चिलम उड़ रही है सन्तरी साहब ?"

—"तुम्हें क्या, चिलम ही तो उड़ रही है, किसी का माल तो नहीं उड़ रहा है। नाम और काम बोलो ?" चिलम मुँह से लगा कर खींचते हुए लापरवाही से उसने कहा।

—"तो सुनो नाम कालेखाँ गोलन्दाज, काम बरेली वाले सूबेदार बख्त खाँ से मुलाकात।"

—"हीं हीं हीं ऽऽ।" प्रहरी अजीब स्वर से हँसता हुआ उठा, और साथ ही हनीफ भी। हनीफ ने कितनी ही बार कालेखाँ गोलन्दाज का नाम सुना था, किन्तु आज तक इच्छा होने पर भी साक्षात नहीं कर पाया था।

—"मियाँ इसमें हिनहिनाने की क्या बात है ?" कथित काले खाँ ने रोषपूर्ण स्वर में कहा।

—"उस्ताद तुम गोलन्दाज तो नहीं हो गोले बाज जरूर हो। हमने क्या काले खाँ को देखा नहीं है, कहीं फिरंगियों का भाड़ झोंक रहा होगा।"

किन्तु निकट पहुँचकर प्रहरी स्तब्ध-सा रह गया—"अरे तुम तो सचमुच ·····तुम तो अंग्रेजी फौज के साथ चले गये थे ना ?"

—"चला गया था, और लौट आया। अपनी मर्जी से गया था और अपनी मर्जी से आ गया। क्यों गया था क्यों आगया ? क्या इसकी

सफाई मुझे सारी दिल्ली को देनी होगी······अच्छा तुम हो ठाकुर।" प्रहरी को पहिचानते हुए काले खाँ बोला—"इन दो महीनों में तुम्हारी जबान खूब कतरनी की तरह चलने लगी है। मेरा नाम काले खाँ है तोप के मुँह से बाँधकर उड़ा दूँगा हड्डी भी नहीं पायेगी, समझे!"

—"हाँ-हाँ समझे।" काले खाँ के हाथों में चिलम थमाते हुए प्रहरी ने कहा—"चिलम पीनी है तो पीलो, किसी और को जाकर ऐंठ दिखाना। हम तो समझे थे कि काले खाँ कब का मर-मरा गया होगा।"

—"रहने दे काले खाँ जाने तेरे जैसे कितनों को मारकर मरेगा।" चिलम मुँह से लगाते हुए काले खाँ ने कहा।

साँवला रंग, चेहरे पर शीतला के बेशुमार दाग। हनीफ सोच रहा था, क्या यही वही काले खाँ है जिसका निशाना कभी खाली नहीं जाता और दिल्ली वालों के कथनानुसार कभी खाली नहीं जायेगा। काले खाँ ने चिलम खींचकर मुँह तनिक ऊपर करके धुँआ छोड़ा, ठीक इसी समय हनीफ ने देखा कि गोलन्दाज की एक आँख भी बैठी हुई है—शायद यह भी कभी शीतला की ही भेंट हुई होगी।

मशाल की टिमटिमाती रोशनी में धुयें का बादल बनाकर काले खाँ ने अपनी दृष्टि हनीफ पर गड़ा दी। तनिक सकुचाते हुए वह बोला—"आप ही हैं बख्त खाँ सूबेदार?"

—"जी नहीं मेरा नाम हनीफ है, जनरल बख्त खाँ इस वक्त शाही दावत में शरीक हैं।"

—"अरे वो जनरल है या सूबेदार?"

—"बादशाह सलामत ने आज उन्हें सारी फौजों का जनरल बना दिया है······।"

—"क्या समझे?" प्रहरी ने चुटकी ली—"बख्त खाँ बहादुर थे, सूबेदार से जनरल हो गये—और तुम चार पैसे पाने के लोभ में लाल मुँह वालों की दुम से बँधे चले गये। अब गोलन्दाजी तो तुम्हें मिलने से रही,

मुहल्ले-मुहल्ले घूमकर गले की गोलेबाजी करते फिरो।"

—"ये ठाकुर आज मेरे हाथ से मरकर ही रहेगा, सूबेदार! कहो तो निकाल दूँ इसका कचूमर!"

—"मेरे तो आप दोनों ही बुजुर्ग हैं, खुशी इस बात की है कि आज मैं आपके रूबरू खड़ा हूँ। दिल्ली के बाशिन्दों से आपकी बहुत तारीफ सुनी है, अच्छा ही हुआ जो आपने अंग्रेजों का साथ छोड़ दिया। जंगे आजादी की मुहीम को आप जैसे फनकार की खिदमत पाकर बहुत ताकत मिलेगी। जनरल आते होंगे, आप उनसे मिल लीजिये, और कल से ही अपना काम सँभाल लीजिये।"

—"मियाँ आया तो इसी इरादे से हूँ, लेकिन इस ठाकुर जैसे जलील आदमियों की दिल्ली में कमी नहीं है। जब से शहर पनाह के अन्दर दाखिल हुआ हूँ तभी से कोई फब्ती कसता है—कोई सलाह देता है कि मैं वापिस अंग्रेजी छावनी में चला जाऊँ, कोई कहता है कि खुदकशी कर लूँ। तबियत करती है कि शहर देहली के जलीलों को इकट्ठा करके तोप से उड़ा दूँ ······।"

बात अधूरी ही रह गई। दीवाने-आम के एक कोने से दो मशालें झिलमिलाती हुई इधर ही आ रही थीं।

—"शायद जनरल आ रहे हैं, काले खाँ साहब खुले दिल से जो कुछ कहना चाहते हों उनसे कह दीजियेगा। जहाँ तक मैं जनरल को समझता हूँ वो एक खुशफहम बहादुर इंसान हैं और बहादुरों की कद्र करते हैं।"

सचमुच जनरल ही आ रहे थे। आगे-आगे दो मशालची थे और पीछे बसंत खाँ सहित जनरल थे। काले खाँ के हाथ से चिलम लेकर प्रहरी ने एक ओर छिपा दी और बल्लम लेकर सीधा खड़ा हो गया। दरवाजे से सटकर काले खाँ और हनीफ भी बाअदब खड़े हो गये।

—"आज सचमुच तुझे बहुत परेशान रहना पड़ा है सूबेदार, दरअसल शाही दावत में इतना वक्त खराब होगा इसका हमें गुमान नहीं

था।" नौबतखाने के प्रवेशद्वार की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए जनरल बोले।

—"यह तो मेरी खुशनसीबी है खाँ साहब। बरेली से लेकर देहली तक के सिपाहियों में सिर्फ मैं ही तो खुश-किस्मत हूँ जिसे जनाब का हम-साया होने का फख्र हासिल हुआ है। खाँ साहब देहली की नायाब और बुलन्द हस्ती से मिलिये, आप हैं काले खाँ, मशहूर और मारुफ गोलन्दाज। अहले दिल्ली के लफ्जों में······।"

—"आज तक आपका निशाना नहीं चूका है।" खिले चेहरे से जनरल बोले—"काले खाँ खुश आमदीन। सैकड़ों कोस दूर बरेली में भी हमने तुम्हारी तारीफ कितनी ही जबानों से सुनी है।"

काले खाँ सलाम करने झुका ही था कि जनरल ने उसे दोनों बाहों में भरकर वक्ष से लगा लिया।

काले खाँ की आत्मा चीत्कार उठी—"भाईजान।" अस्फुट स्वर से शब्द बिखरे—"मैं इस काबिल नहीं हूँ कि आपसे बगलगीर हो सकूँ। एक बहम की वजह से जबरदस्त गलती कर बैठा, फिरंगियों ने मुझे बताया कि मेरठ के सिर फिरे बागी दिल्ली आ रहे हैं। वह बादशाह को कत्ल कर देंगे और दिल्ली का अमन-चैन खतम करके इसे वीरान बना देंगे। यह मेरी बदनसीबी थी कि मैं उस वक्त यह भी नहीं सोच सका कि मेरठ के सिपाही क्यों अपने मुल्क पर सितम ढायेंगे? मैं फिरंगियों के साथ ही······।"

—"बीती बातों के दुहराने से कोई फायदा नहीं है भाईजान। हम सभी की एक ही मंजिल है, सभी को इकट्ठा होकर एक ही रास्ते पर चलना है। सुबह का भूला अगर शाम को घर आ जाये तो उसे भूला नहीं कहा जा सकता—और मैं तो सुबह के भूलों का आधी रात तक इन्तजार करूँगा। बीती बातों को फुरसत में याद करेंगे, कल सुबह तुम मेरे साथ गोलाबारी शुरू कर रहे हो।"

—"हुक्म सर आँखों पर।"

—"चलो हनीफ, आओ काले खाँ। जरा किले का लाहौरी दरवाजा

भी देख लें।" चलते हुए जनरल बोले—"बसंत खाँ तुम जा सकते हो।"

लाहौरी दरवाजे जाने वाली भव्य ऊँची छत वाली गली खामोश और सुनसान थी। कभी यहाँ बनी लम्बी आरामगाह सैनिकों से भरी रहती थी। एक बार जब मेरठ से सैनिक आये तो यह फिर आबाद हो गई थी। किन्तु शाही परिवार को किले की चहारदीवारी में सैनिकों का रहना पसन्द नहीं था। फलस्वरूप अब यह फिर वीरान हो गयी थी। तीनों व्यक्तियों की पद-चापों की गूँज से ही छत के किनारों में बसेरा लेने वाले पक्षियों की नींद टूट गयी और उनके पंखों की फड़फड़ाहट से वातावरण की नीरवता भंग हो गई।

चलते-चलते अचानक ही जनरल रुक गये—"हनीफ यह आवाज सुन रहे हो—"

उत्तर दिया काले खाँ ने—"वाह किसी उस्ताद ने सितम छेड़ा है—क्या खूब, लाजवाब है।"

—"यह कोई उस्ताद नहीं है खाँ साहब, मेरठ का एक सिपाही है। जैसे ही मेरठ की फौजों ने जमना पार की यह कंधे पर घाव खा बैठा। लेकिन इसकी होशियारी से फायदा यह हुआ कि आपसी टकराव बच गया और जो रिसाला हमारे मुकाबले के लिये आया था उसके अफसर मारे गये और सिपाही हमारे साथ आ गये। बादशाह सलामत ने इसकी बहादुरी की कद्र में सूबेदारी देकर इस दरवाजे पर तैनात कर दिया है।"

—"आओ।" कदम उठाते हुए जनरल बोले।

जनरल के मन के भावों को हनीफ भला कैसे समझता, मन ही मन उसे शंका हुई कि नहीं यह विक्रम के इस कार्य से अप्रसन्न न हो जायें। वह फिर बोला—"बहुत ही बहादुर नौजवान है, मेरा पगड़ी पलट भाई है।"

—"हूँ।" जनरल हनीफ से तनिक आगे चल रहे थे। उनके मन के भाव वह अब भी नहीं पढ़ सका।

तीनों ने देखा कि पहरे के सिपाही एक झुण्ड के रूप में सूबेदार की

मसनद के सामने खड़े हैं, और सितार के तारों की कलापूर्ण झनझनाहट को एकचित्त होकर सुन रहे हैं।

लगभग पन्द्रह कदम दूर से ही हनीफ ने ऊँचे स्वर से कहा—"बाअदब जनरल तशरीफ ला रहे हैं।"

सिपाही यथा स्थान शीघ्रता से जाकर खड़े हो गये, सितार बन्द हो गया। एक ओर रक्खी पगड़ी को सिर पर रखते हुए विक्रम ने मसनद से उतरकर जनरल का अभिवादन किया। म्यान सहित तलवार, सितार, कमर का फेंटा, यह सब वस्तुएँ मसनद पर बिखर पड़ीं थी।

—"हम सूबेदार का नाम जानना चाहते हैं?" जनरल ने शान्त स्वर में प्रश्न किया।

—"मुझे विक्रमसिंह कहते हैं हुजूर।"

—"सूबेदार विक्रमसिंह, दरवाजे की पहरेदारी में कोताही हो तो हो--सिपाहियों का मन तुम खूब बहला सकते हो। तुम्हें तो शाही दरबार में होना चाहिये था।"

—"हुजूर को गलतफहमी हुई है। पहरे में कतई कोताही नहीं है। दरवाजा बन्द है और ऊपर छत पर सिपाही बाकायदा मुस्तैद हैं। मैं सिपाही हूँ, शाही मुसाहिब होने की काबलियत मुझमें नहीं है, इसके अलावा मुझे अपने पेशे पर फख्र है बन्दा परवर।"

—"तुम्हारा साफ जवाब हमें पसन्द आया—अगर यह बात है तो हम सूबेदार से गाने-बजाने के फन में दिलचस्पी रखने की वजह जानना चाहेंगे।"

—"बेअदबी की माफी चाहता हूँ, कोई भी फन सिर्फ दरबारे शाही की बपौती नहीं है।"

—"तुम्हारी यह बात भी हम मानते हैं। सिर्फ यह जानना चाहते हैं कि एक सिपाही इन तमाम शौकों को रखते हुए भी क्या अपने सिपाहीगिरी के फर्ज को अच्छी तरह अंजाम दे सकता है?"

—"हजूर जब चाहे इम्तहान ले सकते हैं।"

—"इससे अच्छा मौका कब मिलेगा, उठाओ तलवार।" होठों में मुस्कराते हुए जनरल ने आज्ञा दी।

विक्रम ने अभिवादन किया और मसनद पर रक्खी तलवार उठाली—"बन्दा परवर जिसे चाहें मुकाबले के लिये हुक्म दे सकते हैं।"

—"हम खुद ही तुम्हारे हाथ देखेंगे।" म्यान से तलवार खींचते हुए जनरल बोले।

हनीफ सिहर उठा। काले खाँ ने विक्रम पर दृष्टि गाड़ दी, चारों ओर खड़े सिपाहियों में भय वेगवान बिजली की लहर की भाँति दौड़ने लगा।

किन्तु विक्रम के चेहरे पर मुस्कराहट दौड़ गई। उसने झुककर म्यान सहित तलवार जनरल के कदमों में डाल दी—"कोई जुर्म नहीं किया है खाँ साहब, इसलिये मैं सजा पाने से भी इन्कार करता हूँ।"

पलक मारते ही वातावरण बदल गया। स्नेह से विक्रम के कन्धे पर हाथ रखकर जनरल ने हनीफ को सम्बोधित किया—"तुम्हारा भाई बहुत ही चालाक है, इसने हमें न तो सितार ही सुनाया और ना ही तलवार के हाथ दिखाये। सूबेदार विक्रमसिंह किसी दिन फुरसत में तुमसे मुलाकात होगी। काले खाँ, हनीफ अब सुबह मुलाकात होगी। आप लोग जाइये, मैं देहली दरवाजे से लौटूँगा। वहाँ लोग मेरा घोड़ा लिये इन्तजार कर रहे होंगे।"

: १६ :

जनरल से विदा होकर रात बिताने हनीफ ससुराल चला गया था। यूं हसीना को भी उसने जता दिया था कि प्रातः सूर्य निकलने से पहले ही उसे यहाँ से चला जाना है। किन्तु यह सम्भव नहीं हो सका। आधी रात तक पति-पत्नी भूत-भविष्य की बातें करते रहे। सुबह हनीफ की आँख खुली तो सूर्य उदय हो चुका था, वह तुरन्त ही चला जाना चाहता था, किन्तु हसीना का 'दूध पीकर जाइयेगा' आत्मिक अनुरोध था। हनीफ टाल नहीं सका। फलस्वरूप और भी देर हो गई।

जब हनीफ कला महल पहुँचा तो महल के बाहर लगभग पांच हजार सिपाही कूँच करने के लिये तैयार खड़े थे। आगे तोपखाना था। तोपखाने के पीछे घुड़सवार थे और फिर पैदल सेना थी। दूर पैदलों की पांत में जनरल बरेली के दो सूबेदारों सहित सैन्य निरीक्षण में व्यस्त थे।

हनीफ ने भी अपनी टुकड़ी खोज निकाली और यथा स्थान मेरठ की घुड़सवार टुकड़ी के छोर पर जा खड़ा हुआ।

कुछ देर बाद जनरल दोनों घुड़सवार सूबेदारों सहित उधर से गुजर रहे थे कि हनीफ को देखकर उन्होंने घोड़े की लगाम खींचली—"देर से उठने की आदत एक सिपाही के लिये अच्छी नहीं होती सूबेदार, घोड़ा आगे बढ़ाओ।" और फिर अपने साथ के सूबेदारों को उन्होंने आदेश दिया—"फौजों को आगे बढ़ाओ—काश्मीरी दरवाजे से हम शहर से बाहर निकलेंगे, गुलाम मुहम्मद तुम तोपखाना बैट्री के साथ रहो, जयसिंह तुम फौजी कारवाँ के आगे-आगे चलोगी। काश्मीरी गेट से निकलने के बाद हम तुम्हारे साथ रहेंगे। हनीफ तुम हमारे साथ आओ।"

हाथ के संकेत से फौजों को आगे बढ़ने का संकेत देते हुए जनरल ने घोड़े को बढ़ाते हुए कहा—"आओ फौजों का इन्तजार हम काश्मीरी दरवाजे पर करेंगे।"

—"लेकिन खाँ साहब, शहर के आम रास्ते पर हजारों शहरी आपके

इस्तकबाल के लिए जमा हैं।" जनरल के साथ घोड़ा दौड़ाते हुए हनीफ ने कहा।

—"सुना है।" घोड़े की चाल और भी तेज करते हुए जनरल बोले—"हम चाहते हैं कि आज जो अहले दिल्ली के हाथों से फूल बरसें वह घुड़सवार फौज के सूबेदार जयसिंह की पगड़ी पर पड़े। मेरी नजर में वह बरेली फौज का सबसे बहादुर आदमी है—लेकिन तुम अब तक कहाँ रहे। हम सुबह से ही तुम्हारा इन्तजार कर रहे थे?"

हनीफ ने दृष्टि उठाकर जनरल को देखा। उनके मुख पर फौजी अफसर जैसी कठोरता न होकर सौम्य मुस्कराहट थी।

हनीफ को साफ बात कहने का साहस हुआ—"हुजूर रात आपसे रुख-सत होकर ससुराल चला गया था। दरअसल ससुराल में बीवी और ससुर साहब के अलावा और कोई नहीं है। ससुर साहब बल्लभगढ़ गये हुए हैं—बीवी जिद कर बैठी कि......।"

—"बस-बस इतनी बारीक सफाई की जरूरत नहीं है।"

फौज पीछे रह गई थी। आम शहर का रास्ता छोड़कर जनरल ने घोड़ा खानम बाजार की ओर मोड़ दिया। अभी सारी दूकानें नहीं खुली थीं। बाजार में विशेष चहल-पहल भी नहीं थी। जनरल साधारण सैनिक वेष-भूषा में था। बाजार के किसी आदमी को उनके बाजार से गुजरने का गुमान भी नहीं था।

कुछ क्षण बाद जनरल फिर बोले—"हनीफ मैं यह चाहता हूँ कि तुम हर वक्त मेरे साथ रहो। ताकि मेरठ के सिपाहियों के मन में कभी यह न उठे कि बरेली का एक सूबेदार हम पर नाजायज हुकूमत कर रहा है।"

जनरल की बात से हनीफ चौंका—"क्या किसी मेरठ के सिपाही ने कोई बेअदबी की?"

—"नहीं अभी तो मैं मेरठ वालों की अच्छी तरह शक्ल भी नहीं देख पाया हूँ।"

—"साफ बताने की मेहरबानी कीजिये खाँ साहब। मेरी नजर में मेरठ का हर सिपाही आपकी दिली इज्जत करता है। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि मेरठ के सिपाहियों के बारे में आपको कैसे बदगुमानी हो गयी

—"नहीं भाई, मैंने कहा न कि मेरठ के सिपाहियों की तो मैंने अभी तक शक्लें भी अच्छी तरह नहीं देखी हैं। अभी तक तुमसे मुलाकात करके मैं मेरठ के सिपाहियों के बारे में सिर्फ इतना ही सोच सकता हूँ कि सभी बेहद ईमानदार और सच्चे आदमी होंगे। मेरठ के सिपाहियों में यकीनन मेरे बारे में या बरेली फौज के दूसरे अफसरों के बारे में कोई बदगुमानी नहीं होगी। लेकिन हो सकती है—कुछ लोग उनमें यह सब पैदा करने की कोशिश करेंगे। रात की शाही दावत में जो कुछ मैंने सुना वह सोचने और समझने से ताल्लुक रखता है......शहजादों की आवारगी के बारे में जो हुक्म मैंने कल लिखाये वह खानेदाने शाही को पसन्द नहीं आये......"

—"क्यों हजूर बादशाह ने यह सब बताया है?" जनरल की बात काटते हुए हनीफ ने प्रश्न किया।

—"हाँ।"

—"तो क्या वह भी···?"

—"मैंने महसूस किया है कि बादशाह सलामत की हालत एक अपाहिज आदमी की-सी है। दुःख और मुसीबत के ख्याल से ही वो काँप उठते हैं। उनका कहना है कि शहजादों और शाही खानदान के फौजी अफसरों को मुझे नाराज नहीं करना चाहिये; वरना वो अपनी फौजी टुकड़ियों से मेरे खिलाफ बगावत तक करा सकते हैं।"

हनीफ शहजादों से अपरिचित नहीं था। शान्त किन्तु घृणा से भरे स्वर में उसने कहा—"इसका मतलब यह कि वह दुश्मन से मिल सकते हैं। खाँ साहब मेरे मन की बात यह है कि आप उनके साथ कोई रियायत न करें। वर्ना वह सब ऐसे माहौल के पले हुए हैं कि शह पाते ही सर चढ़

जाते हैं।"

—"किसी के साथ भी रियायत करने का मतलब ही पैदा नहीं होता, शहजादों और खानदाने शाही को सर चढ़ाने का मतलब यह होगा कि हम आम लोगों को लूट-खसोट और मारपीट के माहौल में धकेल देंगे, और नतीजा यह होगा कि लोग समझेंगे कि जंगे-आजादी की कामयाबी का मतलब डाकू और लुटेरों की हुकूमत है।"

हनीफ को यह उत्तर पाकर मन-ही-मन प्रसन्नता हुई। काफी देर तक दोनों खामोश घोड़े दौड़ाते रहे।

खानम बाजार से निकलकर किले की दीवार के किनारे-किनारे घोड़ों की चाल धीमी हो गई। एक बार पैनी दृष्टि से हनीफ को घूरते हुए जनरल ने अपनी बात को स्पष्ट शब्दों में दुहराते हुए कहा—"अब तुम मेरी बात का मतलब समझ गये होगे। हो सकता है कि शाही-खानदान के फौजी अफसर अपनी फौजों को मेरे साथ लड़ने न भेजें। हो सकता है कि वह मेरठ के फौजी अफसरों के कान भरें कि मुझ जैसे जाहिल आदमी के साथ वह न लड़ें—अगर ऐसा वक्त आया तो मैं तुम्हें यह जिम्मेदारी दूँगा कि तुम मेरठ वालों को यह समझाओगे कि उनका फर्ज क्या है और इसीलिये मैं तुम्हें हर वक्त अपने साथ रखना चाहता हूँ। हनीफ सैकड़ों कोस दूर पड़े बीवी-बच्चों की कसम खाकर कहता हूँ कि मुझे बादशाह ने जो रुतबा दिया है उससे कतई मुहब्बत नहीं है। जब भी कभी ऐसा मौका आयेगा मैं खुशी से फौजी कमान तुम्हारे या किसी दूसरे मेरठ के अफसर के हाथ में देकर अदना तोपची की तरह काम करके अपना फर्ज पूरा करूँगा। फिरंगी हमारे मुल्क के दुश्मन हैं और इसलिये हमने उनके खिलाफ सर की बाजी लगाई है—लेकिन सिर्फ एक दिन के तजुर्बे से मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि ज्यादातर शहजादे और शाही-खानदान के लोग मुल्क की रियाया के दुश्मन हैं। इनके वाहियात कारनामे किसी भी कीमत पर बरदाश्त नहीं कर सकूँगा।

—"सिर्फ एक बात साफ करना चाहता हूँ खाँ साहब, मेरठ के सिपाहियों और अफसरों का दिल और दिमाग कम-से-कम मैं अच्छी तरह पहिचानता हूँ।" जनरल के साथ-साथ घोड़े का रूख काश्मीरी दरवाजे की ओर मोड़ते हुए हनीफ ने कहा—"उन्होंने किसी दबाव से नहीं बल्कि अपने मन से फिरंगी के खिलाफ बगावत की है। वह सिर्फ फिरंगी की गुलामी से छुटकारा चाहते हैं। वह दुश्मन से लड़ना चाहते हैं—हो सकता है उनके मन में रुतबा पा जाने की उम्मीद भी हो, लेकिन उनमें से कोई भी शाही मुसाहिब होना नहीं चाहता। अगर एक बार शैतान भी उन्हें बहकाये तब भी वह आपके खिलाफ नहीं होंगे।"

जनरल ने हनीफ की बात का कोई उत्तर नहीं दिया। कुछ क्षण बाद वे मौन तोड़ते हुए बोले—"कल शाम से ही एक सवाल ने मुझे परेशान कर रखा है······, क्या बरेली से यहाँ देहली आकर मैंने गलती की है?"

—"ऐसी बातें आपको नहीं सोचनी चाहिये खाँ साहब, अहले-देहली को आपकी जरूरत थी।"

—"अहले-हिन्द को सरफरोशों की जरूरत है। मैं अपनी फौजों को लखनऊ या इलाहाबाद ले जाता तो क्या हर्ज था? कम-से-कम वहाँ शहजादों का सर-दर्द तो नहीं रहता। कल दोपहर को मिर्जा मुगल बेग से मुलाकात हुई। वह चाहते थे कि मैं उन्हें वलीअहद मानलूँ, रात में बेगम जीनत महल ने कहा कि मुझे फौरन शहजादे जवाँबख्त को वलीअहद तसलीम कर लेना चाहिये। किले में आराम से पुलाव की रकाबियाँ उड़ाने के बाद किले वाले वलीअहद होने का सपना देखते हैं—आराम से मसनदों पर शराब के जाम खनकते हैं और बातें होती हैं कि जिन इलाकों को सिपाही जान की बाजी लगाकर जीतेंगे वो किसकी जागीर बनेंगे। लड़ाई कैसे जीती जायेगी, इस बात की फिकर किसी को नहीं है—"आम सिपाहियों पर क्या बीत रही है, इसकी किसी को पर्वाह नहीं है।"

काश्मीरी दरवाजा निकट आ चुका था। शहर-पनाह के रक्षक सैनिकों

ने जनरल के सम्मान में एक साथ हवा में कड़ाबीन दागी।

—"सादी पोशाक में भी सिपाही आपको पहिचान गये हैं खाँ साहब।"

—"कल शाम से यहाँ कुछ बरेली के सिपाही भी मौजूद हैं, वरना दिल्ली और मेरठ वालों की नजरें इतनी तेज नहीं हैं।" मुस्कराते हुए जनरल ने हनीफ को रुकने का संकेत किया।

बरेली फौज के एक अफसर ने आकर जनरल के घोड़े की रास पकड़ी, शीघ्रतापूर्वक जनरल घोड़े से उतरकर शहर-पनाह की दीवार पर चढ़ गये।

जनरल की बात का उत्तर हनीफ ने उनके दूसरे साथी को दिया— "दोस्त दिल्ली और मेरठ वालों की नजरें बहुत तेज होती हैं—कभी धोखा नहीं खातीं।"

—"मैं समझा नहीं भाईजान?" दूसरे हाथ से हनीफ के घोड़े की भी रास पकड़ते हुए उसने कहा।

—"वक्त आने पर समझ जाओगे।" स्नेह पूर्वक उसका कंधा थपथपाते हुए हनीफ भी जनरल के पीछे चला गया।"

चारों ओर सैनिकों से घिरे जनरल एक आँख से दूरबीन लगाये शान्तचित्त होकर दूर पहाड़ियों में छिपी अंग्रेजी छावनी को ढूँढ रहे थे। काश्मीरी गेट पर आती हुई सेना के नगाड़े का स्वर क्रमशः तेज होता जा रहा था।

—"हनीफ वह देखो फौजें आगईं, दरवाजा खुलवादो।"

आदेश पाकर हनीफ नीचे चला गया। जनरल ठीक दरवाजे के ऊपर जाकर खड़े होगये।

सर्व प्रथम फौजी बाजा दृष्टि गोचर हुआ। दरवाजे के निकट पहुँचकर बाजे वाले एक ओर खड़े हो गये। अब तोपगाड़ियाँ सामने आईं। पहली तोपगाड़ी के साथ काले खाँ था। पीछे फौजी जनरल और सम्राट् की जय-जयकार के नारे लगा रहे थे। हाथ उठाकर शान्त रहने का संकेत देते हुए जनरल ने आवाज दी—"काले खाँ ऊपर आओ।"

क्या बात है ? सैनिक साँस रोके जनरल की ओर ताक रहे थे। वातावरण में केवल अधीर श्वासों की ध्वनि थी।

ऊपर आकर काले खाँ ने अभिवादन किया।

—"यह लो।" दूरबीन काले खाँ के हाथ में देते हुए दरवाजे के ऊपर रक्खी आधुनिक लम्बी नली की तोप की ओर हाथ बढ़ाकर उन्होंने कहा—"आज के हमले की खबर फिरंगियों को अपने हाथ से गोला दाग कर दो, और देखो गोला बेकार नहीं जाना चाहिये।"

—"दूरबीन अपने पास ही रखिये हुजूर, खुदा की दी हुई एक आँख ही काफी है। निशाना अगर ठीक दुश्मन के दिल पर न बैठे तो काले खाँ कहाना छोड़ दूँगा।

काले खाँ तोप की ओर ऐसे लपका मानो देर से बिछुड़ा हुआ शिशु माँ की गोद में छिपने को बेकरार हो।

तोप घुमाते हुए वह गुनगुनाया—"कहता हूँ सच कि झूठ की आदत नहीं मुझे······।"

धड़ाम······तोप से छूटा हुआ गोला दूर पहाड़ियों में जाकर गिरा।

दरवाजे से नीचे उतरते हुए जनरल ऊँचे स्वर में बोले—"जवानो, आगे बढ़ो!"

: १७ :

प्रातःकाल ही बसंत खाँ ने विक्रम को सम्राट् का बुलावा सुना दिया था। सम्राट् का आदेश टाला नहीं जा सकता था। मजबूर होकर विक्रम ने एक सैनिक के कल्लन पखावजी को बुलाने भेज दिया।

दोपहर पश्चात् कल्लन सहित विक्रम दीवाने-खास पहुँचा तो बताया कि

सम्राट् रंगमहल में हैं। तीसरे पहर आदेश मिला इस समय सम्राट् बाराह-दरी 'सावन' में है—और वहीं उसे बुलाया है। यह सुन्दर स्थान विक्रम ने पहली बार देखा। चारों ओर घने फूलों से लदे बगीचे में 'सावन और भादों' दो सुन्दर खुले भवन थे। जिनके बीच में 'नहरे-बहिश्त' के स्वच्छ चाँदी-जैसे जल के झरने और फौवारे ने उसकी शोभा कथित स्वर्ग जैसी बना दी थी।

चाँदी की जगमगाती कुर्सी पर सम्राट् विराजमान थे। हल्के गुलाबी पर्दे की ओर संकेत करके उन्होंने कहा—"नौजवान हमारे साथ छोटी मलिका बेगम ताजमहल भी तुम्हारे फन की दाद देने आई हैं। कोई चीज सुनाओ कि हम अपनी परेशानियाँ भूल जायें।"

आसमान पर हल्की घटा थी। विक्रम ने मल्हार शुरू की। सचमुच समाँ बँध गया। आँखें मूँदे सम्राट् संगीत के स्वरों पर सिर हिलाते रहे। कभी-कभी जब विक्रम दृष्टि ऊपर उठाता तो पर्दे के पीछे दो दासियों के बीच बैठी युवती बेगम की छाया भी मूर्तिवत् बैठी दिखाई दे जाती।

जब विक्रम ने राग समाप्त किया तो सम्राट् गद्‌गद् होकर बोले—"सचमुच तुम्हारे गले में जादू है बेटे, तबियत खुश हुई। बल्लाह अभी तो शाम भी नहीं हुई है—तबियत करती है कि आधी रात तक तुम गाते रहो और हम सुनते रहें। खैर आज हम चाहते हैं कि तुम अपनी जबान से हमसे इनाम माँगो······।"

विक्रम उठकर कुछ कहना ही चाहता था कि बसंतखाँ ने आकर कोरनीस करते हुए कहा—"जिल्ले सुभहानी मुबारक हो। मैदाने जंग से खबर आई है कि दुश्मन की छावनी पर हमला कामयाब रहा। छावनी से ढेरों जंगी सामान भी बरामद हुआ—जिसमें एक जवान हाथी भी है। जनरल ने पैगाम भेजा है कि फौज हाथी आपको नजर करना चाहती है।"

—"शुक्र है खुदा का।" आँखें बन्द करके दोनों हाथ सम्राट् ने क्षण भर को ऊपर उठाये—"हम नजराना खुद कबूल करेंगे। खबर भेजो

कि वापसी में फौज किले के लाहौरी दरवाजे से होकर दिल्ली दरवाजे से पड़ाव पर जाये। हम नौबतखाने के दरवाजे पर उसका शुक्रिया अदा करेंगे। बेटे जो दिल कहता हो वही माँगो, तुम्हारी आमद से हमें दोहरी खुशी मिली है।"

—"आलीजहाँ दिल की बात अर्ज करता हूँ कि अगर मुझे मैदाने-जंग में जाने की इजाजत देदी जाय तो खास शाही मेहरबानी समझूँगा। मेरी नजर में यह मेरे लिये बहुत ही अहम इनाम होगा।"

—"हम वायदा करते हैं कि तुम्हारी ख्वाहिश पूरी करेंगे। लेकिन यह तो तुम्हारी कुर्बानी का नमूना हुआ। हम चाहते हैं कि तुम हमसे इनाम माँगो।"

—"हुजूर की मेहरबानी के अलावा मुझे किसी चीज की जरूरत नहीं है। मुझे अपने रिसाले में वापस जाने का हुक्म दे दिया जाय।"

—"हमने हुक्म दिया—लेकिन इनाम तुम्हें माँगना ही होगा।"

कुछ क्षण विक्रम मौन खड़ा रहा। वह सोच रहा था कि कहीं सम्राट् गुस्से में आकर अपना हुक्म वापस न ले लें।

तभी पर्दे के पीछे से आवाज आई—"बेगम साहिबा पूछती हैं कि आपकी शादी हो गई?"

—"नहीं माँ।" विक्रम ने बेगम ताजमहल को सम्बोधित किया—"सिपाहीगीरी के अलावा और कोई भी संसार की जिम्मेदारी मुझ पर नहीं है। माँ-बाप भी बचपन में ही परलोक सिधार गए।"

पर्दे के पीछे से फिर आवाज आई, आवाज इतनी सुन्दर थी कि विक्रम को हसीना की आवाज स्मरण हो गई—"तुम अपने बादशाह से इनाम नहीं लेना चाहते, मत लो। मैं तुम्हें अपने गले की चम्पाकली दे रही हूँ; यह तुम्हारे लिये नहीं है बल्कि तुम्हारी बीबी के लिये है। जब शादी हो तो अपनी दुलहिन को बता देना कि यह छोटा-सा तोहफा छोटी बेगम ने दिया था।"

हनीफ कुछ कहना ही चाहता था कि आवाज फिर आई—"मैं कुछ भी नहीं सुनूँगी। तुमने मुझे मां कहा है—जब मां कहा है तो मां की बात रक्खो। जो कुछ भी मां दे चुपचाप ले लो।"

पर्दे में से एक खूबसूरत हाथ निकला, हाथ में सोने की चम्पाकली थी। सम्राट् ने अपने हाथ में चम्पाकली लेकर विक्रम की ओर बढ़ाते हुए कहा—"इसके साथ हमारी दुआयें भी हैं, खुश रहो, खुदा तुम्हें लम्बी जिन्दगी दे। बसंत खाँ, पखावजी को पाँच मुहरें दिला देना।"

सम्राट् से विदा होकर कल्लन पखावजी अपना इनाम लेने बसंत खाँ के साथ कोषाध्यक्ष के साथ चला गया। विक्रम एक हाथ में सितार और दूसरे में चम्पाकली लिये अपने स्थान की ओर चला गया। संसार की दृष्टि में सम्मान और गौरव की प्रतीक-शाही इनाम सोने की 'चम्पाकली' उसे भार-सी प्रतीत हो रही थी। कुछ क्षण अपनी मसनद के सहारे बैठ कर वह यही इधर-उधर की सोचता रहा—सोच रहा था कि यह चम्पाकली हसीना को जाकर दे आये।

उठकर उसने घोड़े की रकाब में पांव रक्खा ही था कि चार घुड़सवारों के अग्रिम दस्ते ने आकर सूचना दी कि फौज काश्मीरी दरवाजे के करीब आ चुकी है। मन में उत्सुकता जगी, पाँव रकाब से स्वयं ही निकल गया—आज तो फौजी जुलूस भी देखने काबिल होगा? वह फिर मसनद पर आ बैठा और दूर बजते हुए फौजी नगाड़े की क्रमशः निकट आती हुई आवाज कान लगाकर सुनने लगा।

प्रतीक्षा की घड़ियाँ भी किसी प्रकार बीत ही गईं। फौजी बाजे के बाद घोड़े पर चढ़े जनरल ने दरवाजे में प्रवेश किया। विक्रम का अभिवादन मुस्कराकर स्वीकार करते हुए जनरल आगे निकल गये। तोपखाने की गाड़ियों के गुजर जाने के बाद हनीफ दिखाई दिया—हाथी पर चढ़ा हुआ।

—"अरे वाह भैया······तुम तो छिपे रुस्तम निकले। यह हाथी

हाँकना कब सीखा था ?" ऊँचे स्वर में विक्रम ने पूछा।

—"इस हाथी ने तो मुसीबत में डाल रक्खा है विक्रम, मैं तो यह सोचकर चढ़ बैठा था कि फ़िरंगी का माल क्यों छोड़ा, लेकिन यह कम्बख्त घड़ी-घड़ी बिदक जाता है। कोई महावत आकर इसे सँभाल ले तो मेरी जान छूटे।" अंकुश के स्थान पर तलवार की नोक का प्रयोग करते हुए हनीफ ने चिल्लाकर उत्तर दिया।

हाथी सम्राट् को भेंट किया जायगा। यह उत्सव देखने विक्रम भी हाथी के पीछे-पीछे चल दिया।

नौबतखाने के द्वार पर सम्राट् अपने मुसाहिबों सहित उपस्थित थे। जनरल ने सम्राट् के निकट जाकर अभिवादन किया। इधर हाथी के चारों ओर मैदान बनाकर फौजी भी यह उत्सव देखने खड़े हो गये।

—"सूबेदार हनीफ हाथी को यहाँ करीब लाओ।" जनरल ने आदेश दिया।

तलवार की नोक तनिक चुभाकर जैसे ही हनीफ ने हाथी को आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया—हाथी जोर से चिंघाड़ा, पूरे जोर से अपने असंतुलित शरीर को हिलाकर वह अपने पिछले दो पैरों के सहारे सूंड़ को हवा में उछालता हुआ क्षण भर को सीधा खड़ा हो गया।

आस-पास की भीड़ काई की भाँति दोनों ओर पीछे हट गई, प्रत्येक दर्शक के चेहरे पर भय की छाया आसमान के बादलों की भाँति छा गई। सभी के मन में हाथी-सवार के दुर्भाग्य का चित्र अंकित हो उठा, अभी वह नीचे गिरेगा और हाथी का पाँव रूपी काल उसे सदा के लिये सुला देगा।

—"भैया!" विक्रम पागलों की भाँति चिल्लाता हुआ एक सैनिक के हाथ से भाला छीनकर हाथी की ओर लपका; दूसरे ही क्षण सम्राट् की बौखलाई सी आवाज सभी ने सुनी—"बसंत खाँ, शाही पीलवान को फौरन बुलाओ।"

सामने ताण्डव नृत्य करती हुई मृत्यु से दृष्टि चुराकर हनीफ हाथी के गले में बंधी हुई घण्टा की रस्सी पकड़कर उसकी गरदन से चिपक गया था। किन्तु विक्रम की नसों में मानो बिजली दौड़ गई थी। इधर-से उधर उछलता हुआ वह निरन्तर हाथी की सूँड-पर भाले से वार किये जा रहा था। जीवन और मृत्यु के बीच संघर्ष करते हुए विक्रम को कुछ क्षण ही बीते थे कि उसे एक दूसरा भाला भी हाथी पर वार करता हुआ दिखाई दिया। दूसरे क्षण दूसरी दिशा में पैंतरा बदलते हुए विक्रम ने देखा कि वे जनरल थे।

स्वयं जनरल को हाथी से उलझता देकर अन्य सैनिकों एवं सैनिक अफसरों को भी अपना कर्त्तव्य याद आया, अनेकों ने भालों की नोंकों से हाथी को चारों ओर से घेर लिया। बहुत से हाथी को बैठाने के लिये चुमकार भरी बोलियाँ बोलने लगे। फलस्वरूप कुछ क्षण के संघर्ष एवं युक्तियों के बाद हाथी बैठ गया।

विक्रम ने झपटकर हनीफ को खींच लिया और हाँफता हुआ उसे बाँह का सहारा देकर एक ओर भीड़ को हटाता हुआ चल दिया। अभी दो कदम ही चला था कि हनीफ बोला—"अरे मुझे किस तरह पकड़कर चला रहा है, मुझे तो कहीं खरोंच भी नहीं लगी है। तू अपने आपको देखना सारा पसीने में नहा गया है—कहीं लगी तो नहीं।"

तभी किसी ने एक साथ दोनों के कंधों पर हाथ रक्खा, विक्रम ने मुड़कर देखा तो जनरल थे—"आओ।" उन्होंने कहा।

नौबतखाने के द्वार की सीढ़ियों पर सम्राट् तथा अन्य मुसाहिब उपस्थित थे।

—"शुक्र है अल्लाह पाक का, कहीं चोट तो नहीं लगी?" सम्राट् ने आगे बढ़कर हनीफ से पूछा।

—"जी आपकी दुआ से खरोंच भी नहीं लगी है।"

—"शाबाश विक्रमसिंह, सचमुच तुम काबिले कद्र इन्सान हो।

तुम्हारे गले में जादू है, तुम्हारी उँगलियाँ जब सितार के तारों से उलझती हैं तो दरबारे-मुगलिया की तवारीख के चमकते सितारे मियाँ तानसेन याद आ जाते हैं। तुम्हारे बाजुओं का जौहर आज हमने अपनी आँखों से देख लिया। जीते रहो, खुदा तुम्हें लम्बी उम्र दे।"

—"जिल्ले सुभहानी। नौजवान सूबेदार विक्रमसिंह को आप अपने हाथ से इनाम दीजिये। इस बहादुर ने आज वह काम किया है जो जंगे आजादी की तवारीख में सुनहरी हर्फों में दर्ज किया जायेगा।" जनरल ने सिफारिश की।

—"हमें बहुत खुशी होती अगर इस बहादुर को इनाम लेने की ख्वाहिश होती। आज तीसरे पहर हमने बहुत कोशिश की कि यह कोई इनाम हमसे माँगे—अब तुम ही इसे इनाम देना। आज इसने हमसे यही इनाम माँगा है कि यह तुम्हारी कमान में जंग में अपने जौहर दिखाये, हम हुक्म दे चुके हैं कि किले के लाहौरी दरवाजे पर कोई और सूबेदार गारद संभालेगा।"

—"*अगर हुजूर ने यह हुक्म न भी दिया होता तो मैं खुद हुजूर से* इस बहादुर नौजवान को माँग लेता। सच मानिये यह किले की चौकीदारी के लिये नहीं है।"

उधर शाही फीलवान आ चुका था, और फिरंगियों के बिगड़ैल हाथी के पाँवों में जंजीरें डलवा रहा था।

: १८ :

बैठक जब कुछ कदमों के ही फासले पर रह गई तो इनाफ ने फिर कहा—"तुझे जाने यहाँ कौनसे लड्डू खाने को मिलते हैं, भाई हमें तो

रोज-रोज आना अच्छा नहीं मालूम देता।"

—"देखो भैया हमें यह 'मन में आवे मूड़ हिलावे' वाली बात पसन्द नहीं है। हमारा काम इतना है कि आज जो इनाम मिला है वह भाभी को दे दें। तुम्हें नहीं जाना है। तो मत जाओ। वैसे हम सब जानते हैं।"

—"क्या जानता है ?"

—"भाभी को देखे बगैर तो चैन मिलता नहीं है, और हमारे सामने बातें बना रहे हो।"

—"चुप, देख बैठक खुली है। शायद अब्बा आ चुके हैं।"

उस्मान खाँ की बैठक में शमादान जल रहा था, और इधर-उधर बिस्तरा, पोटली वगैरा सफरी सामान बिखरा पड़ा था। बैठक में पहुँचकर एक ओर लुढ़कते हुए हनीफ ने कहा—"कम्बखत हाथी ने तो आज सारे पुर्जे ही ढीले कर दिये। तू जाकर अपनी भाभी से एक लोटा शरबत बनवा ला। अगर अब्बा हों तो आवाज मार लीजो—नहीं तो शरबत भी तूही ले आइयो ! क्या याद करेगा, और चल यहाँ से जल्दी, मुझे आज उसकी सूरत भी नहीं देखनी है।"

—"अरे रहने दो, बड़े देखें हैं।" दरवाजे की ओर बढ़ते हुए विक्रम ने कहा।

अन्दर रसोई में तनिक अँधेरा था। केवल एक दिया ही जल रहा था। रसोई के निकट पहुँचकर भी अपनी आदत के अनुसार चिल्लाते हुए उसने कहा—"यह खाना-वाना बनता रहेगा, बैठक से भैया ने हुक्म दिया है कि पहिले उनके लिये एक लोटा शरबत बना दो।"

"आती हूँ—क्यों गला फाड़कर चिल्ला रहे हो।" अन्दर शायद कोठे में से हसीना की आवाज आई।

विक्रम चौंका, तब यह रसोई में कौन है ? क्षण-भर बाद ही हसीना हाथ में जलता हुआ दिया लिये अन्दर से बाहर आई।

विक्रम लपककर हसीना के निकट पहुँचा—"अरे भाभी यह रसोई में कौन है ? मैं तो समझा था कि तुम हो।"

"मेरी बहिन है।"

"तुम्हारी बहन, यह तुम्हारी बहन कहाँ से आ गई, आज से पहले तो तुमने कभी इसके बारे में बताया नहीं था ?"

"सब बातें बताने की नहीं हुआ करतीं, आओ तुम्हें दिखाऊँ। चिराग लेकर ढूँढ़ोगे तो भी ऐसी खूबसूरत लड़की नहीं मिलेगी।"

"माना कि नहीं मिलेगी, लेकिन मुझे तो ढूँढ़ने की जरूरत नहीं है।"

"अरे पहले देखो तो।" विक्रम की बाँह पकड़कर रसोई की ओर खींचते हुए हसीना ने कहा—"आँखें निहाल हो जायेंगी छोटे मियाँ ! जरा देखो तो।"

रसोई के अन्दर जाकर हसीना दिया अपरिचित लड़की के चेहरे के निकट लेजाकर मुस्कराई—"क्यों आँखें चौंधिया गईं ना ?"

लड़की सचमुच सुन्दर थी। एकदम गोरा-चिट्टा रंग, बड़ी-बड़ी आँखें, लम्बी नाक और भरा हुआ बदन।

"हाँ-हाँ बस देखली तुम्हारी बहन, भैया ने हुक्म दिया है कि फौरन एक लोटा शरबत बना दो।"

बात अनसुनी करके हसीना बाहर आ गई और एक कोने में विक्रम को लेजाकर धीमे स्वर में बोली—"कहो लड़की कैसी है ?"

"अच्छी है बाबा, शरबत बना दो जल्दी से।"

"बन जायेगा शरबत भी, यह ठाकुर जीतसिंह की बेटी है। एक तो बल्लभगढ़ में लड़ाई चल रही है—दूसरे इस बेचारी का कोई नजदीकी रिश्तेदार था भी नहीं। अब्बा इसे अपने साथ ही ले आये हैं।"

"बड़ा अच्छा किया उन्होंने, देखो भैया थके-माँदे आये हैं—जल्दी

से शरबत बना दो। बातें बाद में होंगी।"

"केसर......ओ केसर।" हसीना ने वहीं से पुकारा।

"हाँ जीजी।" रसोई से उत्तर आया।

"मटके में से बताशे निकालकर तीन-चार लोटे शरबत बना ले बीबी।" हसीना फिर बोली—"जानते हो आते ही अब्बा से झगड़ा हुआ। बेचारी गाड़ी से उतरकर घर में आकर बैठी ही थी कि अब्बा लगे कहने 'चल बीबो तुझे लाला लछमन के यहाँ छोड़ आऊँ—रोज वहाँ आकर तुझे देख आया करूँगा।' ईमान से मुझे तो लड़की एक ही नजर में भा गई। बस मैं उलझ ही तो पड़ी अब्बा से, मैंने साफ कह दिया कि मैं लड़की को पराये घर नहीं भेजूंगी। क्यों ठीक किया ना?"

"बहुत ठीक किया।" विक्रम ने उत्तर दिया।

"अब्बा लगे कहने 'बावली वहाँ से तो मजबूरी में लाना पड़ा है। सभी तरह के आदमी हैं इस जहान में। ब्याह के वक्त अगर किसी ने यह कहा कि लड़की का मुसलमान के घर में खाना-पीना रहा है, तो क्या जवाब देगी?' मैंने भी कह दिया अब्बा से कि मैं ठेंगे पर मारती हूँ ऐसे जवाब-सवालों को।"

"अच्छा।" कृत्रिम आश्चर्य प्रकट करते हुए विक्रम ने कहा।

"कुछ मत पूछो, खूब झक-झक हुई अब्बा से, उनके सिर पर तो सफर की गरमी सवार थी ही, और मैंने भी कोई कसूर तो किया नहीं था, जो चुप रहती। खूब झड़प होती रही अब्बा से, आखिर में उनका नौशा बाबा के घर से बुलावा आया। तब मैंने उनसे मतलब की बात कही। मैंने कहा, अब्बा मियाँ क्यूँ फिकर से दुबले हुए जा रहे हो। अरे यह तो मुझे खुदा के यहाँ से मन माँगी मुराद मिली है, यह हमेशा मेरे साथ मेरे ही घर में रहेगी—मुझे तो तलाश थी ऐसी लड़क की जिसे अपनी देवरानी बना सकूँ।"

विक्रम आश्चर्य से आँखें फाड़े हसीना की ओर देखता रहा, वह

अपनी धुन में कहे जा रही थी—"बस इतना सुनना था कि अब्बा सन्न रह गये। चुपचाप कान दबाकर जाने लगे यहाँ से, तब मैंने कहा—'अब्बा जान नौशा बाबा से फारिग होकर जरा किसी पण्डित से शादी की तारीख निकलवा लाना। इस घर में एक बेटी का निकाह किया है, अब दूसरी का ब्याह भी करदो जल्दी से······'।"

"जीजी, शरबत !"

हाथ में लोटा, लहँगा पहने, ओढ़नी में लिपटी केसर तनिक लजाती हुई हसीना के निकट आकर बोली। हसीना द्वारा खड़े किये गये नये बवण्डर की नायिका को मन्दिम से प्रकाश में एक नजर फिर विक्रम ने देखा।

हसीना ने एक बार दृष्टि चुराकर विक्रम को निहारा, फिर केसर से बोली—"बैठकखाने में तेरे जीजा साहब बैठे हैं, यह लोटा उन्हें दे आ······। अरी जा, मरी आज की दुनिया में शरमाने से काम नहीं चला करता, जा मेरी अच्छी बहिन।"

केसर दो कदम ही चली थी कि एक हाथ में दो गठरी और दूसरे में बिस्तर उठाये हनीफ आता हुआ दिखाई दिया, सब वस्तुएँ चौक में ही पटकते हुए उसने कहा—"ओ भले आदमी तुझे यहाँ गप-शप करने भेजा था क्या ?"

केसर चुपचाप हनीफ के हाथ में लोटा थमाकर भाग गई—"अरे यह लड़की कौन है ?" विक्रम और हसीना की ओर बढ़ते हुए उसने पूछा।

"यह मेरी देवरानी है।" आँखें मटकाते हुए हसीना ने उत्तर दिया—"खुदा ने घर बैठे ही भेज दी।" और फिर तनिक धीमे स्वर ने उसने केसर का परिचय दुहरा दिया।

बात हनीफ ने काफी गम्भीर होकर कही—"तुम बच्ची नहीं हो हसीना ! बात जरा सोच-समझकर कहा करो। पराई बेटी के बारे में जरा

जबान को लगाम देकर बात करनी चाहिये।"

किन्तु हसीना को लगा मानो पति ने बात कहने की बजाय ईंट मारी हो। एक बारगी वह तड़प-सी गयी। किन्तु दूसरे ही क्षण उसने ईंट का जवाब पत्थर जैसी बात कहकर दिया—"देखोजी, अगर लड़ने आये हो तो वैसे बता दो। अभी पूरे एक पहर अब्बा से झक-झक हो के चुकी है, और अब नवाब साहब चले आये हैं। जनाब आपका क्या है, सुबह हुई कि लड़ाई लड़ने चले गये; शाम को यार दोस्तों से गप-शप की और सो गये, और यहाँ सारा दिन अकेले बैठे-बैठे जी उकता जाता है। पहाड़-सा दिन काटे नहीं कटता……।"

"और रात!" विक्रम ने फुलझड़ी छोड़ी।

हसीना तनिक लजाती हुई बोली—"छोटे बड़ों की बातों में नहीं बोला करते।"

—"तुमसे पूरे दो हाथ ऊँचा हूँ, छोटा कैसे हुआ?"

"जबान खूब चलने लगी है। तुम्हारी।" मुस्कराहट दबाते हुए हसीना बोली—"तुम्हारी ही नहीं तुम्हारे भैया की भी बड़ी हूँ। देख लो डाँट सुनते ही लोटा हाथ ही में रह गया, शरबत पीजिये।" अंत में होठों पर मुस्कान आ ही गई।

—"यह शरबत काफी नहीं होगा।"

—"पियो तो, केसर और ला रही होगी, कई लोटे बनवाया है।"

—"कई लोटे भी काफी नहीं होगा। अब्बा ने हुक्म दिया है कि पूरा घड़ा भर के शरबत बनाया जाय। बैठक में पूरी मजलिस जमा है।"

—"यह अब्बा भी बस अल्लाह बख्शे इन्हें, आये देर नहीं हुई और निगोड़ी मजलिस भी जमा ली।"

—"आने वालों में खास मेहमान हमारे जनरल बख्तखाँ भी हैं। शरबत जल्दी बना दो।"

हनीफ द्वारा जनरल के आगमन का समाचार पाकर विक्रम बिना कुछ

कहे-सुने बैठक की ओर लपका, किन्तु तभी हसीना ने डाँटा—"तुम कहाँ भागे, ठहरो शरबत का घड़ा लेकर जाना।" फिर हनीफ से उसने कहा—"लाओ लोटा, तुम चलकर बैठक में बैठो। शरबत का घड़ा यह लेकर आते हैं।"

विक्रम की सूरत इस समय दर्शनीय थी। हसीना जब अकेली थी, तब ये हँसी-मजाक की बात और थी। किन्तु अब एक अजनबी कुँवारी स्त्री के सम्मुख...... । शर्म से हनीफ की दृष्टि ऊपर नहीं उठ पा रही थी। हनीफ सीधे स्वभाव से बैठक में चला गया। किन्तु हसीना रसोई के बाहर विक्रम के निकट ही खड़ी रही, वहीं खड़े-खड़े उसने केसर को आदेश दे दिया—"बीबी री, वह सामने वाला घड़ा सुबह का भरा हुआ है। थोड़ा-सा पानी निकालकर इस नई गोल में से बताशे डाल दे।" इतना कहकर वह फिर विक्रम से कहने लगी—"बस मैंने तो सोच लिया है कि रसोई से बाहर ही रहा करूँगी। रसोई का सारा काम केसर ही किया करेगी। फिर देखती हूँ कि तुम्हारे बरहमन लोग क्या कहते हैं ? और...... ।"

—"अरे हाँ भाभी, यह तो मैं भूल ही गया था।" केवल बात का रुख बदलने के इरादे से, विक्रम ने अँगरखे में से चम्पाकली निकालकर हसीना की ओर बढ़ा दी—"आज बादशाह और बेगम ने गाना सुना था, लाख मना करने पर भी बेगम साहिबा ने यह इनाम में दे ही दी।"

—"सुभान अल्लाह !" चम्पाकली को तनिक हाथ बढ़ाकर रसोई के दिये के प्रकाश में निहारते हुए बोली—"जड़ाऊ चम्पाकली, देखा मेरी बहन की किस्मत कितनी तेज है—बस अब इसी हफ्ते ...... ।"

—"भाभी भगवान् के लिये यह बात अभी मत उठाओ। देखो, मेरी माँ, बहिन और भाभी सभी कुछ तुम हो। जैसा तुम चाहोगी, वैसा ही होगा। लेकिन जब तक जंग चलती रहे तब तक जरा खामोश रहो।"

—"जीजी बताशे डाल दिये।" दबे हुए स्वर में केसर ने अन्दर से कहा।

—"हाँ-हाँ, जरा घुलने दे उन्हें। क्यों जी शहजादे, मैं तुमसे एक

बात पूछती हूँ। खुदा न करे, अगर जंग दस साल चलती रही तो क्या बेचारी लड़की दस साल कुँवारी बैठी रहेगी ?"

—"कौन कहता है कि बैठी रहे, सिपाही से ब्याह करने को क्या हकीम जी ने कहा है ··· ··· ?"

हसीना ने विक्रम के मुँह पर हाथ रख दिया। उसकी छलछलाती आँखों को तो विक्रम अन्धकार के कारण नहीं देख सका, किन्तु उसका रुआँसा स्वर उसने अवश्य सुना—"करोगे तो वही जो तुम्हारे मन में होगा, लेकिन खुदा के वास्ते मेरे सामने तो ऐसी बात मत करो। ले जाओ घड़ा उठाकर, कटोरे भी वहीं पड़े हैं।"

इतना कहकर हसीना अन्दर दालान की ओर भागी, किन्तु दालान में पहुँचने से पहले ही विक्रम ने आगे बढ़कर उसका मार्ग रोक दिया।

—"बस नाराज हो गईं। तुम चाहे कुछ भी कह दो और अगर मेरे मुँह से एक बात भी निकल जाये तो मुँह फुला लेती हो, देखो भैया की कसम खाकर कहता हूँ कि जो तुम चाहोगी वही होगा। एक-दो महीने में लड़ाई खतम हो जायेगी तब ब्याह भी कर देना।"

किन्तु हसीना ने केवल इतना ही कहा—"घड़ा उठाकर ले जाओ, मुझे अन्दर जाने दो।"

—"न जाऊँगा, न जाने दूँगा। तुम्हें भी कसम है, आज ही, इसी वक्त—अभी पण्डित को बुलाकर शादी न रचाओ तो।"

बरबस हसीना की हँसी फूट पड़ी। विक्रम का हाथ पकड़कर खींचते हुए वह बोली—"चलो पहले मेहमानों को शरबत पिला आओ—तब तक खाना बन जायेगा।"

रूठी हुई भाभी को मनाकर जब विक्रम कंधे पर घड़ा भर शरबत और हाथ में चाँदी के कटोरे लेकर बैठक के दरवाजे पर पहुँचा, तो देखा कि बैठक आदमियों से ठसाठस भरी हुई है। जाने किस बात पर इतनी जोर से कहकहे लग रहे थे कि कई राहगीर भी बैठक के दरवाजे पर खड़े

आश्चर्य से बैठक में बैठे व्यक्तियों को देख रहे थे। जनरल, नौशामियाँ, लाला लक्ष्मणदास, उस्मान खाँ, हनीफ तथा अन्य मुहल्ले के व्यक्ति सभी इस हँसी में सम्मिलित थे।

कुछ समय बाद जब हँसी का दौर रुका तो विक्रम शरबत लाने की सूचना देने की सोच ही रहा था कि एक साँवला-सा युवक जिसके चेहरे पर हल्की-सी दाढ़ी थी, बदन पर राजसी परिधान धारण किये आम राह पर खड़ा-खड़ा ही बोला—"बाबा साहब आदाब अर्ज करता हूँ।"

—"अरे मिर्जा बेटे आओ।" नौशामियाँ सिर उठाकर युवक को पहचानते हुए बोले—"आओ।"

बैठक में चढ़कर युवक ने पहले जनरल से, फिर लाला लक्ष्मनदास तथा उस्मान खाँ से बाअदब सलाम करते हुए नौशामियाँ के निकट आसन ग्रहण करके कहा—"आप ही को आदाब बजाने आया था बाबा साहब, दरअसल बात यह है कि आज एक शैर कहा है। आप कहेंगे कि इसमें परेशानी की क्या बात है ? गुस्ताखी कर बैठा हूँ, शैर आपके रंग में है, सोचा जाकर आपसे अर्ज करूँ। इसलाह मिलेगी, शायद कुछ जमाव, आ जाये। वरना मुझ नाचीज की गुफ्तार में क्या रक्खा है।"

"सरे-महफिल में इरशाद हो बेटे, अरे हाँ बख्तखाँ साहब आप हैं मिर्जा नवाबखाँ, तखल्लुस है 'दाग'। खुदा इन्हें उम्र बख्शे अभी से लाजवाब सुखनवर हैं।"

आदाब अर्ज करता हूँ जनरल साहब, कल दीवाने-खास में आपको देखा था। शैर की दो सतरें वहीं दिमाग में आई थीं, बाकी दो सतरें आज हुजूर बाबा साहब (अर्थात सम्राट्) को इबारत-गाह में देखने के बाद बनीं।"

—"इरशाद फरमाइये।" जनरल ने मुस्कराकर कहा।

—"हाँ-हाँ बेटे!" नौशामियाँ ने स्नेह से दाग की कमर थपथपाई।

—"अर्ज किया है :—

दुश्मन के आगे सर न झुकेगा किसी तरह...... ।"

—"वाह बहुत अच्छे।" नौशामियाँ ने स्वयं शैर की पहली पंक्ति को दुहराते हुए कहा।"

दाग सुना रहे थे :—

दुश्मन के आगे सर न झुकेगा किसी तरह,
यह आसमाँ जमीं से मिलाया न जायगा।
ऐ 'दाग' तुझको रिज्क की ख्वाहिश है चर्ख से,
इतना यह गम खिलायेगा, खाया न जायगा॥

—"वाह! लाजवाब शैर है।" एक स्वर में सभी ने मिर्जा दाग को सराहा।

विक्रम ने हनीफ को घड़ा थमाकर उसमें से एक कटोरा शरबत भरा और आदमियों के बीच होते हुए आगे बढ़कर जनरल के सामने बढ़ा दिया।

—"सुभान अल्लाह तुम भी यहीं मौजूद हो।" शरबत का कटोरा अपने हाथ में लेकर मिर्जा दाग की ओर बढ़ाते हुए जनरल ने कहा—"बुजुर्गों और दोस्तो, यूँ तो आम शहरियों की नजरों में हम फौजी गँवार और जाहिल ही होते हैं, लेकिन महफिल मे दरख्वास्त है कि अब हमारे नौजवान सूबेदार विक्रमसिंह के गले का जौहर भी देखें।"

विक्रम चाहता था कि चुपचाप लौट जाये। किन्तु जनरल ने जबरन उसे अपने पास बैठा लिया।

—"उस्मान खाँ साहब, साज मुहैया करने की तकलीफ करनी होगी।" जनरल, ने कहा।

उस्मान खाँ मुस्कराये—"सभी साज हाजिर हैं खाँ साहब!"

बैठक के अन्दर वाले दरवाजे के पर्दे के पीछे, दीवार से सटी हसीना जाने कब से आ खड़ी हुई थी, बैठक की बातचीत सुनकर वो रसोई की ओर भागी गई और उन्मादिनी की भाँति केसर को हृदय से लगाकर बोली—"अपने दुल्हे का गाना सुनेगी?"

: १६ :

सामरिक दृष्टि से अति उत्तम स्थान देहली के पश्चिम में स्थित अंग्रेजों की फौजी छावनी बीच पहाड़ियों में थी। चारों ओर फैली पर्वत माला उनकी मजबूत दीवार की तरह रक्षा करती थी। किन्तु जनरल बख्त खाँ के दैनिक तूफानी हमलों से अब छावनी कुछ अव्यवस्थित-सी हो गई थी।

स्वयं अंग्रेजी सेना के अफसरों की राय थी कि वह अब अधिक इस स्थान पर नहीं जम सकेंगे।

किन्तु भारतीय जनता का भाग्य तो पंजाब और काश्मीर की रियासतों के राजाओं के हाथों फूटना था! पटियाला, फीरोजपुर और काश्मीर आदि प्रमुख रियासतों से निरन्तर सैनिक, सैनिक-सामग्री तथा रसद दिल्ली की गोरी फौजों को मिल रही थी। खाद्य-सामग्री गोरों के काम आती और देशी सैनिक जनरल बख्त खाँ के निशानों का शिकार बनते।

इतना सब होने के बावजूद अंग्रेजी सेना में गहरी निराशा थी। जनरल एनसन के बाद अंग्रेजी सेना के दूसरे जनरल बरनार्ड भी हैजे के प्रकोप से मर गये। उनके स्थान पर तीसरे जनरल रीड नियुक्त हुए, किन्तु जनरल बख्त खाँ के तूफानी आक्रमणों से वह भी इतने भयभीत हो गये कि त्यागपत्र देकर चले गये। उनके स्थान पर जनरल विलसन नियुक्त हुए। यह भी लिख देना आवश्यक है कि इस समय अंग्रेजी सेना केवल देहली के पश्चिम में थी, शेष तीनों दिशाओं के मार्ग क्रान्ति के सहायक और शुभ चिन्तकों के लिये खुले हुए थे। अंग्रेजी सेनानायकों में जनरल बख्त-खाँ का आतंक बुरी तरह छाया हुआ था—आम तौर से अंग्रेज फौजी विशेषज्ञ गम्भीरता पूर्वक यह सोच रहे थे कि फिलहाल देहली-विजय का स्वप्न देखना छोड़ देना चाहिये।

फौजी छावनी में घिरा हुआ विक्टर इस वातावरण से ऊब चुका था। लिखने बैठता तो लिखने में मन नहीं लगा पाता। मजबूरन घायलों के सिरहाने बैठकर दिन बिता देता था।

कल शाम लैफ्टिनेण्ट ब्रिस्टी युद्ध में घायल होकर लौटे। चोटें काफी थीं—अलबत्ता चिन्ताजनक नहीं थी। डाक्टर की राय थी कि लगभग दो सप्ताह लेटे रहना होगा और फिर से युद्ध पर जाने योग्य होने में शायद एक मास लग जाये।

आज सुबह उठकर विक्टर ने जान-बूझकर घायलों के कैम्प में देर से जाने का निश्चय किया। इसलिये कि कहीं अन्य अफसर अथवा डाक्टर यह न समझ बैठें कि अपने दामाद की चोट से वह अधिक चिन्तित है।

आसमान में आज घने बादल छाये हुए थे। फलस्वरूप तेज और झुलसा देने वाली धूप से साक्षात् होने की संभावना आज कम थी। अपने डेरे से बाहर निकलकर विक्टर ने एक कामचलाऊ साधारण-सी कुर्सी पर आसन जमाया। पहले लिखने में मन लगाने का प्रयत्न किया। किन्तु प्रयत्न असफल रहा, मजबूर होकर वह डेरे में जाकर एक पुस्तक उठा लाया। और कई बार पढ़ी हुई पुस्तक को फिर पढ़ने लगा।

—"सलाम चाचा!" कोचवान टोनी दूर झाड़ियों में से पुकारता हुआ आया—"तुम मेरे घोड़ों को आलसी और निकम्मा बनाकर छोड़ोगे!"

विक्टर मुस्कराया—"बेटे वह तो जन्मजात निकम्मे हैं।"

—"चाचा!" नवयुवक टोनी शैतान बच्चे की तरह चीख कर बोला—"तुम मेरे प्यारे बच्चों के प्रति अन्याय नहीं कर सकोगे। भला किस आधार पर कहते हो कि मेरे घोड़े निकम्मे हैं?"

टोनी की स्थिति सामान्य सैनिक की-सी थी। किन्तु सेना के सैनिकों, अफसरों सभी को आश्चर्य था कि विक्टर और टोनी के आपसी सम्बन्ध ऐसे थे जैसे कि उद्दण्ड भतीजे और वात्सल्य स्नेह से पूर्ण चाचा के होते हैं। बाकी सब आम सैनिक से जनरल तक विक्टर का एक पत्रकार एवं विद्वान् के रूप में आदर करते थे।

—"मुस्करा देने से काम नहीं चलेगा चाचा, आपको मेरी बात का

उत्तर देना होगा।" टोनी ने फिर कहा।

—"भले आदमी!" पुस्तक एक ओर रखते हुए विक्टर ने कहा—"यह भी भला कोई बताने की बात है। देखो तो दिन कितना चढ़ आया है। अगर तुम्हारे घोड़ों में लेश-मात्र भी किसी अच्छी नस्ल का रक्त होता तो उन्हें अब तक करनाल में होना चाहिये था।"

—"तुम करनाल की बात कहते हो। वह अब तक अम्बाला पहुँच गये होते, परन्तु यह विक्टर चाचा का दोष है।"

—"ओह, तो क्या विक्टर चाचा को घोड़ों के लिये घास काटकर लानी थी?"

—"घास काटकर लाना आसान काम नहीं है चाचा, तुम्हें केवल जनरल के कैम्प तक जाकर लैफ्टिनेण्ट ब्रिस्ट्री के बारे में बताना चाहिये। जिन घायलों के बीवी-बच्चे करनाल या अम्बाला में है और जिन घायलों को सफर करने की आज्ञा डाक्टर दे सकते हैं उनके बारे में जनरल विचार कर रहे हैं कि उन्हें उनकी बीवियों और बच्चों के पास भेज दिया जाय। किन्तु लैफ्टिनेण्ट को वह तुरन्त भेज सकते हैं। अगर आप जनरल से सिफारिश करें तो मैं समझता हूँ चाचा तुम्हें जनरल से सिफारिश करके लैफ्टिनेण्ट को भिजवा देना चाहिये। बेचारी मेरिया अकेली घबराती होगी।...... और हाँ। आज मेरी गाड़ी भी कतई खाली है। बस छै फौजी लिफाफे करनाल पहुँचाकर आने हैं, यह रहे मेरी जेब में हैं।"

उठते हुए विक्टर ने गम्भीर स्वर में पूछा—"बस यही कारण है तुम्हारी गाड़ी के रुके रहने का?"

टोनी बालक की तरह मुस्करा दिया।

—"तुम मूर्ख हो टोनी।" मन-ही-मन कुछ सोचते हुए विक्टर बड़बड़ाया।

—"असम्भव, मुझसे बढ़िया कोचवान लंदन में भी नहीं मिलेगा। मैं शर्त लगाकर कह सकता हूँ कि सारे सफर में लैफ्टिनेण्ट महसूस करेंगे

मानो वह आराम से बिस्तरे पर लेटे हैं।"

—"तुम देर मत करो, फौरन जाकर गाड़ी हाँक दो। मैं जनरल के पास जाकर कहे देता हूँ कि ब्रिस्टी नहीं जायेगा।"

—"क्यों ?"

—"इसलिये कि मैं इंग्लैण्ड का साधारण नागरिक हूँ, फौज के अन्दरूनी और बाहरी मामले में दखल नहीं दे सकता।"

—"चाचा तुम चाचा क्या हो अच्छे खासे वकील हो। जब जनरल चाहते हैं कि तुम उनसे कहो तो······ ?"

—"टोनी बेटे।" पुस्तक दूर से ही डेरे में फेंकते हुए विक्टर ने टोनी को ऐसे समझाना आरम्भ किया मानो किसी अबोध बच्चे को समझा रहा हो—"तुम बच्चे हो। जनरल मुझसे क्यों ब्रिस्टी के लिये सिफारिश कराना चाहते हैं यह भी एक रहस्यमयी बात है और तुम्हारे लिये उसका समझ पाना कठिन है। आओ चलें।"

इतना कहकर विक्टर सच मुच ही लम्बे-लम्बे डग रखता हुआ आगे बढ़ गया। उसके पीछे-पीछे दौड़ता हुआ टोनी बोला—"नहीं चाचा, मैं ऐसे मानने वाला नहीं हूँ। रहस्यमयी बात मुझे समझानी होगी!"

चलते-चलते विक्टर ने टोनी के कंधे पर हाथ रक्खा—"पहले के जनरलों और जनरल विलसन में बहुत अन्तर है टोनी, वह फौजी कमान के उच्च अधिकारियों का आदेश अक्षरशः मान लेना ही अपना सर्वोपरि कर्तव्य समझते थे। किन्तु जनरल विलसन अपना भविष्य इंगलैंड की राजनीति में भी बनाना चाहता है। कई बार उन्होंने निर्लज्ज होकर स्पष्ट शब्दों में अपनी मनोभावना व्यक्त की है। वह चाहता है कि यहाँ भारत में मुझे अपनी साधारण कृपाओं से कृतज्ञ कर दे, ताकि इंग्लेंड लौटकर मैं उसके व्यक्तित्व का, उसकी वीरता और साहस का, अपने लेखों और पुस्तकों में झूठा वर्णन करके अपने देश की जनता की आँखों में धूल झोंकू।···और इस मक्कार को राजनैतिक जीवन में लाने के लिये पृष्ठ-

भूमि तैयार करूँ । समझे ।"

टोनी ने दाँत निपोर दिये, जैसे उसने विक्टर की बात बड़े ध्यान से सुनी थी। किन्तु वह बेचारा सीधा-साधा किसान का बेटा था। शिक्षित इतना था कि नाम के अक्षरों को जोड़कर पढ़ लेने भर में भी उसे कई क्षण लग जाते थे। अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए उसने कहा—"तब ठीक है, अगर लैफ्टिनेण्ट की जनरल से सिफारिश करना नहीं है तो मत करो।......वैसे चाचा मैंने तुम्हारी बात बड़े ध्यान से सुनी है, लेकिन सारी बात का अर्थ समझ नहीं सका हूँ। शाम को जब डाक लेकर लौटूँगा तब इतमीनान से बैठकर तुमसे समझूँगा। तुम तो जानते ही हो मेरे पिता के पास बहुत कम जमीन थी, वह मुझे कस्बे के स्कूल में पढ़ने नहीं भेज सकते थे। इसका अर्थ यह नहीं है कि मुझमें पढ़ने का चाव नहीं था! मैं हर समय पढ़ाई की प्रथम पुस्तक अपनी जेब में रखता था। चाहे खेत हो अथवा पगडंडी, जहाँ भी कोई पढ़ा-लिखा मिला मैंने उसका सदैव उपयोग किया, प्रत्येक रविवार को मैं गाँव के गिरजे के पादरी के घर छोटा-मोटा उपहार लेकर पहुँचा करता था और सप्ताह-भर में जितना सीखता था सब उन्हें सुना देता था।"

विक्टर हँसा—"और इतना सब करने के बाद भी तुम एक के बाद दूसरी पुस्तक नहीं पढ़ सके?"

टोनी लजा गया—"अब पढ़ने में शर्म लगती है चाचा!"

इस प्रकार बातें करते हुए दोनों जनरल के कैम्प के निकट पहुँच गये। अचानक विक्टर का हाथ पकड़कर रोकते हुए टोनी ने कहा—"ठहरो चाचा, तुमसे एक आवश्यक बात और कहनी है।"

—"कहो।"

टोनी विक्टर का हाथ पकड़े आम रास्ते से जरा हटकर एक ओर खड़ा हो गया—"यह सब अच्छा नहीं लगता चाचा, जनरल से कहियेगा

कि लाशें दफनाने का हुक्म दे दें।"

—"लाशें कैसी लाशें ?"

—"एक भिश्ती और एक बावर्ची की दो लाशें, वो सामने जहाँ चीलें मँडरा रहीं हैं, पड़ी हैं। बरसात का मौसम है, सूखने में एक सप्ताह से अधिक लग जायेगा। ठीक यही रहेगा कि उन्हें दफना दिया जाय।"

—"अरे······।" विक्टर स्तंभित रह गया—"बात क्या हुई, कैसे मरे यह दोनों ?"

—"धीरे बोलो चाचा ! दरअसल बात यह हुई कि कल की लड़ाई में हमारी फौज के बहुत-से सैनिक मारे गये हैं। कल की लड़ाई बहुत ही भयंकर लड़ाई थी। साँझ हुए जासूसों ने खबर दी कि आज हिन्दुस्तानी फौजों ने प्लासी की लड़ाई की शताब्दी मनाई थी। उनमें इतना जोश था कि हमारी सेना के मैदान में पहुँचने से पहले ही पैर उखड़ गये। गनीमत हुई कि ठीक उसी समय पंजाब रेजीमेंट के देशी सिपाहियों ने पहुँचकर तीसरे पहर तक मैदान सँभाले रक्खा। हाँ तो रेजीमेंट के पियक्कड़ अफसरों को तो तुम जानते ही हो। उन्होंने मैदान से लौटकर अन्धाधुन्ध पी और फिर बेचारे इन दो हिन्दुस्तानियों को तलवार से छेद-छेदकर मार दिया, हैरत इस बात की है और भी सैकड़ों सिपाही यह सब तमाशा समझकर देखते रहे।"

विक्टर की नसों में मानो आग दौड़ गई। टोनी से हाथ छुड़ाकर वह जनरल के कैम्प की ओर लपका। कैम्प के द्वारपाल सैनिक से हाँफते हुए उसने कहा—"जनरल को सूचना दो कि विक्टर आया है।"

द्वारपाल अन्दर जाने को मुड़ा ही था कि अन्दर आवाज आई—"आइये मिस्टर विक्टर !"

उसके नथुने क्रोध से फूल रहे थे। साँस तेज चल रही थी। कैम्प के द्वार के निकट जनरल विलसन ने हाथ मिलाते हुए मन-ही-मन अनुभव किया कि सम्भवतः वह अपने दामाद की सिफारिश के लिये समाचार पाते

ही दौड़ता हुआ आया है।

अत्यन्त ही विनम्र होकर जनरल विलसन ने उसे बैठने का संकेत करते हुए कहा—"आपने व्यर्थ ही कष्ट किया मिस्टर विक्टर, मैं लैफ्टिनेण्ट ब्रिस्टी को उनकी श्रीमती के पास भेजने का आदेश दे चुका हूँ। उनके घायल होने से विश्वास कीजिये कि मुझे अपार दुःख पहुँचा है।"

—"जनरल!" बैठने के आदेश की अवज्ञा करके खड़े-खड़े ही विक्टर ने अपनी बात कही—"आपका अनुमान सही नहीं है। लैफ्टिनेण्ट ब्रिस्टी अथवा किसी भी फौजी की सिफारिश करने मैं कभी भी आपके पास नहीं आऊँगा। यह ठीक है कि वह मेरे दामाद हैं, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उनके पाप-पुण्य की गठरी को मैं अपने सिर पर लादे फिरता हूँ।"

जनरल विल्सन अवाक् रह गये। विक्टर की स्पष्टवादिता से वह परिचित थे, किन्तु इतने कडुवे उत्तर की उन्हें आशा नहीं थी।

विक्टर मानों क्षण-भर साँस लेने रुका था। उसने फिर कहना आरम्भ किया—"किन्तु झूठ नहीं बोलूँगा। आपको कष्ट देने के अभिप्राय से ही मैं यहाँ आया हूँ। अंग्रेज हूँ ना, यश की प्राप्ति का अवसर हमारी जाति नहीं छोड़ती, दुनिया-भर के धन पर कुण्डली मारकर बैठ जाने का अधिकार हमें ईश्वर से प्राप्त हुआ है। हमारे भयंकर-से-भयंकर क्रूरतापूर्ण पाप भी ईश्वर के न्यायालय में पुण्य ही लिखे जाते हैं। यह सब जानते हुए भी मेरी क्षुद्र बुद्धि यह नहीं मानती कि पापों के प्रदर्शन के बदले भी इस नश्वर संसार में हमें कीर्ति ही मिलेगी। केवल इतना निवेदन करना चाहता हूँ कि वह अभागे हिन्दुस्तानी जो कल शाम हमारे तलवारबाजी के तमाशे में मारे गये हैं—उन्हें केवल साधारण से गढ़े खुदवाकर दबवा दिया जाय।"

जनरल विलसन का चेहरा शर्म से झुक गया। उनके स्वर में रँगे हाथ पकड़े जाने वाले अपराधी की सी लड़खड़ाहट थी—"ओह हाँ सचमुच यह तो भूल ही गया था। मैं अभी आदेश देता हूँ। कल शाम

जब मुझे इस घटना का समाचार मिला तो मैंने बड़े दुःख के साथ यह सब सुना। वैसे आप मेरे बारे में गलत राय कायम न करें—मेरे अधि की भी एक सीमा है। इच्छा होते हुए भी मैं उन शराबियों को दण्ड नहीं दे सकता जिन्होंने नशे में यह पशुतापूर्ण कार्य किया है। यह ठीक है कि मैं उन्हें दण्ड दे सकता हूँ, किन्तु इसके परिणाम बुरे हो सकते हैं। परिस्थिति ऐसी है कि आम फौजियों में उत्तेजना व्याप्त हो सकती है।"

विक्टर को जो कुछ कहना था वह कह चुका था, जनरल विलसन नामक रँगे सियार को वह खूब समझता था।

: २० :

पूरा एक मास बीत गया। विक्रम हनीफ की ससुराल नहीं आया। यों पूरे मास में हनीफ भी वहाँ केवल दो बार गया था, किन्तु हसीना का गिला हनीफ से नहीं था, विक्रम से था।

केसर के आने से हसीना का जीवन कोलाहल पूर्ण हो गया था, सुबह केसर भोजन बनाती और हसीना घर बुहारकर कपड़े-लत्ते धो-सँवार देती। किन्तु दोपहर होते-होते सारा काम निपट जाता और फिर साँझ तक दोनों में खेल-कूद, लड़ाई-झगड़ा इत्यादि होता रहता। दिन में पचासों बार हसीना केसर को गले से लगाकर कहती—"किसी तरह बस एक बार देवर जी इस घर की चौखट के भीतर आ जायें, फिर तो लाडो को उनके पल्ले बाँधकर ही छोड़ूँगी। लेकिन केसर तेरे दूल्हे मियाँ हैं बहुत निर्मोही, बता तो चाँद-सी मँगेतर को एक के बाद दूसरी बार देखने भी नहीं आये।"

केसर और विक्रम का ब्याह, बारात और शहनाई—हसीना सोते जागते केवल यही सपना देखती थी।

युद्ध दिल्ली के द्वार पर खड़ा था। फिरंगी की तोपों के कितने ही गोले शहरपनाह की दीवार पार करके शहर में गिर चुके थे।

ऐसी दशा भारत के किसी अन्य शहर की होती तो नागरिकों की जिन्दगी दूभर हो चली होती। किन्तु इस शहर के लिए युद्ध एक परिचित व्यथा थी, नित नये परिवर्तन नागरिकों को विचलित करने में असमर्थ थे। निरन्तर पीड़ा और व्यथा झेलकर कठिनाइयों का मुँह चिढ़ाते रहना यहाँ के निवासियों की पीढ़ीगत परम्परा थी।

यह अतिशयोक्ति नहीं है। एक कठोर सत्य है। हजार दो हजार वर्ष पुरानी दिल्ली की परम्परा को छोड़िये, पिछली सदी पर ही दृष्टिपात कीजिये। नादिरशाह सन् १७३९ ई० में कत्ले-आम करके दिल्ली लूटकर चलता बना। अहमदशाह दुर्रानी ने १७४८ से १७६७ इस्वी तक दस धावे किये—इसी दौर में दक्षिण से मरहठों के आक्रमण भी होते रहे। दिल्ली के निवासियों की खून की नदियाँ बहती रहीं, किन्तु जो जीवित रहे वह विषम परिस्थितियों में जीना सीख गये। फिर अंग्रेज आये………। तात्पर्य यह कि हिन्दुओं तथा मुसलमानों में कोई जंगजू कौम ऐसी नहीं थी जिसके घोड़ों ने शहर के राज-मार्ग को अपने पाँवों से न रौंदा हो। दिल्ली के निवासी राज-मार्ग की रक्षा में अपना खून बहाते रहे और दाग़ों में मुस्कराते हुए जीना सीखते रहे।

प्रकट रूप में मुगल बादशाह इनके दुःख-सुख का साथी होता था। नागरिकों की भाँति ही वह भी आक्रमणकारियों द्वारा लुटता था और अपमानित होता था। फलस्वरूप दिल्ली का सुलतान और कथित भारत का मुगल बादशाह देहली के नागरिक जीवन की प्रमुख एवं सम्मानपूर्ण संज्ञा के रूप में वर्तमान पीढ़ी के हृदय में भी विद्यमान था।

—"डर मत री!" तोप के गोले का धमाका सुनकर हसीना केसर को गले लगाकर कहती—"खुदा बादशाह को उम्र दे, यह मुए फिरंगी मुँह की खायेंगे। इन बन्दरों की तोपें बस पटाखे छोड़ना ही जानती हैं।"

किन्तु परिस्थिति सचमुच विषम थी। यह बात केवल फौजी अफसर ही जानते थे। जनरल बख्त खाँ के विरुद्ध किले की चहार-दीवारी में भयानक षड्यन्त्र रचा जा रहा था। शहजादे जनरल से इसलिये नाराज थे कि उसने आते ही उनकी स्वेच्छाचारिता पर अंकुश लगा दिया, बड़ी बेगम के दिमाग में शहजादा जवाँबख्त के अतिरिक्त अगर कुछ था तो बस दण्ड-हीन सिंहासन।

शाही खानदान के जागीरदार, जो अपनी सेना लेकर लड़ने आये थे, अब युद्ध से उदासीन हो चले थे। प्रकट रूप में उन्होंने अपनी-अपनी टुकड़ियों को यह कहकर तितर-बितर कर दिया था कि जनरल-जैसे तुच्छ खानदान के व्यक्ति के नेतृत्व में लड़ना वह अपनी तौहीन समझते हैं। किन्तु वास्तविकता कुछ और थी—वह भी बेगम जीनत महल की भाँति ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हिन्दुस्तानी गुर्गों के दिखाये हुए सब्ज बाग से फलों और महकते फूलों की आशा कर रहे थे।

जनरल बख्त खाँ और उनके साथी, तथा मेरठ के फौजी लड़ना जानते थे। सैनिक कर्त्तव्य से वह भली-भाँति परिचित थे। किन्तु राजनीति की घिनौनी चालों से वह सर्वथा अपरिचित थे। कम्पनी-सरकार के खुले आम समर्थक मिर्जा इलाही बख्श सदा ही बेरोक-टोक किले में जाते रहे, और बेगम जीनत महल तथा अन्य शहजादों सहित जंगे-आजादी के सैनिकों के विरुद्ध षड्यन्त्र रचते रहे। सैनिक देखते और खून का घूँट पीकर चुप रह जाते। एक बार उन्होंने जीनत बेगम के महल में षड्यंत्र-कारियों को घेर भी लिया। तब सम्राट् ने अपनी इज्जत की दुहाई दी, और जनरल ने सम्राट् से प्रभावित आम जनता की प्रतिक्रिया के भय से सैनिकों को वहाँ से हट जाने का आदेश दिया। आजादी के दुश्मनों के लिए मैदान साफ हो गया। यह सब हो रहा था किन्तु जनरल ने अब इस गोरख-धन्धे को सुलझाना ही छोड़ दिया था। वह साँझ हुए युद्ध-स्थल से लौटते, औपचारिकता निभाने दीवाने-खास जाते। वहाँ से लौटकर देहली

के जिन्दादिल निवासियों के बीच कुछ घड़ी हँसते-बोलते और फिर आधी रात तक घायल सिपाहियों के बीच रहते। डेढ़ पहर के विश्राम के बाद प्रातः फिर रणभेरी बजती और दिल्ली के नागरिक देखते कि सेना के आगे-आगे जनता का अभिवादन स्वीकार करते हुए जनरल युद्ध-क्षेत्र में जा रहे हैं। हनीफ अब उनका विश्वास-पात्र सिपहसालार था। आठों प्रहर वह जनरल के साथ ही रहता था। विक्रम अनजाने ही जनरल का अंगरक्षक बन गया था, युद्ध-क्षेत्र में वह छाया की तरह उनके साथ लगा रहता था। किन्तु अब उसके मन में एक नई महत्त्वाकांक्षा के अंकुर पनप रहे थे। जैसे ही जनरल काश्मीरी दरवाजे से शहर में प्रवेश करते वह उनका साथ छोड़ देता और काले खाँ के साथ शहरपनाह की दीवार पर चढ़ जाता। वह गोलन्दाजी का अभ्यास करना चाहता था और अप्रकट रूप में काले खाँ भी उसे अपना प्रमुख सहयोगी समझने लगा था।

जनरल बख्त खाँ, हनीफ, विक्रम अपने-अपने कर्त्तव्य में मग्न थे। किन्तु हसीना······?"

यह ऋतु वर्षा की थी। भारतीय परम्परा के अनुसार विजय दशमी तक के लिये लड़कियाँ ससुराल से मैके आ जाती हैं। इस वर्ष अन्य वर्षों की भाँति मुहल्ले की सभी लड़कियाँ तो नहीं आ पाईं थीं फिर भी देहली के आस-पास ब्याही लड़कियाँ तो आ ही गई थीं।

उस्मान खाँ की बैठक का एक द्वार खुला था, शमादान भी जल रहा था। किन्तु उस्मान खाँ वहाँ उपस्थित नहीं थे। घर के अन्दर हसीना और केसर के अतिरिक्त और भी कई लड़कियाँ जमा थीं और चौक में आँख-मिचौनी का खेल चल रहा था।

कोने में छिपी हसीना को आँखों पर पट्टी बँधी एक लड़की ने टटोल लिया। बस फिर क्या था हसीना चीख-चीख कहने लगी—"एक के पीछे चोर!"

—"बेईमान कहीं की!" लड़की ने अपनी आँखों से पट्टी उतारते हुए

कहा—"बँधवा आँखें ।"

—"नहीं मैं नहीं बँधवाऊँगी।" आस-पास खड़ी लड़कियों में से एक के हाथ पकड़कर हसीना बोली—"त्रिवेणी कुतुब साहब वाले पण्डित जी की कसम खाकर कहा कि जुबैदा के कान में केसर ने मुझे पकड़ने के लिए कहा कि नहीं ?"

उत्तर दिया जुबैदा ने—"बन्नो यह बेईमानी हमारे सामने नहीं चलेगी।"

परिणाम स्वरूप अच्छी खासी चख-चख शुरू हो गई। इसी बीच उस्मान आ गये। एक कोने में खड़े-खड़े ही उन्होंने एक-दो बार पुकारा—"फातिमा······केसर······फातिमा···! सम्भवतः वह जल्दी में थे। कुछ क्षण बाद वह आगे बढ़े—"खुदा का कहर पड़े इन बेवकूफों पर क्या हाय-तोबा मचा रखी है। फातिमा······ओ !"

—"अब्बा !" पगली की भांति हसीना पिता से लिपटती हुई बोली—"खूब आये अब्बा, वरना यह सब तो मुझे मार ही डालतीं। अब्बा यह सब कह रहीं थीं कि आज तो सितार सुनेंगे। सुना दो ना अब्बा, यह बेचारी भला रोज-रोज सुनने थोड़े ही आयेंगी।"

—"शोर मत मचा बैठक में जनरल और लाला बैठे हैं। शरबत बना फुर्ती से—सुनेंगे तो क्या कहेंगे जनरल। सोचेंगे कि देहली की लड़कियाँ एकदम बे-अदब होती हैं। न तमीज न शऊर···। मैं चलता हूँ, जल्दी करियो बेटे, अभी जरा अंगूरी बाग तक जाना है।"

उस्मान आदेश देकर बैठक की ओर चले गये। केसर शरबत बनाने रसोई में चली गई। हसीना ने अचरज भरे स्वर में अपनी अपनी सहेलियों को सम्बोधित किया—"अरी तुमने जनरल देखे—अल्लाह कसम ऐसे गोले चलवाते हैं कि फिरंगियों का नाकों-दम आ गया है।"

बस फिर क्या था। सभी नई-नई बातें सुनाने लगीं। जनरल की लोकप्रियता पूरे शहर में फैल चुकी थी, और इस मुहल्ले में तो वह कई

बार आ चुके थे। सभी ने अपने पिता और भाइयों के मुँह से कुछ-न-कुछ सुन रक्खा था।

—"जीजी शरबत दे आओ !"

हसीना बातों में मग्न थी—"तू ही दे आ।" उसने कहा।

—"ना जीजी, मुझे डर लगता है।"

—"अरे वाह री चुहिया, मेरा ख्याल है तुझे सपने में भी बिलाव दिखाई देते होंगे।" उठते हुए हसीना ने कहा, और रसोई के निकट पहुँच कर फिर बोली—"क्यों री बस तीन ही गिलास ?"

—"तीन गिलास शरबत गिलासों में, और तीन लोटे में—मैं झाँककर देख आई हूँ पीने वाले ताऊजी समेत तीन आदमी हैं।"

"...और यहाँ सब जानवर हैं। चल और बना।" गिलास और लोटे को थाली में रखकर चलते हुए हसीना ने कहा—"ओ री जो जाय वो मेरा मरी का मुँह देखे। मैं अभी आई, आज आधी रात तक खेलेंगे।"

बैठक के दरवाजे पर हसीना ठिठकी, कुछ क्षण वह सोचती रही कि अन्दर जाये या नहीं।

तनिक धीमे स्वर से उसने आवाज दी—"अब्बा जी !"

उत्तर दिया लाला लछमणदास ने—"आ जा री, यहाँ तेरा दूल्हा थोड़ा ही बैठा है, जो ऐसी मरी आवाज में बोल रही है।"

मन-ही-मन हसीना मुस्कराई, किन्तु आगे कदम बढ़ाने का साहस वह अब भी नहीं बटोर सकी थी।

—"उस्मान यह लौंडिया बावली ही रही।" लाला कह रहे थे—"वैसे तो मुझसे भी चार अंगुल ऊँची उठ गई है, पर अकल के नाम पर पत्थर है। अरी आई कि नहीं......।"

दृष्टि नीचे जमीन में गड़ाये हसीना बैठक में खड़ी।

—"अरे वाह।" लाला कहे जा रहे थे—"ऐसी बनो बी है, जैसे कुछ जानती ही नहीं। दीवार-सी क्यों खड़ी है ? बैठ जा, सलाम कर अपने

चचा को !" जनरल बख्त खाँ की ओर संकेत करते उन्होंने कहा।

—"सलाम।" ज़मीन पर दृष्टि गड़ाये ही हसीना ने कहा।

—"जीती रहो।" जनरल बोले—"यह देखकर खुशी हुई कि हमारे सूबेदार को तुम्हारे-जैसी सलीकेदार बीवी मिली है।"

—"सलीकेदार।" लाला ठहाका मारकर हँसे—"मियाँ सलीके से तो इसकी पैदाइशी दुश्मनी है।"

—"नहीं चचा हमारी बेटी बहुत लायक है। लो बेटे!" एक मुहर निकालकर देते हुए जनरल बोले—"मिठाई के लिये।"

हसीना वैसे ही गुम-सुम बैठी रही। उस्मान बोले—"ले लो बेटा, तुम्हारे लिये जनरल मेरी जगह है।"

अचानक हसीना के मस्तिष्क में एक बात आई, 'आज जनरल सामने बैठे हैं—मनोकामना सिद्ध करने का इससे अच्छा अवसर नहीं मिलेगा।'

—"चचा साहब !" साहस बटोरकर वह बोली—"सोने-चाँदी का मैं क्या करूँगी। देना है तो इन्साफ दीजियें।"

सभी चौंके। क्षण-भर बाद जनरल बोले—"यह ले लो बेटी !"

हसीना ने हाथ बढ़ाकर मुहर ले ली। जनरल फिर बोले—"अब अपनी बात साफ-साफ बताओ। अगर जान-बूझकर हमने तुम्हारे या किसी और के साथ बे-इन्साफी की हो तो हम पर खुदा का कहर पड़े। अलबत्ता अगर अनजाने हमसे कोई गलती हुई होगी तो हम आइन्दा के लिये तौबा करेंगे।"

—"चचा हुजूर की फौज में एक सिपाही विक्रम सिंह है।"

—"हम जानते हैं विक्रम सिपाही नहीं सूबेदार है। हम यह भी जानते हैं कि वह हमारे दूसरे सूबेदार हनीफ का पगड़ी-बदल भाई है और इस रिश्ते से हमारी बेटी का वह देवर है।"

—"चचा हुजूर उसीकी जात की एक लड़की यहाँ मौजूद है। वक्त

था, जब वह बाप का इकलौती बेटी थी और भाई की आँखों का नूर थी। भाई फिरंगियों के हाथों मारा गया। बाप-बेटे के गम में दुनिया छोड़ गया। बेचारी लड़की अकेली रह गई। लड़की के बाप अब्बा जी के दोस्त थे और वह लड़की अब इसी घर में मौजूद है। आप चाहें तो उस बदनसीब की जिन्दगी सुधर सकती है। विक्रमसिंह आपका हुक्म नहीं टाल सकता, वह बदनसीब आपसे इन्साफ चाहती है। अगर आप हुक्म दे दें तो उस यतीम का गम हल्का हो जाये।''

उस्मान कुछ कहना चाहते थे कि जनरल उन्हें चुप रहने का संकेत करते हुए बोले—''चचा-बेटी की बात में आप मत बोलिये उस्मान साहब। हाँ बेटी, तो क्या उसने शादी करने से इंकार कर दिया। हनीफ तो कहता था कि विक्रम दुनिया में सिर्फ दो इन्सानों का हुक्म नहीं टालता, एक मेरा और दूसरा तुम्हारा ?''

''दर असल उसे जिद है कि लड़ाई खत्म होने के बाद शादी करेगा।''

''......और तुझे जिद है कि उसकी शादी चलती लड़ाई में हो हो।'' लाला लछमनदास बोले—''काम ना काज, बैठी-बिठाई को बस ब्याह-शादी ही सूझते हैं। जा भाग फुरसत में देखा जायगा।''

किन्तु हसीना हाथ से आया अवसर जाने देना नहीं चाहती थी। विनम्र होकर बोली—''बाबाजी आप तो बस खफा होना जानते हैं। आप ही के फायदे की तो कहती हूँ। बेचारी बिना माँ-बाप की लड़की है—जितनी जल्दी हाथ पीले हो जायें उतना ही अच्छा है।''

''हुँ ! तू तो बाबा की भी दादी बनती जा रही है। उस्मान यह लौंडिया है बावली ही। लाडो मेरी, उसके माँ-बाप ही तो मरे हैं। हम तो जिन्दा हैं ना—जा ढूँढ़ ला जितनी बिन माँ-बाप की लड़की हों। सबका एक साथ ही ब्याह कर देंगे।''

''लेकिन चचा साहब, अगर शादी हो ही जाय तो क्या नुकसान

है। लड़ाई की वजह से ब्याह-शादी बन्द तो हैं नहीं, इन्शा अल्लाह रोज ही दिल्ली में नगाड़ों के साथ-साथ शहनाइयाँ भी बजती हैं।"

"बख्त खाँ, बेटे हमारा तजुरबा यह है कि जिद पूरी करने से बच्चे बिगड़ जाते हैं।"

लाला लछमनदास की बात पर जनरल और उस्मान खाँ दोनों ही खिलखिलाकर हँस पड़े। अब की बार उस्मान खाँ बोले—"शरबत पीजिये! लड़की की बात का खयाल न कीजियेगा, दरअसल इसकी माँ बचपन ही में मर गई थी। अकेली औलाद होने की वजह से मैंने भी इसे ज्यादह डाटना-फटकारना मुनासिब नहीं समझा। नतीजा यह हुआ है कि जरूरत से ज्यादह शोख और जिद्दी बन गई है। जा फातिमा, इन्हें बहुत काम रहते हैं। ऐसी छोटी बातों के लिये इन्हें परेशान करना मुनासिब नहीं है।"

"ठहरो बेटे!" जनरल ने उठती हुई हसीना से कहा

"तुमने हमसे पहली बार जिद की है, इसलिये हम इस जिद को पूरा करने का वायदा करते हैं। अपने बाबा साहब से तो तुमने हजारों बार जिद की होगी, उनका कहना मुनासिब है कि ज्यादह जिद पूरी करने से बच्चे बिगड़ जाते हैं। लेकिन हम भी तो इनके बच्चे हैं हम, इनसे पहली बार तुम्हारी जिद के लिये जिद करेंगे। बस तुम्हारा काम हो जाएगा। हाँ, किसी बरहमन से शादी की तारीख निकलवाकर हमें खबर भिजवा देना—विक्रम को हम मना लेंगे।"

"शुक्रिया चचा साहब सलाम!" उठते हुए हसीना ने कहा—"सलाम बाबा साहब!"

"जा-जा भाग यहाँ से।" सलाम का उत्तर दिया लाला ने।

"बात सुनो बेटी!" जाती हुई हसीना को जनरल ने बुलाया—"क्या नाम बताया था तुमने लड़की का?"

"जी, केसर।"

"लो यह एक मुहर उसे हमारी तरफ से देना और कहना कि हमें वो हमारी औलादों की तरह ही अजीज है। जाओ!"

हसीना ने तुरन्त हाथ बढ़ाकर दूसरी मुहर ले ली और फिर झुककर कहा—"सलाम चचा साहब!"

"जीती रहो।"

बैठक पार करते ही हसीना एक ही छलाँग में भीतर पहुँचकर दबे स्वर में चिल्लाई—"ओ केसर, अरी ओ!"

"क्या हुआ जीजी!" निकट आकर केसर ने पूछा।

हसीना ने उसे दोनों बाँहों में भींचते हुए कहा—"मेरी दुलारी तेरे दुलहिन बनने का पैग़ाम लेकर आई हूँ। हाय मैं मर जाऊँ माँ—चाँद-सी लगेगी बेगम वाली चम्पाकली पहनकर—ओ पण्डे की पटरानी त्रिवेणी··· !"

"क्या है री, पागल तो नहीं हो गई है?" पास खड़ी त्रिवेणी बोली।

"पागल हों तेरी ससुराल वालियाँ, वह मुई मथुरा की चौबनें; देख घर जाकर चचा से कहना कि सुबह जल्दी उठें और पूजा-पाट से निपटते ही यहाँ चले आयें।"

"जुबेदा, ओ रौशन—देख तो इस हसीना को, पागलों की तरह बेचारी लड़की को झँझोड़े डाल रही है। मरी कुछ फूटे मुँह से बता तो सही कि क्या बात हुई?"

केसर को छोड़कर हसीना त्रिवेणी से लिपट गई "शादी होगी, शहनाइयाँ बजेंगी। मेरी केसर दुलहिन बनेगी—घोड़े पर चढ़कर दूल्हा आयेगा। नाच-गाने होंगे, चुड़ैलो, सबका मुँह मिठाइयों से भरूँगी।"

"कब?" एक साथ कई कण्ठों ने प्रश्न किया।

: २१ :

अब अंग्रेजी सेना ने शहरपनाह की दीवार से लगभग ढाई फर्लांग दूर कुदसिया महल के खंडहरों के निकट अपना तोपखाना स्थायी तौर से जमा दिया था।

दोनों ओर से सुबह सूरज निकलने से पहले ही गोलाबारी शुरू हो जाती, और सूरज ढलने तक निरन्तर तोपें गरजतीं रहती थीं।

लगभग आधी रात ढल चुकी थी। जनरल हनीफ सहित कलाँ महल लौट रहे थे।

जैसे ही दोनों के घोड़े जामा मस्जिद की सीढ़ियों के निकट पहुँचे— सीढ़ियों पर मद्धिम-सी जलती मशाल लिये बैठे एक व्यक्ति ने हाथ के इशारे से दोनों को रुकने का संकेत किया।

—"कौन है ?" हनीफ ने ऊँचे स्वर में पूछा।

—"हसन अस्करी।" उत्तर मिला—"मुहम्मद बख्त खाँ से एक लहमे-भर को मिलना चाहता हूँ।"

अभी हाजिर हुआ।" घोड़े से उतरते हुए जनरल बोले।

जनरल और हनीफ दोनों ने हसन अस्करी के निकट पहुँचकर अभिवादन किया।

—"मुहम्मद बख्त खाँ सलामत रहो। एक साफ सवाल का साफ जवाब चाहता हूँ। जंग में फिरंगियों की फतह होगी या हिन्दीयों की ?"

जनरल कुछ क्षण चुप रहे। फिर धीमे किन्तु-दृढ़ स्वर में बोले— "हिन्दीयों की।"

जवाब पाकर खुशी हुई। लेकिन दिमाग को तसल्ली नहीं मिली। हालत तुम्हारे जवाब के माकूल नहीं हैं—वह फिरंगी, जो पहाड़ियों में जा छिपे थे, अब मैदान में आ डटे हैं !"

—"हालात।" जनरल मुस्कराये—"किबला आप सच कहते हैं। हालात और भी नाजुक हैं, बरेली और मेरठ के आधे के करीब जवान जंगे-

आजादी में कट मरे हैं, जो बाकी हैं वह भी सर हथेली पर लिये बैठे हैं। अंग्रेजों की खुशकिस्मती है कि किले में भी उनके बहुत-से दोस्त मौजूद हैं।"

हसन अस्करी-जैसा व्यक्ति, जो पूरे दिल्ली शहर के निवासियों के लिये जीता-जागता रहस्य था, जनरल के दो प्रकार के उत्तर सुनकर विस्मित हो कुछ क्षण उन्हें आश्चर्य से देखता हुआ बोला—"जवाँमर्द यह बताने की तकलीफ कीजिये कि किस बुनियाद पर आपने फरमाया कि हिन्दीयों की फतह होगी? मैं देखता हूँ कि न सिर्फ शाही खानदान और शहजादों से बादशाह घिरा हुआ है—बल्कि वह अपने मन की। बे-बुनियाद ख्वाहिशों की काँटेदार झाँड़ियों में ऐसा फँसा हुआ है कि जिन्दगी-भर इस गोरखधन्धे में से नहीं निकल सकेगा। आपकी मजबूरियाँ दिनों-दिन बढ़ती जा रही हैं। झाँसी, कानपुर, इलाहाबाद कहीं से भी तो अच्छी खबरें नहीं आ रही हैं……। 'हिन्दीयों की फतह' मेरी तरह कहीं ये आपके दिमाग का भी सिर्फ ख्याल ही तो नहीं है?"

जनरल मुस्करा दिये—"किबला मैं सिपाही हूँ, दिमागी ख्वाब देखने मुझे नहीं आते। क्या आप मेरी इस बात से इत्तिफाक करते हैं कि मैं और बादशाह सलामत और रानी लक्ष्मी बाई, नाना साहब और अजीमुल्ला खाँ, चन्द उँगलियों पर गिनी जाने वाली हस्तियाँ ही हिन्दुस्तानी नहीं हैं। हिन्दुस्तान बहुत बड़ा है—अंग्रेजों और पुर्तगालियों के मुल्क इस मुल्क के सामने राई बराबर हैं। अंग्रेजों की तो बात क्या—सारी गोरी कौमें मिलकर भी हिन्दुस्तानियों को नहीं हरा सकतीं।"

हसन अस्करी निरुत्तर हुआ। जनरल फिर बोले—"इजाजत है किबला?"

द्रवित हसन अस्करी की आँखों में आँसू छलछला उठे—"मैं कब्रिस्तान से आ रहा हूँ। कब्रिस्तान के पास ही ढेरों चितायें भी जल रहीं थीं। तब एक सवाल मेरे मन में पैदा हुआ—मुझे लगा कि मौत हमारा, हमारी जंगे आजादी का मुँह चिढ़ा रही है।"

जनरल के स्वर में अब भी धीरता और दृढ़ता थी—"नहीं मौत हमारा मुँह नहीं चिढ़ा सकती, उसके जालिम पंजे चाहे कुछ भी करें, वह हिन्दुस्तानियों से आँखें भी नहीं मिला सकती। किबला हम हिन्दीयों का दिल समन्दर से भी गहरा होता है, मुझे देखिये अपने हाथ से उजड्ड लड़कों को सिपाही बनाया, तलवारबाज और तोपची बनाया है। कम्बख्तों से औलाद-जैसी मुहब्बत पड़ जाती है, और अब अपने ही हाथों से उन्हें कब्रों और चिताओं में भी सुलाता हूँ। लेकिन तब भी दिल की दिल में ही रखता हूँ। जो जिन्दा हैं उनके लिये हँसता हूँ मुस्कराता हूँ। दिल के तूफानों को कभी आँखों में नहीं आने दूँगा हसन अस्करी साहब, यही तो हम हिन्दीयों की खासियत है। अच्छा, इन्शा अल्लाह फिर मुलाकात होगी। जो मर गये वह शहीद हो गये उनकी हमें इबादत करनी चाहिये, लेकिन जो जिन्दा हैं अगर हम उनसे सच्चे दिल से मुहब्बत कर सकें तो दिल का दर्द मिट जायेगा।"

कातर हसन अस्करी का अभिवादन करके जनरल फिर घोड़े पर सवार होते हुए बोले—"सूबेदार सचमुच दिल्ली के घास-दाने में कमाल है। इस घोड़े को ही देखो; ऐसा मालूम होता है मानो इसकी खाल बढ़ती हुई चर्बी के लिये नाकाफी है।"

और दूसरे ही क्षण दोनों के घोड़े हवा से बातें करने लगे।

एक बार जनरल और हनीफ दोनों ने ही चौंककर देखा कि कलाँ महल के दरवाजे पर भीड़ जमा है। ढोलक और घुँघरुओं के स्वर से प्रतीत होता था मानो नाच हो रहा है।

घोड़ा रोकते हुए जनरल ने कहा-"सूबेदार जरा आगे बढ़कर देखो तो क्या हो रहा है।"

हनीफ आगे बढ़ गया। तभी एक प्रहरी सैनिक ने आकर जनरल के घोड़े की रास पकड़ते हुए कहा—"हुजूर यह हीजड़े हैं, शाम से ही नाच-गा रहे हैं। बहुत मना किया मानते ही नहीं।"

जनरल घोड़े से उतरे—"इस महफिल का मन्शा क्या है ?"

—"बहुत पूछा; कम्बख्त बताते ही नहीं। इनके साथ एक चौकीदार है। वह कहता है कि मुझे हुजूर जनरल को ही बतानी है।"

—"अच्छा। हम ड्योढ़ी में इन्तजार करते हैं। लाओ बुलाकर चौकीदार को।"

आश्चर्य से इस उत्सव को देखते हुए जनरल दरवाजे में जा खड़े हुए। हीजड़ों का समूह बधाई गा रहा था।

सब सैनिक चौकन्ने होकर अपने-अपने स्थानों पर खड़े हो गये। किन्तु गाने वालों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। नागरिकों द्वार बँधे गोल के बीच अब भी बधाई गाने का क्रम जारी था।

ड्योढ़ी का मसनददार ठाकुर हरवंश उठकर बोला—"हुजूर कोई हुक्म है क्या ?"

—"नहीं।" मसनद के एक किनारे पर बैठते हुए जनरल बोले—"सोचा, हम भी कुछ देर गाना सुन लें।"

तभी प्रहरी सैनिक एक अधेड़ से गंगा-जमुनी दाढ़ी वाले व्यक्ति सहित उपस्थित हुआ। कोरनिस करते हुए वह व्यक्ति बोला—"हुजूर जनरल सलामत रहें। चौकीदार हूँ, फिक्र इस बात का है कि आज तक मेरे मुहल्ले वालों की सुई तक चोरी नहीं हुई। हुजूर के नाम एक पैगाम लेकर आया हूँ।"

—"किसका पैगाम ?"

—"हुजूर जनाब उस्मान खाँ साहब की दुख्तर का! कहलवाया है कि आज से चौथे दिन शादी है।"

—"अरे!" जनरल चौंके। हसीना को दिया हुआ वचन वह भूल ही गये थे।

—"ठीक है। पैगाम हमें मिल गया। अब यह गाने-नाचने वाली फौज आप अपने साथ ही ले जाइये। ठाकुर हरवंशसिंह, मुनासिब हो तो

चौकीदार और नाचने वालों को इनाम दे दीजिये। सूबेदार हनीफ कहाँ है ?" जनरल ने दृष्टि उठाकर देखा।

—"जी हाजिर हूँ। हालात यह हैं कि······।" दरवाजे में कदम रखते हुए हनीफ ने उत्तर दिया।

—"हालात से आगाही हो चुकी है। जानते हो सूबेदार विक्रम-सिंह कहाँ होंगे ?"

—"जी शायद काश्मीरी दरवाजे पर होंगे। उनकी रात काले खाँ के पास ही बीतती है। कहिये हाजिर करूँ ?"

—"हाँ।······या ठहरो। हम भी तुम्हारे साथ ही चलते हैं।"

उस समय हनीफ चुप रहा। किन्तु घोड़े पर चढ़ते हुए जनरल को टोकते हुए उसने कहा—"आप आराम कीजिए। अगर विक्रम की तलबी लाजिमी है तो मैं उसे अभी लाकर हाजिर किये देता हूँ।" हनीफ की बात में विनम्र शिष्टाचार के अतिरिक्त यह जानने की उत्सुकता भी थी कि विक्रम को क्यों तलब किया जा रहा है, अथवा कलाँ महल के सामने लगी भीड़ का विक्रम से क्या सम्बन्ध है ?"

किन्तु जनरल ने यह सब प्रकट नहीं किया। बोले—"सूबेदार हम सिपाही भी तो इन्सान ही होते हैं—कभी-कभी बेकार सैर करने की भी तबियत होती है। चलो आज बिना मकसद ही दिल्ली घूमेंगे। थोड़ी देर में चाँद भी निकल आयेगा। मेरा खयाल है कि सुनसान गलियाँ घूमने में एक खास लुत्फ आयेगा।"

मजबूरन हनीफ ने भी जनरल के साथ घोड़े को एड़ लगाई। जनरल की बात सिर्फ कहने भर को थी। वह सीधे रास्ते हो काश्मीरी दरवाजे की तरफ चले।

जब सारी देहली गहरी नींद में सो रही थी, तब काश्मीरी दरवाजे के आस-पास ऐसा प्रतीत होता था मानो सैनिकों का मेला लगा हो। अलग-अलग झुण्डों में बैठे सैनिक मनोविनोद में व्यस्त थे।

—"बस यहीं ठहरो !" घोड़े से उतरते हुए जनरल बोले—"चुप चाप चलना है। इस वक्त जनरल नाम का हौआ खड़ा करके सिपाहियों के आराम में खलल डालने की जरूरत नहीं है। यह लो, दोनों घोड़ों की लगामें उस दरख्त में बाँध दो।"

दीवार के ऊपर से कभी-कभी सितार के तार झनझनाने की ध्वनि आ रही थी। घोड़े को बाँधकर हनीफ लौटा तो जनरल चलते हुए बोले—"शायद यह विक्रम ही है।"

—"जी नहीं।" विश्वास पूर्वक हनीफ ने उत्तर दिया—"यह तो कोई अनाड़ी सितार से उलझा हुआ है। आप चाहें तो यहीं ठहरें, मैं अभी विक्रम को ढूँढ़कर लाता हूँ।"

—"विक्रम को भी ढूँढ़ लेंगे। आओ जरा देखें तो यह नया उस्ताद फौज में कौन पैदा हुआ है।"

चाँद काँसे-जैसे रंग में उदित हो चुका था। दीवार की सीढ़ियों से ऊपर चढ़कर दोनों ने देखा कि लगभग पच्चीस-तीस सिपाही जमा हैं। साथ ही विक्रम की आवाज भी सुनाई दी—"नहीं उस्ताद नहीं। ऐसे सितार बजाना नहीं आयेगा। क्या बच्चे की तरह तमाम तार झनझना देते हो। देखो पहले यह तार·········।"

—"चल बे लौंडे ! सुसरे सिखाने की तो तेरे मन में नहीं है और इतने आदमियों के सामने हमें चकमा दे रहा है। पकड़ अपनी टुनटुनी—हमें नहीं सीखना है।"

—"तुम सितार बजाना सीख ही नहीं सकते काले खाँ !" जनरल अपने स्थान पर खड़े-खड़े ही बोले – "गाना-बजाना वह सीख सकता है जिसके दिमाग में इश्क हो और दिल दर्द से भरा हो। तुम्हारे-जैसा लोहे के दिल वाला इन्सान, जिसके दिमाग में फितरतों और हंगामों का शोर हो, हम शर्त लगाकर कह सकते हैं कि······।"

—"ओह जनरल हैं।" जनरल को अपने निकट खड़ा देखकर सभी

सैनिक शीघ्रता पूर्वक उठकर खड़े हो गये। किन्तु काले खाँ बड़े इतमीनान से उठते हुए जनरल की बात काटकर बोले—"एक बात सोच लीजिये कि किसी ऐले-मैले से नहीं काले खाँ से शर्त लगा रहे हो।"

—"ऐले-मैले से हम शर्त लगाते भी नहीं हैं। जब शर्त जीतनी ही है तो फिर काले खाँ से जीतेंगे।"

—"हार जाओगे, जनरल हार जाओगे। अफीमची की भाँति अलसाये-से स्वर में जनरल के निकट पहुँचकर काले खाँ बोले—"तुम इस कल के लौंडे को क्या समझते हो। हूँ ऽ ऽ पिद्दी न पिद्दी का शोरबा······।"

—"बिगड़ो मत काले खाँ, देखो तुम्हारी मौजूदगी में मैं इस लड़के को एक हुक्म देता हूँ। अगर यह हुक्म मान लेता है—तब तो ठीक! नहीं तो इसे सुबह से पहले ही तोप के मुँह से बाँधकर उड़ा देना होगा—कहो मंजूर है?"

—"सुभान अल्लाह क्या बात कही है। जनरल, मैं इसके चिथड़े उड़ा दूँगा। अगर हड्डी का एक टुकड़ा भी जमीन पर मिल जाये तो सर कलम करवा देना।"

—"शाबाश, विक्रमसिंह सूबेदार इधर सामने आओ!"

मुस्कराता हुआ विक्रम जनरल के निकट आकर खड़ा हो गया।

—"देखो सूबेदार, इस बात को दुहराना हम फिजूल समझते हैं कि तमाम फौजियों को हम अपनी औलाद समझते हैं। सिर्फ एक बात याद रक्खो कि बख्त खाँ मुगल नहीं है, और यह खूबी सिर्फ मुगलों में ही मिलती है कि औलाद को खिला-पिलाकर बड़ा करो और फिर औलाद के हाथों कत्ल या कैद होकर बुढ़ापा खराब करो। मैं पठान हूँ। हम पठानों में यह आम रिवाज है कि अगर औलाद हुक्म-उदूली करे तो उसका सिर कलम कर लिया जाय।"

—"·········।" विक्रम कुछ बोला नहीं; सिर्फ मुस्कराता रहा।

—"कान खोलकर सुनो। अब हम तुम्हें हुक्म देते हैं कि आज से

चौथे दिन तुम्हें शादी करनी है।"

हनीफ और विक्रम दोनों ही चौंके।

जनरल कहे जा रहे थे—"हमें उम्मीद है कि तुम हमारी बात खुशी से मान लोगे। अलबत्ता हुक्म-उदूली की सजा हम तुम्हें पेश्तर ही सुना चुके हैं। चलो सूबेदार हनीफ।"

—"हुजूर जनरल!" विक्रम के स्वर में बौखलाहट थी—"कोई फैसला करने से पहले आपको मेरी बात सुननी होगी। भाभी ने भैया को और भया ने आपको गलत ढंग से समझाया है। आपको दोनों तरफ की बात सुनकर ही फैसला करना होगा।

—"सच कहता हूँ विक्रम, तुझे इस मामले में कतई जानकारी नहीं। मैं खुद हैरान हूँ कि·········!"

बड़ी कठिनता से हँसी होठों में रोकते हुए जनरल कृत्रिम कड़े स्वर में बोले—"सूबेदार हनीफ तुम्हें बोलने की इजाजत नहीं है। विक्रमसिंह हम तुम्हारी सब बातें सुनेंगे लेकिन शादी के बाद। चलो सूबेदार हनीफ!"

इतना कहकर जनरल बड़ी तेजी से सीढ़ियाँ उतरने लगे, मजबूरन हनीफ को भी पीछे-पीछे जाना पड़ा।

—"बोलो बच्चा, हुक्म मानना है या तोप भरवाऊँ। जनरल भी खूब हैं, समझते थे कि लौंडा कहीं शादी से इन्कार न कर दे। उन्हें क्या पता कि आजकल के यह कागजी नौजवान शादी को सजा नहीं इनाम समझते है।"

—"उस्ताद मुझे नहीं करनी शादी···मैं···मैं जनरल के पास।"

विक्रम भागकर जनरल से कुछ और कहना चाहता था कि किन्तु काले-खाँ ने लपककर उसकी कलाई पकड़ते हुए पुकारा—"हुक्म देते जाइये जनरल! यह हुक्म मानने से इन्कार कर रहा है। उड़ा दूँ क्या?"

: २२ :

कल से अँगरेजी सेनाओं की तोप के गोले शहर के अन्दर आकर गिर रहे थे। इतिहास साक्षी है कि देहली-निवासी अब भी भयभीत नहीं हुए थे। शहर का जीवन अब भी सामान्य रूप से चल रहा था। रात में सारी देहली के निवासी देर से सोये, आधी रात तक वह फिरंगियों के गोलों से मनोरंजन करते रहे। गोले जब फटते तो उनमें से निकलने वाली ज्वाला देहली-निवासियों के लिये आतिशबाजी का दर्शनीय तमाशा-मात्र थी।

अंग्रेजी सेनाओं का तो नाम-ही-नाम था। एक ओर क्रान्ति के पक्ष में रुहेलखण्ड के वीर सैनिक थे, जिनका संचालन जनरल बख्त खाँ कर रहे थे, जिसकी सहायता शहर-पनाह की दीवार के एक दूसरे से मजबूती से जुड़े पत्थर कर रहे थे। जिनकी एकता, दृढ़ता, हाड़-मांस के बने इन्सानों के लिये आदर्श भी हो सकती थी।

दूसरी ओर इस ऐतिहासिक महाक्रान्ति के विपक्ष में गोरखे और सिख रेजीमेण्ट के सिपाही थे, पंजाब की विभिन्न रियासतों की सेनायें थीं और इन सबके पीछे अंग्रेज जनरल था, और पिछली पाँत में काले हिन्दुस्तानियों के पीछे मुट्ठी-भर गोरी सेना थी—गोरे जनरल का आदेश काली सेनाओं से मनवाने के लिये।

दो दिन से युद्ध-विराम नहीं हुआ था, सोलहों-पहर युद्ध निरन्तर चल रहा था।

शहर देहली पर मौत मँडरा रही थी।

किन्तु देहली की जनता मौत का मुँह चिढ़ा रही थी। देहली की एक छोटी हसीना द्वारा आज एक विवाह आयोजित हो रहा था। उस्मान खाँ के दरवाजे पर प्रातःकाल से ही शहनाई बज रही थी। यों दिल्ली की जनता युद्ध का तमाशा देखने में व्यस्त थी, किन्तु मुहल्ले के कई प्रमुख हिन्दू उस्मान खाँ की बैठक में बैठे बारात के लिये बनने वाले पकवान के

लिये उत्तरदायी थे। जनरल के प्रतिनिधि के रूप में लाला लक्ष्मणदास भी दिन निकलते ही आ गये थे।

अन्दर चौक में भट्टी चढ़ी थी, सभी काम हो रहा था। किन्तु उस्मान जरा-जरा-से काम के लिए बहदवास से इधर-उधर दौड़ रहे थे। किसी आगन्तुक के आने पर वह तनिक मुस्कराते—"आओ मियाँ आओ, मियाँ काहे की शादी है—बस समझ लो कि सर चढ़ी लड़की की जिद पूरी कर रहा हूँ।"

किन्तु दूसरे ही क्षण वह किसी वस्तु के अभाव में परेशान हो उठते—"लो पान नदारद हैं, मियाँ मैं तो पहले ही कहता था कि यह लड़कियाँ मेरी पगड़ी उछलवाकर रहेंगी। तशरीफ रखिये, मैं जरा उन कम्बख्तों से पान लगाने को कह दूँ।"

दोपहर के समय मुहल्ले के प्रमुख हिन्दू-मुसलमानों से भरी उस्मान खाँ की बैठक के सामने पठानी ढंग का कुरता, शलवार, और कुल्लेदार साफा बाँधे एक व्यक्ति ने आकर—अस्सलाम वालेकुम की।

—"वालेकुम अस्सलाम, आइये मेहरबान!" उठकर आगन्तुक का स्वागत करते हुए वह बोले—"तशरीफ लाइये!"

आगन्तुक बिना किसी तकल्लुफ के अन्दर आकर बैठ गया। कहीं देखा अवश्य है! किन्तु कहाँ? वह बार-बार दृष्टि छिपाकर आगन्तुक का चेहरा देख रहे थे। चेहरे पर न दाढ़ी थी न मूँछे। लगभग दो सप्ताह की बढ़ी हुई हजामत का आवरण ही आगन्तुक का चेहरा किसी हद तक छिपाये हुए था।

कुछ क्षण चेहरा पहचानने का असफल प्रयत्न करने के बाद उस्मान-खाँ ने कहा—"खिदमत इरशाद हो जनाब की सवारी कहाँ से आ रही है?"

आगन्तुक मुस्कराया। उस्मान खाँ पर दृष्टि गाड़ते हुए उसने कहा—"सवाल सुनकर हैरानी हुई। सुना था कि देहली वालों की याददाश्त का जवाब

तो समुन्दर पार विलायत में भी नहीं मिला करता था·········लेकिन अब······।"

—"अरे विक्टर साहब !" उस्मान खुशी से गद्‌गद् होकर ऊँचे स्वर में बोले—"कसम खुदा की इस भेष में आओगे ख्वाब में भी खयाल नहीं था। खूब आये। इस घर में आज एक शादी होने वाली है।"

बैठक में कई व्यक्ति ऐसे थे जो विक्टर से परिचित थे। सबसे दुआ सलाम के बाद विक्टर ने पूछा—"यह शादी किसकी है उस्मान खाँ साहब ?"

—"केसर की·····अरे हाँ आप भला केसर को क्या जानें। बल्लमगढ़ में मेरे एक दोस्त थे—बेचारे मारे गये और लड़की अकेली रह गई। कोई नाते-रिश्ते का था नहीं, इसलिए उसे अपने साथ ही ले आया। सोचता था कि अमनो-अमान में इसके हाथ भी पीले कर दूँगा। लेकिन वह आफत की पुड़िया फातिमा को तो जो धुन लग जाती है बस उसे ही गाती रहती है। मजबूरन उस जिद्दी लड़की की वजह से आज यह तमाशा खड़ा करना पड़ा है। दूल्हे को तो तुमने देखा है—वही जिसे दूल्हे मियाँ बेहोशी की हालत में यहाँ लाये थे······विक्रमसिंह नाम है। अब सूबेदार हो गया है।"

—"हुँ।" जेब से पाइप निकालते हुए विक्टर बोला—"चलो ठीक हुआ।"

—"मियाँ यह धुएँदानी अभी जेब में ही रक्खो। पहले कुछ खा-पी लो। उठो !"

—"आया हूँ तो खाऊँगा भी। सोचता था कि जरा जनरल बख्त-खाँ से मिल लेता। उस्मान साहब आपको यकीन नहीं आयेगा कि मैं अंग्रेजी छावनी से सिर्फ इसी मकसद को लेकर चला हूँ कि एक बार उस इन्सान को अपनी आँखों से देख लूँ जिसने अंग्रेजों की बुनियादें हिला रक्खी हैं।"

—"वह शाम को यहीं बारात लेकर आयेंगे। आप खाना खाकर आराम कीजिये।"

—"खाना खाऊँगा, लेकिन आराम आराम के वक्त ही होगा—क्या कोई ऐसा आदमी नहीं है जो मुझे वहाँ तक पहुँचा दें।"

"कोई-न-कोई पहुँचा ही देगा। कोई नहीं तो मैं पहुँचा दूँगा। आप उठकर खाना खाने तो चलिये।"

"चलिए।"

जाने विक्टर को काहे कि उतावली थी कि शीघ्रता पूर्वक थोड़ा-बहुत खाकर वह उठ बैठा। यूँ घर में कितने ही काम फैले हुए थे किन्तु विक्टर को युद्ध-स्थल तक ले जाने के लिये स्वयं उस्मान मियाँ ने अचकन पहिनी और टोपी हाथ में लेकर वह बैठकखाने में आकर बोले—"कुछ देर के लिये इजाजत चाहूँगा जरा इन्हें काश्मीरी दरवाजे तक……!"

—"हुक्म हो तो इनके साथ मैं चला जाऊँ?" एक कोने में से उठते हुए मिर्जा नवाब खाँ ने उस्मान और विक्टर को सलाम किया।

—"अरे मिर्जा दाग! तुम कब आये बेटे शहजादे।"

—"जी अभी-अभी हाजिर हुआ था। उस्ताद नौशामियाँ ने हुक्म दिया है कि आज के दिन आपकी अर्दली में रहूँ। तीसरे पहर तक वह भी आजायेंगे।"

—"बहुत मेहरबानी की शहजादे, विक्टर साहब इनके साथ जाना पसन्द करेंगे।"

—"क्यों नहीं। शहजादे से तो मेरी पुरानी दोस्ती है। अब आप यहाँ काम सँभालिये। जब तक मिर्जा ग़ालिब आयेंगे मैं भी लौट आऊँगा। हाँ सेठ लक्ष्मणदास नहीं दिखाई दे रहे हैं?"

—"अभी कुछ देर पहले तो थे। किसी खास माली से गजरे बनवाने गये हैं। लौटकर आइयेगा तो वह भी यहीं मिलेंगे।"

—"आते ही मेरी सलाम देना, कहना कि याद करता-करता गया हूँ।

चलो शहजादे जनरल से मिल आयें !''

शहजादे का घोड़ा घर के बाहर ही बँधा हुआ था। तुरन्त ही एक और घोड़े का भी प्रबन्ध हो गया। घोड़े पर सवार होकर दोनों चल दिये।

—''शहजादे साहब, इस दौर में क्या कह रहे हैं गजलें या रुबाइ-यात ?'' गली से बाहर निकलकर चाँदनी चौक के राज-पथ पर घोड़ा बढ़ाते हुए विक्टर ने पूछा।

मिर्जा दाग विक्टर का प्रश्न सुनकर तनिक सहमे और बोले—''विक्टर साहब, हकीकत यह है कि इस दौर में दो-चार गजलों के अलावा कुछ भी नहीं कहा। मैं खुद भी उसी परेशानी में मुब्तिला रहा हूँ जिसमें किले के आम बाशिन्दे गिरफ्तार हैं। बहुत समझाता हूँ इस नाशाद दिल को कि किले वालों की परेशानी से मुझे क्या लेना देना है—लेकिन जाने क्यों दिल और दिमाग हर वक्त परेशान ही रहते हैं !''

—''शहजादे अब तो तुम्हारी किस्मत ही किले के साथ बँध गई है।'' दबे स्वर में विक्टर ने कहा—''कितना अच्छा होता कि यह सब नहीं हुआ होता। तुम शहजादे शायर न होकर सिपाही शायर होते तब !''

—''तब क्या होता विक्टर साहब !''

—''तब तुम्हारी शायरी की नींव गहरी और मजबूत होती। तुम्हारी शायरी की बुलन्दी का मैं कायल हूँ मिर्जा दाग ! मिर्जा गालिब के बाद शहर देहली के शायरों के तुम ही बादशाह होगे। परदेशी हूँ, फिर भी जानता हूँ कि तुम्हारी शायरी में उस्ताद जौक की नफासत है—शाह जफर की रंगीनी भी उसमें खूब है—और मिर्जा गालिब की बुलन्दी भी है—साफगोई के लिये माफी चाहता हूँ शहजादे; वक्त की जरूरत थी कि तुम्हारी शायरी में एक ललकार होती। ऐसी ललकार, जो सोने वाले को जगा देती और जागते हुए की खुद्दारी को जगाकर उसे शहरपनाह से बाहर झाँकने को मजबूर कर देती।''

—"क्या यह मुमकिन है ?"

—"यही तो अफसोस है मिर्जा, यह सब हकीकत से दूर सपने की बातें हैं। यह तुम्हारी बदनसीबी है कि तुम किले की चहारदीवारी के बन्धन नहीं तोड़ सकते, उर्दू-शायरी के गुलो-बुलबुल भी तुम्हारा साथ नहीं छोड़ेंगे, और तुम, तुम्हारी शायरी गुलाबी रुखसार और स्याह जुल्फों की कैदी है और रहेगी।"

मिर्जा दाग नवयुवक थे। विक्टर आम तौर से उनके सामने इसी किस्म की बातें किया करता था। उसकी प्रत्येक बात वह समझ भी नहीं पाते थे। किन्तु फिर भी उन्हें विक्टर की बातें अच्छी लगती थीं।

अचानक निकट ही कहीं एक गोला आकर फटा। किन्तु सारे बाजार का काम पूर्ववत् ही चलता रहा। जैसे-जैसे काश्मीरी दरवाजा निकट आता जा रहा था, आकाश पर तोप के गोलों का गहरा काला धुँआ घना होता जा रहा था।

काश्मीरी दरवाजा आज बन्द था। दरवाजे के ऊपर वाली तोपें निरन्तर गरज रही थीं, सैनिक इधर यमुना किनारे की दीवार से लेकर उधर मोरी दरवाजे तक किसी भी क्षण भयंकर युद्ध में कूद पड़ने के लिये तैयार खड़े थे।

—"ऐसी भीड़-भाड़ में जनरल मिल सकेंगे ?" घोड़े से उतरते हुए विक्टर ने पूछा।

—"आप यहीं ठहरिये, मैं कोशिश करता हूँ। लीजिये यह घोड़ा भी सँभालिये।"

मिर्जा दाग घोड़े की लगाम विक्टर को थमाकर चले गये। काफी देर बाद वह लौटे—"जनरल ऊपर दीवार पर हैं विक्टर साहब! आपका नाम लेते ही पहचान गये। कहते हैं कि यहीं आ जायें, बातें भी होंगी, और हमारे मेहमान जंग का तमाशा भी देख लेंगे।" दाग ने कहा।

—"चलो चलें—यह घोड़े किसे सौंपें ?"

—"मेरी राय यह थी विक्टर साहब—कि आप उनसे शाम को उस्मान साहब के यहाँ ही मिल लेते। जंग जारी है, दोनों तरफ से धुआँधार गोला-बारी हो रही है। खुदा न करे कहीं आपके दुश्मनों को········।"

—"घबराइये नहीं मिर्जा साहब, मैं अब तक छावनी में ही रहा हूँ—और फिर बूढ़ा होने आया, चाहता हूँ कि मरने का कोई मुनासिब मौका मिल जाये।"

मुस्कराते हुए विक्टर ने घोड़ों की लगामें मिर्जा को थमाते हुए कहा—"घबराइये नहीं, इस कुदरत में इन्साफ नहीं है। अभी जाने कितने बच्चों की मौत इन बदनसीब आँखों को देखनी है।"

विक्टर की बुजुर्गी के कारण मिर्जा दाग ने इच्छा न होते हुए भी विक्टर की इच्छा पूरी की।

दोनों घोड़ों की लगामें एक वृक्ष के ठूंठ से अटकाते हुए वह बोले—"चलिये, मैं चाहता था कि···?"

—"आपकी चाहत की मैं कद्र करता हूँ मिर्जा आओ, चलें!"

ऊपर दीवार पर तोपों की ओट से विक्टर में बारूद की राख जमे चेहरे वाले जनरल का प्रथम साक्षात् किया।

—"आदाब अर्ज है विक्टर साहब, गोकि आज पहली बार आपसे मुलाकात हुई है, लेकिन जब से मैं दिल्ली आया हूँ, तभी से अहले-दिल्ली के मुँह से आपकी तारीफ सुनता रहा हूँ। आप सोचते होंगे कि मुझे आपको यहाँ देखकर ताज्जुब हुआ होगा। नहीं, इन्सान का खून एक होता है विक्टर साहब, जुदा कौम और जुदा रंग इन्सान की इन्सानियत नहीं छीन सकता। —सच कहता हूँ दिली खुशी हुई आपसे मिलकर।"

—"वह मारा···मर गया साला। विक्रम तोप दाग वो परली वाली।" तोप की नली से सटा खड़ा काले खाँ पागलों की भाँति चीखा।

जनरल, विक्टर, और मिर्जा दाग तीनों ने ही आगे बढ़कर देखा—दूर मैदान में एक अंग्रेज सैनिक के क्षत-विक्षत अंग अभी तक तड़फ रहे थे; और

दूर लावारिस फिरंगी झण्डा चिथड़े-चिथड़े हुआ पड़ा था।

—"हुँ!" घृणा से मुँह बनाते हुए काले खाँ बड़बड़ाया—"हरामी समझते हैं कि एक आदमी शहर पनाह पर झण्डा लेकर चढ़ जायेगा तो देहली फतह हो जायेगी।"

—"काले खाँ, किसे सुना रहे हो?" जनरल ने हँसकर पूछा।

दूर अंग्रेजी मोर्चे के तोपखाने पर निशाना जमाने के लिये तनिक तोप घुमाते हुए काले खाँ अपनी धुन में कहे जा रहा था—"सुना रहा हूँ उन चोटी वालों को—कह दो उनसे जब तक काले खाँ जिन्दा है शहर पनाह को वो तो क्या उनका खुदा भी नहीं छू सकता।"

—"अभी जाकर कहे देता हूँ।" जनरल की इस बात पर मिर्जा और विक्टर दोनों ही हँसे।

—"हमारा काले खाँ भी खूब है विक्टर साहब, इसके जलते तीरों से तो दुश्मन झुलसता ही है, लेकिन इसके बुझे हुए तीर भी करामाती होते हैं।" काले खाँ के निकट से तनिक हटकर जनरल बोले—"खुद नहीं हँसता लेकिन औरों को सारे दिन हँसाता रहता है। जिस दिन यह काना निशानची मर गया, समझ लो कि हमारा तोपखाना लँगड़ा हो जायगा।"

विक्टर गम्भीर हो गया—"जनरल आप और आपके बहादुर हिन्दी जंगे-आजादी की जिन्दगी हैं। किसी के बारे में भी ऐसा मत सोचिये—जनरल बख्त खाँ और काले खाँ गोलन्दाज यही दो तो हैं जिनके नाम से आज आजादी के दुश्मन काँपते हैं। जिन्होंने उनके होशो-हवाश इस हद तक बिगाड़ दिये हैं कि उन्हें सपने में भी यही दोनों दिखाई देते हैं। आवेश में विक्टर ने जनरल के दोनों हाथ थाम लिये, "जैसे भी हो एक बार सामने की फौज को पुनः पहाड़ियों के पार तक खदेड़ दीजिये। मैं आपसे यही कहने आया हूँ, एक बार अपनी पूरी शक्ति लगा दीजिये—उनकी ताकत दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। यहाँ पंजाब की रियासतें और काश्मीर की फौजें भी बड़ी तादाद में आ पहुँची हैं। जहाँ तक मुमकिन हो

जल्दी कीजिये—अकेला मैं ही नहीं दूर समुन्दर पार मेरी कौम के बहुत-से आदमी हैं जिन्हें हिन्दीयों की जीत से खुशी होगी।"

—"भाई तुम इन्सान नहीं फरिश्ते हो······तुम से कैसे कहूँ कि बस यह जो कुछ तुम दीवार पर देख रहे हो यही मेरी पूरी ताकत है। वह देखो सामने, वह जो काले खाँ को बराबर वाली तोप के पास लड़का खड़ा है······आज रात उसकी शादी होने वाली है। शाम को यह दूल्हा बनेगा,······लेकिन यह भी तो हो सकता है कि शाम से पहले ही······ खैर, जो हो सकता है उसे कहने या सोचने में मुझे तो कोई बुराई नहीं दिखाई देती। फिर भी तुम मेहमान हो और मेहमान की खुशी का खयाल मेजबान को रखना ही चाहिये। अब मैं अपने मुँह से ऐसी ही बातें करने की कोशिश करूँगा जिन्हें सुनकर तुम खुश हो सको। आओ तुम्हें दीवार की मोर्चा-बन्दी दिखाऊँ—मिर्जा साहब आप भी आइये!"

: २३ :

रात हुए विक्रम की बारात उस्मान खाँ की हवेली पर आकर लगी। आगे-आगे फौजी बाजा था और पीछे लगभग दो सौ सैनिक बराती थे। दूल्हे के वेश में सजा विक्रम जनरल के घोड़े पर सवार था।

पूरी बारात में एक भी शहरी नहीं था, सभी फौजी थे। इसके विपरीत उस्मान खाँ की ड्योढ़ी पर दिल्ली के लगभग सभी प्रमुख व्यक्ति उपस्थित थे। एक ओर बारात का स्वागत नौशामियाँ, मिर्जा दाग, कल्लन पखावजी तथा अन्य मुहल्ले वालों ने फूलों के गजरों से किया। दूसरी ओर लाला लक्ष्मणदास तथा उनके दूसरे साथी शरबत के घड़े भरे बारातियों को ठण्डा कर रहे थे।

अन्दर चौक में केले के पत्तों से मण्डप सजा हुआ था, जहाँ विक्रम और केसर का विवाह आरम्भ हुआ।

और आतिशबाजी, वह मनुष्यों द्वारा रचे गये महा मृत्यु-यज्ञ द्वारा हो रही थी। आज की रात गोलाबारी जारी थी—दोनों ओर से।

अग्नि की साक्षी के हेतु हवन-कुण्ड जलाया गया। वर के पिता की भूमिका स्वयं जनरल ने निबाही—उस्मान खाँ ने कन्या-दान दिया और लाला लक्ष्मण दास केसर के मामा बने। अशर्फियों की थैली उन्होंने भात के रूप में दी।

अन्त में विदाई समारोह भी हुआ। केसर को गोद में उठाकर लाला बाहर ड्योढ़ी तक ले गये और वापस ले आये।

अब प्रीतिभोज होना था कि जनरल ने सभी को आश्चर्य-चकित कर दिया—"अब मैं चलूँगा उस्मान साहब!"

—"मियाँ यह क्या मजाक है।" उत्तर में तमककर बोले लाला—"खाना तैयार है, बेटे वालों के-से नखरे मत दिखाओ।"

जनरल हँसे—"नखरे की बात नहीं है लाला साहब, मेरा खाना कोई भी मोर्चे पर लेता आयेगा। दूल्हे का उस्ताद है कालेखाँ, इसे गोलन्दाजी सिखाई उसने, मुझे जाकर उसे छुट्टी देनी है। उसने मुझसे वायदा ले लिया था कि वह कुछ देर शादी के जश्न में शामिल होगा—आप देख ही रहे हैं कि गोलाबारी जारी है।"

जनरल चले गये। कालेखाँ के आने पर प्रीतिभोज आरम्भ हुआ। भोजन के बाद दस-दस पाँच-पाँच की टोलियों में सैनिक भी चले गये। जंग जारी था……आराम सपने की बात थी।

आधी रात के बाद मेहमानों की भीड़ कुछ हल्की हुई—किन्तु अब भी बैठकखाने में उस्मानखाँ सहित कई व्यक्ति थे। अंदर चौक में पड़े बड़े पलंग पर सिरहाने हनीफ और पैताने विक्रम यूँ ही लेटे-लेटे सो गये थे। ऊपर छत पर स्त्रियों का सारी रात नाचने-गाने का कार्यक्रम था।

—"अरे उठो।" हसीना ने खस के पंखे की डंडी विक्रम के पैर में चुभाते हुए कहा—"कैसे मनहूस हो तुम दोनों, ऐसी मुबारक रात सोने के लिये नहीं हुआ करती।"

—"हुँ।" जगाया विक्रम को था और जगा हनीफ, हसीना की ओर मुँह करते हुए उसने करवट बदली—"मनहूस वह, जो रात में आराम से सोते हैं—यहाँ तो रोज ही मुबारक रात होती है। रोज ही जागते हैं...... ओ विक्रम उठ...... !"

—"क्या है ?" आँखें मूँदे ही विक्रम ने पूछा।

—"उठ भाई कयामत की घड़ी आ पहुँची।"

—"क्या हुआ ?" विक्रम चौंककर उठा, शायद वह नींद में कोई सपना देख रहा था।

—"कयामत।" हनीफ ने फिर वही शब्द दुहराया।

हसीना ने मुँह बिचकाया—"कयामत, खुदा से डरो। अगर अच्छे बोल नहीं बोल सकते तो मत बोलो। अपना जमाना शायद भूल गये हो ?"

—"जी नहीं, याद है—इसीलिये तो यह गुस्ताखी कर बैठा हूँ।"

हसीना ने फिर मुंह बिचकाया—"देवरजी तुम उठो।"

—"देवरजी को बाद में उठाना; पहले हमें एक लोटा पानी पिला दो।"

हसीना पानी लेने चली गई। हनीफ विक्रम को गुदगुदाते हुए बोला—"अच्छा भई, हम तो चलते हैं, तुम पहली रात का जश्न मनाओ।"

—"मैं भी चलता हूँ।"

—"पागल हुआ है......।"

—"कौन पागल हुआ है ?" पानी का लोटा लेकर आती हुई हसीना ने पूछा।

—"तुम्हारा देवर।"

—"उठो जी, वो उधर छोटी तिदरी में तुम्हारी दुलहिन, है जाओ !"

—"मैं भैया के साथ जा रहा हूँ भाभी !"

—"कहाँ ?"

—"मोरचे पर ।"

—"अरे वाह, बड़े बहादुर बने हैं दोनों; सुनो, आज की रात दोनों यहीं रहेंगे। न तुम जाओगे और न यह जायेंगे।"

—"हाँ भई हम तो नहीं जायेंगे। हनीफ फिर लेट गया।

—"तुम जाओ जी, और देखो—लड़की बेचारी सीधी-सादी है उसे परेशान मत करना।"

"जाओ भई, जाओ ना! यहाँ अचार के घड़े से क्यों रक्खे हो ? अब तो मुल्लाइन ने इबादत का तरीका भी बता दिया है।" हँसी दबाते हुए हनीफ ने शह दी।

—"तुम चुप रहो ना। जाओ तुम, लो यह पंखा भी लेते जाओ।"

अनमना-सा विक्रम उठा और पंखा लेने को हाथ बढ़ा दिया।

—"जाओ यूँ ही चले जाओ—पंखा तुम्हारी दुलहिन के पास है। नई खस का तर और खुशबूदार।"

इस सीधे-सादे मजाक पर मुँह बनाकर विक्रम ने पर्दा उठाकर तिदरी में प्रवेश किया और हसीना और हनीफ की खिलखिलाहट वह इसलिये नहीं सुन सका कि ऊपर औरतों के सामूहिक गान का स्वर यकायक और भी तेज हो गया था—

सखी पिया को जो मैं ना देखूँ, तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ।

'यह सब भाभी की करतूत है' मन-ही-मन सोचते हुए विक्रम ने तिदरी की सजावट देखी।

हरे स्वच्छ रंग में पुती तिदरी में दसियों मोमबत्तियाँ जल रही थीं। दहेज के सामान में रक्खा हुआ पलंग इस समय मोतियों की झालर से

सजा हुआ था। नीचे जमीन के एक कोने में दुलहन सिकुड़ी हुई बैठी थी।

—"हुं।" जमीन में दुलहन के निकट बैठते हुए अलसाये-से स्वर में विक्रम बोला—"ऐसी गर्मी में गठरी की तरह लिपटी क्यों बैठी हो?"

—"..............।"

—"बोलना नहीं है तो मैं जाऊँ?"

—"ठीक तो बैठी हूँ।"

—"खाक ठीक बैठी हो।" घूँघट उठाते हुए विक्रम बोला—"देखो तो सारी पसीने में नहा रही हो। कितनी ओढ़नियाँ ओढ़ रक्खी हैं एक साथ।"

विक्रम उठा और जबरन ओढ़नियाँ उतार दीं, वह एक साथ तीन ओढ़नियाँ ओढ़े थी।

—"बाप रे, एक साथ तीन! गर्मी नहीं लग रही थी तुम्हें।"

लाज के मारे वह और भी सिमट गई।

पलंग पर रक्खा पंखा उठाकर विक्रम ने झलना आरम्भ किया ही था कि उसने दोनों हाथों से उसका हाथ पकड़ लिया—"हाय राम, मुझे नरक में भेजोगे क्या?"

पंखा विक्रम के हाथ से लेकर दुलहन ने उसीकी हवा करनी आरम्भ की।

एक दृष्टि उठाकर विक्रम ने केसर को देखा, सचमुच वह सुन्दर थी। बेगम की चम्पाकली ने उसके गले और वक्ष की सुन्दरता को चार चाँद लगा दिये थे।

—"वाह खूब रही—पसीने में खुद नहा रही हो और हवा मेरी हो रही है। अपनी हवा करो......देखो, मैं पंखा छीन लूँगा कह रहा हूँ कि अपनी हवा करो।"

केसर ने क्षण-भर अपने ऊपर पंखा हिलाया और फिर झिझकते हुए

बोली—"जीजी...कहती थी · !"

—"क्या कहती थी ?"

—"कहती था कि ब्याह में तुम्हारा मन नहीं है।"

—"अच्छा और क्या कहती थी ?"

—"कहती थी कि......।"

—"हाँ हाँ बोलो ना !"

—"कहती थी कि मैं तुम्हें नहीं भाती, तभी तो ब्याह मन से नहीं किया।"

— "अच्छा, यह तो तुम्हारी जीजी ने कहा, अब तुम कहो तुम्हें क्या कहना है — मैं तुम्हें बुरा तो नहीं लगता।"

केसर ने सिर हिलाया।

—"अच्छा लगता हूँ।"

—"हाँ।" निर्दोष भाव से केसर बोली—"बुरी तो मैं हूँ, भगवान् ने माँ, बाप, भाई सब अपने यहाँ बुला लिये, और मैं......।"

—"बुरी बात है—ऐसी बात नहीं किया करते। तुम्हें किस बात की कमी है। मुझे देखो, मेरे माँ-बाप तो मुझे याद भी नहीं है, फौज में भैया मिले दिल्ली आये तो भाभी भी मिल गई। जो अपना समझे वह अपना मुझे तो भैया, भाभी, अब्बाजी, सभी अपने लगते हैं। वह सब तुम्हें अपने-जैसे नहीं लगते ?"

—"लगते हैं।"

—"फिर मन भारी क्यों करती हो ?"

—"तुमने ब्याह बे-मन से किया ना ?"

—"फिर वही पगलियों की-सी बात, बात यह थी कि भाभी ने मुझ-से ब्याह करने को कहा तो मैंने कहा था कि 'लड़ाई के बाद'। बस इतनी-सी बात को ही वह जाने क्या समझ बैठी, और जाने तुमसे क्या-क्या कह दिया। तुम बुरी नहीं हो बहुत अच्छी हो।"

—"सच !"

—"और क्या झूठ !"

× × ×

पलंग के एक छोर पर बैठी हसीना पंखा झलती हुई हनीफ के सोने की प्रतीक्षा कर रही थी।

काफी देर प्रतीक्षा करने के बाद भी जब हनीफ नहीं सोया तो वह बोली—"तुम लेटो, मैं अभी आई। जरा एक बार ऊपर गाने वालियों को देख आऊँ—शायद पान-इलायचियों की जरूरत हो।"

—"तुम ऊपर जाओ हसीना, मैं भी जा रहा हूँ।"

—"कहाँ ?"

—"मोरचे पर।"

तमककर उठी हसीना—"फिर वही।"

—"सुनो तो हसीना !" हनीफ ने बैठकर स्नेह से अपने दोनों हाथ हसीना के कन्धे पर रखकर कहा—"तोपों की गड़गड़ाहट सुन रही हो ना। हो सकता है कि आज की रात हमारी हार-जीत का फैसला करने वाली रात हो—तुम बहादुर बीवी हो। जबकि सब फौजी सर पर कफन बाँधे मैदानेजंग में लड़ रहे हैं; क्या तुम चाहती हो कि मैं तुम्हारी ओढ़नी में मुँह छिपाये बैठा रहूँ। नहीं हसीना यह नहीं होगा—मैं जानता हूँ कि तुम खुद भी यह पसन्द नहीं करोगी। जाऊँ ?"

—"जाइये।" बड़ी कठिनता से हसीना के मुँह से निकला।

हनीफ हसीना के अन्तर्द्वन्द्व को समझता था। अब उसने वहाँ रुकना उचित नहीं समझा। एक बार उसने पुनः हसीना के कन्धों को थपथपाया और तेजी से चला गया।

लाख रोकने का प्रयत्न किया, किन्तु हसीना की रुलाई फूट ही निकली।

भोर का तारा निकलने में अभी एक पहर और था। जैसे ही केसर की आँख लगी विक्रम दबे पाँव बाहर आया।

ऊपर स्त्रियों के गाने की आवाज अब थकी-सी जान पड़ती थी।

विक्रम के हृदय पर मानो घूँसा पड़ा। हनीफ पलंग पर नहीं था। फर्श पर बैठी हसीना अब भी सिसकियों से रो रही थी।

—"भाभी !"

—"हाँ।" शीघ्रतापूर्वक आँसू पोंछते हुए हसीना उठी—"क्या बात है, कम्बख्तों झगड़ तो नहीं बैठे !"

—"नहीं, झगड़ने की पारी तो आज भाभी और भैया की थी।"

—"हुँ।" सचमुच इस व्यंग से हसीना लजा गई—"खुदा की मार जबानदराजों पर—जाओ; जाकर सो जाओ। केसर अकेली घबराती होगी।"

—"वह सो रही है, मुझे मोर्चे पर जाना है भाभी !"

—"पागल मत बनो—आज की रात······।"

—"यह 'आज की रात' 'आज की रात' की रट छोड़ो भाभी। भैया को रोक लेती तो जानता। कौन कह सकता है कि आज की रात क्या है—मुझे जाना ही होगा।"

हसीना ने कोई उत्तर नहीं दिया। चुपचाप भारी कदमों से तिदरी की ओर चल दी।

बाहर घोड़ा नहीं था। विक्रम पैदल ही मोर्चे की ओर चल दिया। बाहर आसमान में धुएँ के बादल मँडरा रहे थे।

तोपों के गर्जन ने मानो पैरों को ललकारा। कुछ देर तेज चाल चलने के बाद विक्रम ने काश्मीरी दरवाजे की दिशा में दौड़ना आरम्भ किया।

रात के इस ढलते पहर में शहर देहली जन-कलरव से गूँज रहा था। लोग छतों और गलियों में खड़े दूर तोप के गोलों के फटने का तमाशा देख रहे थे। यह देहली के नागरिक थे, युद्ध उनके लिये नया नहीं था—पीढ़ी-दर-पीढ़ी से निरन्तर होने वाला युद्ध उनके लिये साधारण घटना थी।

: २४ :

आवश्यक है कि इतिहास की कुछ पंक्तियाँ दुहरा दी जायें। दिल्ली की लड़ाई के अन्तिम दिनों में अंग्रेजों का सबसे अधिक मजबूत मोर्चा गुप्त-चरों का मोर्चा था।

गुप्तचर विभाग का प्रधान कप्तान हडसन था। शहर के अन्दर कई विश्वासघातक सक्रिय थे, जिनमें मुख्य सम्राट् बहादुरशाह का समधी मिर्जा इलाही बख्श था। इलाही बख्श प्रायः किले में ही रहता था और महल की तमाम बातों और सलाहों की खबरें हडसन तक पहुँचाता रहता था।

'सात सितम्बर से कम्पनी की सेना ने नगर के अन्दर प्रवेश करने के जी तोड़ प्रयत्न आरम्भ कर दिये। सात से तेरह तक उन्हें प्रतिदिन अनेक जानें देकर पीछे हट जाना पड़ा। किन्तु इस बीच कम्पनी की तोपों की लगातार गोलाबारी के कारण शहर की उत्तर-पश्चिमी दीवार में कई जगह दरारें पड़ गई थीं। चौदह सितम्बर को कम्पनी की सेना ने नगर में प्रवेश करने का अन्तिम और सबसे अधिक जोरदार प्रयत्न किया। वास्तव में चौदह सितम्बर का संग्राम क्रान्ति के सबसे भीषण संग्रामों में से एक था। प्रातःकाल जनरल विलसन ने कम्पनी की सेना को पाँच दलों में विभक्त किया। एक दल ब्रिग्रेडियर जनरल निकल्सन के अधीन, दूसरा कर्नल कैम्पबेल के अधीन, तीसरा, चौथा और पाँचवाँ क्रमशः ब्रिग्रेडियर जोन्स, मेजर रीड, और ब्रिग्रेडियर लांगफील्ड के नेतृत्व में थे।'

इस प्रकार दिन निकलने से पहले ही यह पाँचों दल दिल्ली-विजय के लिये दीवार की ओर बढ़े।

× × ×

—"सूबेदार जी ठहरो!"

एक सरपट घोड़ा दौड़ाते हुए घुड़सवार ने लगाम खींचकर घोड़ा वापिस मोड़ते हुए कहा—"सूबेदार जी, मैं आपको ही बुलाने उस्मान खाँ की हवेली पर जा रहा था।"

दौड़ता हुआ विक्रम रुका, सवार बदहवास-सा बुरी तरह हाँफ रहा था।

—"खैरियत तो है?" सवार के चेहरे के रंग को देखकर ही विक्रम समझ गया कि कोई अशुभ समाचार है।"

—"काले खाँ गोलन्दाज......?"

—"क्या हुआ उन्हें?" मानो बिजली चमकी हो।

—"जी वह बुरी तरह जख्मी हुए—बिस्तरे पर पड़े लगातार आप को ही पुकार रहे हैं—आप यह घोड़ा ले जाइये। वह आरामगाह में हैं।"

विक्रम के हृदय पर बिजली गिरी।

आहत-सा विक्रम घोड़े की ओर बढ़ा, उसके हाथ पैर काँप रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो उसकी नाड़ियों में निरन्तर बहने वाला खून जमा जा रहा हो।

किसी तरह चढ़कर उसने घोड़े को एड़ लगाई, किन्तु असफल घोड़ा वैसा ही खड़ा रहा—दूसरी बार एड़ इतनी जोर से लगी कि घोड़ा उछल पड़ा और वह गिरते-गिरते बचा। सैनिक ने झपटकर घोड़े की रास पकड़ते हुए कहा—"मैं साथ-साथ चलता हूँ, सूबेदार जी!"

—"नहीं भाई, नहीं, मैं चला जाऊँगा तुम आहिस्ता-आहिस्ता आ जाओ।"

सारी सेना में काले खाँ के घायल होने का समाचार फैल चुका था। काश्मीरी दरवाजे के आस-पास बनी सैनिक-विश्रामशाला, जहाँ हकीम साहब चिन्तित मुद्रा में उसके जख्मों पर पट्टी बाँध रहे थे, सैनिक-अफसरों से ठसाठस भरी थी।

हकीम साहब बीच-बीच में पट्टी बाँधना छोड़कर नब्ज देखने लगते थे। कभी-कभी काले खाँ के निस्तेज पीले चेहरे पर होंठ हिलने से उसके जीवित रहने का विश्वास अवश्य हो जाता था, अन्यथा उसका समूचा शरीर ठंडा होता जा रहा था।

एक बार काले खाँ फिर पूरी शक्ति से कराहा—"गोला······बारी··· जारी रक्खो, विक्रम······को बुलाओ।······हरामजादा······ऐन······ मौके पर······मेरा नाम······नाम······मेरा नाम······।"

—"हकीम साहब!" जनरल के चेहरे पर दयनीय विवशता झलक रही थी—"काले खाँ बच जायेगा ना···इसे जरूर बचा लीजिये······।"

इस बात का संतोषजनक उत्तर हकीम जी के पास नहीं था बात बदलने के लिये वह जनरल के माथे से बहते हुए खून की ओर संकेत करके बोले—"आप पट्टी बँधवा लीजिए।"

—"हकीम साहब, मेरी परवाह छोड़िये मामूली जख्म है। काले खाँ को बचाइये······।"

हकीम साहब घबराये से काले खाँ की नब्ज टटोल रहे थे।

—"हकीम साहब······?"

हकीम साहब की वाणी में कम्पन था—"हुजूर जनरल।" दूसरा हाथ काले खाँ के हृदय पर रखते हुए हकीम साहब बोले—"काले खाँ देहलवी, दुनिया के गोलन्दाजों के बादशाह शहीद हुए।"

—"हुँ अच्छा।" एक बार जनरल ने दृष्टि उठाकर आस-पास खड़े व्यक्तियों को देखा—"बहादुरो······बहादुरो!" भरे हुए गले से किसी तरह आँसुओं का ज्वार आँसुओं में ही रोकते हुए जनरल ने आस-पास के फौजियों को सम्बोधित किया—"काले खाँ जन्नत नशीन हुए। हममें से किसी को भी रोना नहीं चाहिये, वह एक बहादुर की मौत मरे हैं।"

जनरल ने इतना कहकर बाहर की ओर कदम बढ़ाया ही था कि हकीम साहब ने उन्हें पुनः रोका—"हुजूर जनरल खून अब भी बह रहा है पट्टी बँधवा लीजिये!"

—"अच्छा हकीम साहब, मैं अभी हाजिर होता हूँ। आप सब अपने अपने काम पर ध्यान रक्खें तो बेहतर होगा, हनीफ!"

—"जी !"

—"जरा मेरे साथ बाहर आओ !"

आदेश पाकर काले खाँ के शव के आस-पास खड़े व्यक्ति शव का सम्मानजनक फौजी अभिवादन करके जाने लगे।

जनरल बाहर मैदान में आए। पीछे-पीछे हनीफ भी था।

एक संदेशवाहक सैनिक जाने कब से जनरल की प्रतीक्षा में घोड़े की बाग थामे खड़ा था। उसके चेहरे पर परेशानी और घबराहट के चिह्न स्पष्ट थे।

"हुजूर जनरल !" संदेश-वाहक जनरल की ओर बढ़ा।

"जरा ठहरो ! हनीफ काले खाँ के खास घर वालों और रिश्तेदारों को खबर कर दो—और उनका जिस्म कलाँ महल ले जाओ। जनाजा वहीं से चलेगा। तुम कहो।"

—"हुजूर जनरल बुरी खबर है। फिरंगी ब्रिगेडियर निकलसन दीवान पर चढ़ आया है। सूबेदार अली के बहुत-से सिपाही मारे गये—वह ताजादम नई टुकड़ी चाहता है।"

—"नई टुकड़ी कहाँ है मेरे भाई।" संदेश. वाहक के समाचार से जनरल को आश्चर्य नहीं हुआ मानो वह पहले ही से परिचित थे। "सुनो।" वह संदेशवाहक से बोले—"सूबेदार अली को हुक्म दो कि वह फिरंगों की टुकड़ी को नीचे उतर आने दे—अगर मुमकिन हो सके तो दीवार से नीचे उन्हें घेरे रक्खे। सूबेदार से यों कहना कि अगर मुमकिन हो सका तो मैं कुछ मदद भेजने की कोशिश करूँगा। लेकिन यह वायदा नहीं है।"

निराश संदेश-वाहक घोड़े पर चढ़ा और चल दिया, उसकी चाल में निश्चित धीमापन था—मानो यह संदेश पहुँचाने की आवश्यकता ही न हो।

—"हनीफ तुम अपना काम करो। सोच रहे होगे कि तुम्हारी मोर्चे से [illegible]

लड़ाई तो जीते जिन्दगी की है। इसलिये हार का सवाल ही नहीं है। जाओ।

—"हुजूर विक्रम............।" दृष्टि उठाते ही हनीफ बोला। विक्रम ने भी घोड़े से उतरते हुए जनरल को देख लिया, जनरल को इस प्रकार खड़ा देख कर उसके अन्तर में व्यापी हुई अनिष्ट की आशंका और भी प्रबल हो गई।

—"विक्रम, आओ बेटे! जरा देर से पहुँचे; तुम्हारे उस्ताद तो गये, बेटा!" जनरल के चेहरे फिर वही चिर परिचित मुस्कान थी। विक्रम स्तब्ध रह गया। वह न रोया और न ही जनरल की भाँति मुस्करा सका। समाचार पाकर वह खड़ा रह गया। निश्चल; बुत की तरह।

जनरल स्वयं आगे बढ़े। विक्रम के दोनों कन्धों पर हाथ रखकर वह बोले—"आज ठीक सुबह का तारा निकलते ही काले खाँ की मौत फिरंगियों का गोला बनकर आई और सूरज निकलने से पहले ही उसे अपने साथ ले गई। आखिरी साँस तक उसने तुम्हें याद किया......आओ मेरे साथ आओ!"

अन्दर हकीम जी तथा उनके दो सहायक थे। जनरल विक्रम का हाथ पकड़े हुए वहाँ पहुँचे, और काले खाँ के शव से वस्त्र उतारकर बोले—"यह रहे तुम्हारे उस्ताद! देखो रोना मत! यह फौजी कानून के खिलाफ बात है। हम फौजी अपने दोस्तों और अजीजों के लिये खून तो बहा देते हैं—लेकिन आँसू नहीं बहाया करते।"

किन्तु जनरल के आदेश का पालन विक्रम की आँखें न कर सकीं—आँसुओं की बूँदें टप-टप गिरती हुई काले खाँ का शव भिगो रही थीं।

हनीफ ने आकर खबर दी—"बाहर विक्टर साहब खड़े हैं।"

—"चलो बहुत हुआ विक्रम, अब तुम अपने उस्ताद की जगह सँभालो। ठीक खड़े हो जाओ, और आँसू पोंछ डालो, सुन रहे

हो ना ?'' जनरल के स्वर में आदेशात्मक कठोरता थी।

—''जी।''

—''सुनो, दीवार से तोपें नीचे उतार लो! किसी भी वक्त फिरंगी की फौज शहर में दाखिल हो सकती है। तुम्हें जैसे भी हो उनका बढ़ावा रोकना है। काश्मीरी दरवाजे के नीचे तुम्हारी टुकड़ी को लड़ाई लड़नी है। नई खबर यह है कि फिरंगी की फौज का एक दस्ता शहर-पनाह में दाखिल हो गया है। जा सकते हो।''

विक्रम चला गया। किस प्रकार उसने अपने अन्तर की मनोभावना को कुचला होगा? उसके इस असीम साहस की एक दूसरे से नजरें छिपाते हुए जनरल और हनीफ दोनों ही आँखों ही आँखों में सराहना कर रहे थे।

''हनीफ, तुम्हारे काम में क्या देर है? काले खाँ का शव ढकते हुए जनरल ने पूछा।

''जी, मैं जा रहा हूँ गाड़ी आ गई।'' आरामगाह के दरवाजे पर ही विक्टर जनरल की प्रतीक्षा कर रहा था। जैसे ही वह बाहर आये उसने उनके दोनों हाथ थामकर आर्त स्वर में कहा—''मुझे हार्दिक दुःख हुआ खाँ साहब काले खाँ की मौत वाकई एक बहुत बड़ा नुकसान है।''

जनरल तनिक सिर नीचा किये विक्टर के हाथ दबाये रहे, क्या उत्तर देते वह विक्टर को?

कुछ क्षण बाद वह सिर उठाकर बोले—''विक्टर साहब एक अर्ज है।''

—''फरमाइये?''

—''आज दिल्ली शहर में लड़ाई शुरू होने वाली है, अब के बाद आप मोर्चे से दूर रहें। अपने-आपको बेकार ही खतरे में डालना मुनासिब नहीं होगा।'' जनरल के स्वर में विनय थी।

विक्टर फीकी हँसी हँसा—मुझे इतनी अहमियत मत दीजिये खाँ—

साहब, बूढ़ा आदमी हूँ आज नहीं तो कल······।"

—"नहीं।" जनरल रुँधे हुए गले से बोले—"विक्टर साहब, खुदा नाराज है हम लोगों से। अपने दिल पर कब तक पत्थर रख सकूँगा मैं, तुम्हें अपने दोस्त को—मैं किसी भी कीमत पर खोना नहीं चाहता। आसमान वाला मुझे दोनों हाथों से लूट रहा है, मैं अपना, अहले दिल्ली, और अहले हिन्द का सब-कुछ लुटवा देना नहीं चाहता।"

केवल विक्टर ने ही देखा कि जनरल की आँखों से आँसुओं की चन्द बूँदे ढुलककर दाढ़ी में उलझ गई थीं।

निकट ही सामने खड़ी गाड़ी में काले खाँ का शव चढ़ाया जा रहा था।

२५ :

काले खाँ की मृत्यु का समाचार सारे नगर में फैल गया। जिस समय भारतीय सेना काश्मीरी दरवाजे के निकट खाइयों में अपना मोर्चा स्थिर करने का प्रयत्न कर रही थी, नगर के मुसलमानों के घरों में हसन अस्करी की गश्ती चिट्ठी घूम रही थी। एक पड़ोसी मुसलमान ने चिट्ठी लाकर उस्मान खाँ को दी। चिट्ठी में लिखा था:—

"शाहजहाँनी के मुसलमानो,

सर की बाजी लगाने का वक्त आ गया है। खत मिलते ही हर मुसलमान का फर्ज है कि वह जिहाद का फैसला करने जामा मस्जिद चला आये। हर मुसलमान को कसम है उसके माँ के दूध की, खत पढ़कर दूसरे मुसलमान को दे दो और खुद तलवार बाँधकर जामा मस्जिद चले

आओ ।—हसन अस्करी ।

—"सुनो मियाँ, मैंने पढ़ लिया है । खत अगले मकान में दे दो !" खत लाने वाले को ही लौटाते हुए उस्मान खाँ कमुहाई लेते हुए उठे । आधी से अधिक रात विवाह-समारोह में बीत गई थी—हालाँकि दिन का पहला पहर बीत रहा था, किन्तु नींद का नशा अभी तक बाकी था ।

अन्दर सहन में आकर उन्होंने पुकारा—"फातिमा ओ केसर……!"

—"आई अब्बा !" आवाज आई ।

तिदरी में से हसीना और केसर दोनों ही दौड़ती हुई आईं ।

—"खूब रही, ऐसे दौड़कर आने की क्या जरूरत थी ? अब तुम दोनों बच्ची थोड़े ही हो कि जब भी घर में आऊँगा, तुम्हारे लिये पेड़े लेकर आऊँगा । फातिमा बेटी, मेरा जामा, पगड़ी और तलवार ले आ । कहीं जाना है ।"

—"कहाँ ?" हसीना चौंकी ।

—"अरे वहीं……दरबार में ।"

—"दरबार में तलवार ले जाकर क्या करोगे अब्बा ! सितार तो बैठक ही में है ।"

—"चल ले आ, ज्यादा जिरह नहीं किया करते । कौन सुनता है जंग के मौके पर सितार, कुछ और काम होगा तभी तो बुलावा आया है ।"

—"तब फिर खाना खाकर जाना ।" हसीना का स्वर ऐसा था, मानो कोई छोटा बच्चा मचल रहा हो ।

—"नहीं बेटा, कोई शाही हुक्म टाला जाता है । जा, जल्दी ला !"

अनमनी सी हसीना अन्दर चली गई । वात्सल्यपूर्ण स्नेह से केसर के सिर पर हाथ फेरते हुए वह बोले—"केसर बेटी, तू जब से आई है तभी से लगता है मानो गूँगी हो । भली आदमन जरा बोला-हँसा कर—जानती

है, तेरा दूल्हा सूबेदार है; बड़ा नेक लड़का है।"

बात तो कुछ भी नहीं थी। उस्मान खाँ के हृदय से निकले वाक्य से केसर की आँखें कुछ खुल उठीं। हसीना को आते देखकर वह तनिक ऊँचे स्वर में बोले—"किसी के माँ-बाप हमेशा नहीं बैठे रहते बेटी, लड़की को ससुराल वाला घर ही अपना समझना चाहिए। तुम दोनों अब दूध पीती बच्ची नहीं हो कि जरा-जरा-सी बात पर बिसूर दो।"

तलवार और पगड़ी केसर के हाथ में देकर जामा पहनाते हुए हसीना बोली—"अब्बा तुम बड़े वो हो। किसी दिन मेरी-तुम्हारी ऐसी लड़ाई होगी कि सारा मुहल्ला तमाशा देखेगा। हर वक्त एक ही बात; ससुराल वाला घर अपना समझो, मैं पूछती हूँ कि हम दोनों तुम्हारा घर उठाकर लो नहीं भाग रही हैं?"

—"..........।"

तलवार बाँधते हुए वह फिर बोली—"बोलो ना, चुप क्यों हो गये?"

—"ना बाबा, नहीं बोलूँगा; डर लगता है तुमसे।"

—"डर लगता है तो एक बात सुन लो अब्बा, जरा जल्दी लौटना किले से। खाना वक्त पर खाना होगा।"

—"देख री, तू मेरा इन्तजार मत करियो! बूढ़ा हुआ। आज या कल जाकर कब्र में सो जाऊँगा। इन्तजार उसका करना चाहिये जिससे निभाव की उम्मेद हो।"

—"अब्बा, ऐसी बात करोगे तो मैं लड़ बैठूँगी।"

—"लड़ बैठ!" उस्मान मुस्कराये—"तू क्या समझती है कि मैं तेरी गुलामी करने के लिए बैठा रहूँगा।" केसर के हाथ से पगड़ी लेकर सिर पर रखते हुए वह बोले—"तू तो समझती है कि अब्बा मुफ्त का है, तेरे बेटे-बेटी खिलाने के लिये जीता रहेगा—ना बाबा, ऐसी गुलामी हमसे नहीं होगी।"

उस्मान खाँ की यह बात सुनकर हसीना लजा गई, उस्मान खाँ मुस्कराते हुए बैठक में आये। सितार एक कोने से उठाकर मसनद पर रक्खा। कुछ क्षण खेद भरी दृष्टि से उसे एकटक देखते रहे, फिर गहरी साँस लेकर जूते पहने और बैठक से उतर गये।

क्या बूढ़े और क्या जवान; सभी मुसलमान जामा मस्जिद की ओर खिंचे चले आ रहे थे। इनमें कितने ही हिन्दू भी थे जो हसन अस्करी के रहस्य पूर्ण चमत्कार पर विश्वास करते थे।

देखते-ही-देखते जामा मस्जिद के विशाल चौक में कई हजार की भीड़ हो गई।

मंगतराम अखबार-नवीस आज अपना अखबार मुफ्त ही बाँट रहा था। भद्दे ढंग से छपे उर्दू अखबार में मोटे-मोटे अक्षरों में छपा हुआ था :—

- कम्पनी की फौज शहर में दाखिल हो गई।
- काले खाँ गोलन्दाज आज सुबह मोर्चे पर जख्मी होकर मरा।
- आज हसन इस्करी मुसलमानों को जिहाद का फतवा देंगे।
- हिन्दुस्तानी फौजें कम होने के बावजूद बड़ी बहादुरी से लड़ रही हैं।
- नई खबर है कि जनरल मुहम्मद बख्त खाँ बादशाह सलामत से मिलने किले में गये हैं। उम्मीद है कि दोपहर बाद किले से कोई नया शाही एलान होगा।

बस, अखबार में कुल इतनी ही खबर थी। लोग अखबार पढ़ते और खबरों के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिये मंगतराम के सामन सवालों की झड़ी लगा देते। किन्तु मंगतराम के पास एक ही जवाब था—"और जानकारी अस्करी साहब देंगे, वह आते ही होंगे।

—"सुनो, सुनो!" सभी उपस्थित व्यक्तियों ने देखा कि जाने कहाँ से हसन अस्करी आकर हौज के कोने में खड़ा पुकार रहा था—"सुनो

'शाहजहाँनी के फरजन्दो सुनो; हिन्दुओ और मुसलमानो !"

उपस्थित समुदाय में खामोशी छा गई, पीर हसन अस्करी को पहली बार लोगों ने नंगी तलवार लिये हुए देखा।

—"वक्त आ गया है। फिरंगी शहर में आ गये है। जो उनके दोस्त हैं वह उनसे जा मिलें।"

कुछ क्षण के लिये वह रुका; और एक बार उसने मौन खड़े जन समुदाय को निहारा—"और जो फिरंगी के दुश्मन हों, जो दीनो मजहब के चाहने वाले हों, वक्त आ गया है कि वह तलवार म्यान से बाहर निकाल लें—हिन्दुओं को कसम है गंगा मैया की, मुसलमानों को कसम है मुकद्दस काबे की, तलवार म्यान से निकाल लो और म्यान को काटकर दो टुकड़े कर दो। इसी वक्त से जिहाद शुरू होता है।"

आदेश पाते ही उपस्थित जन-समुदाय के अधिकांश व्यक्तियों ने तलवार खींचकर म्यान के दो टुकड़े कर डाले। कुछ व्यक्ति ऐसे भी थे, जो जिन्दगी और मौत के इस भीषण संघर्ष से बचने के लिये पास खड़े व्यक्तियों की दृष्टि बचाकर खिसक ने लगे।

—"यह दीनो-मजहब की इज्जत का सवाल है। जो जाता है, उसे जाने दो।" अस्करी फिर पुकारकर बोला।

जाने वाले व्यक्ति पुनः ठिठककर खड़े हो गये।

अभी कुछ क्षण ही बीते थे कि कहीं निकट ही कड़ाबीनों के चलने का स्वर गूँजा।

हसन अस्करी गरजा—"हमें इसी वक्त का इन्तजार था। लाल मुँह वाले फिरंगी—बन्दरों की फौज करीब आ गई है। शाहजहाँनी वालो अपनी गैरत को जगाओ। धकेल दो फिरंगी को शहरपनह के बाहर—कसम है तुम्हें अपने माँ के दूध की। हाथ आया शिकार बचके न जाने पाये। चलो आगे बढ़ो!"

उत्तेजित नारे लगाती हुई भीड़ जामा मस्जिद से बाहर निकली।

कई सौ की संख्या वाली कम्पनी की फौज से लगभग तीस के करीब नागरिक और शहर कोतवाली के सिपाही घायल खून से लथपथ हुए उलझ रहे थे। काश्मीरी दरवाजे से यहाँ तक कम्पनी की सेना को एक-एक कदम का मोल चुकाना पड़ा था। कई सौ नागरिक स्वयं अपना बलिदान देकर कम्पनी की सेना के अफसरों के दिल्ली-विजय के स्वप्न को धराशायी कर चुके थे।

जामा-मस्जिद के जिहादी सागर की दृढ़ और शक्तिशाली लहर के समान आगे बढ़कर कम्पनी की सेना से भिड़ गये। उत्तेजनापूर्ण नारे वीभत्स गर्जन और चीत्कार के रूप में बदल गये। मस्जिद की ऊँची मीनारें देख रही थीं कि दिल्ली के निवासियों ने अपने नगर के लिये अपने रक्त की नदी बहानी आरम्भ कर दी थी। कम्पनी की सेना और उसके देशी-विदेशी सिपाही इस तूफ़ानी हमले को नहीं सँभाल पाये और लाख डटे रहने के प्रयत्न के बाद भी कम्पनी की सेना पीछे हटने लगी।

अधिकांश जिहादी कट मरे—किन्तु कम्पनी की सेना काश्मीरी दरवाजे तक धकेली जा चुकी थी। अब भारतीय सेना ने पूरी कम्पनी-सेना को एक ही दिशा में घेर लिया। जो जिहादी बचे वे भारतीय सेना की पाँत में सम्मिलित होकर अब भी लड़ रहे थे।

× × ×

अब स्त्रियों के करुण क्रन्दन से शहर उदास हो गया। मुहल्ले-मुहल्ले के बच्चे घरों से निकलकर उस मार्ग में शव पहचानते फिर रहे थे जहाँ कुछ देर पहले भीषण संग्राम हुआ था।

उस्मान खाँ शहीद हुए। बच्चों ने आकर समाचार दिया कि—"लाला लछमन और वह पठान, जो आपके यहाँ आया हुआ है (अर्थात् विक्टर) उन्हें उठाकर कब्रिस्तान ले गये हैं।"

आवश्यकता से अधिक चुप रहने वाली केसर चीत्कार कर उठी, हसीना के होंठ मानो सिले हुए थे; किन्तु बहते हुए आँसू वह रोकने में सफल न हो सकी।

उन्हें सान्त्वना देने कौन आता ? दिल्ली के समाज की स्नेह और ममता की कड़ियों से बनी मेखला टूट चुकी। जहाँ देखो वहीं थकी-सी रोने और सिसकने की आवाज थी।

दोपहर बाद धूल-मिट्टी से अटे विक्टर और लाला आये। शायद वह क़ब्रिस्तान से लौटे थे।

—"बेटी होश।" किसी प्रकार अपनी रुलाई रोकते हुए उन्होंने पुकारा।

केसर और हसीना, जो रोते-रोते थककर लगभग चुप हो गई थीं—एक बार फिर विचलित हो उठीं।

—"चुप रहो लड़कियो !" रोने का स्वर सुनकर लाला और उसके पीछे विक्टर दोनों अन्दर चले आये।

विक्टर यह करुणापूर्ण दृश्य नहीं देख सका। हसीना और केसर को चुप रहने का आदेश देने वाले लाला स्वयं लड़कियों से दृष्टि चुराकर आँसू पोंछते हुए कह रहे थे—"उस्मान गया। लेकिन अभी तो मैं बैठा हूँ। *बावलियो, उस्मान तो हमारा मरा है, जब तक हम हैं तुम्हें क्या फ़िकर है।* चुप करके बैठो। हाँ बहुत हुआ, बस अब नहीं रोना है।"

तभी दरवाजे पर दस्तक पड़ी, विक्टर यह देखने गया कि कौन आया है।

जनरल आये थे।

उन्हें देखकर हसीना और केसर पुनः रो पड़ीं।

किन्तु जनरल के स्वर में आश्चर्यजनक धीरता थी। वह अब भी मुस्करा रहे थे—"ना बेटियो बुरी बात है। शहीदों की मौत पर रोने से खुदा बुरा मानता है। बड़ी समझदार बेटी है, बस अब मत रोना। शाबाश !"

—"आप बादशाह से मिलने गये थे।"

जनरल मुस्कराये—"हाँ गया तो था।"

—"क्या हुआ ?"

—"क्या होना था ?"

—"शहर में अफवाह है कि जल्दी ही कोई शाही एलान होने वाला है।"

—"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। हमारे बादशाह ऐसा मालूम होता है मानो बच्चे हों। मिर्जा इलाही बख्श उन्हें समझा गये थे कि जनरल को चाहिये कि वह हथियार डाल दे। उन्होंने मुझे तलब किया और कहा कि तुम हथियार डाल दो। मैंने समझाया कि हमें आखिरी दम तक लड़ना है वह यह भी मान गये। किले से कोई एलान नहीं होगा, अलबत्ता शाही खानदान हालात की वजह से काफी बेचैन है। दरअसल किला एक शतरंज बना हुआ है—बादशाह और खानदाने-शाही के लोग उस शतरंज के मुहरे हैं। मैं और मिर्जा इलाही बख्श खिलाड़ी हैं—देखना है कि कौन किसे मात देता है ?"

उत्तर में विक्टर तनिक मुस्करा दिया। सभी चुप हो गये। कुछ क्षण के मौन से जनरल ऊबते हुए बोले—"बेटी पानी पिलाओगी !"

हसीना उठकर पानी ले आई। कुछ घूँट अनिच्छापूर्वक पीकर वह बोले—"विक्टर साहब और लाला जी आप मेरे साथ जरा बैठक में चलें कुछ देर वहीं बैठेंगे।"

बैठने का तो बहाना था। बैठक के द्वार पर ही जनरल बोले—"लाला जी !"

—"हाँ।"

—"मेरी कुछ मदद कीजिये। किसी तरह सड़क पर पड़ी लाशों की मिट्टी ठिकाने लगवा दीजिये।"

—"वह सब हो जायेगा बेटे !" अत्यन्त मार्मिक स्वर में लाला बोले—"मैंने कुछ लोगों को बुलाया है; वह आ गये होंगे। जरा लड़कियों को देखने चला आया था !"

—"और विक्टर साहब······आप कहेंगे तो सही कि खुदगर्ज हूँ; आपको भी कुछ तकलीफ दूँगा। इन दोनों लड़कियों को आप सँभालिये।

—"यह तो मेरा फर्ज है, मरहूम उस्मान की लड़कियाँ मेरी लड़कियाँ हैं।"

—"शुक्रियाँ, सिर्फ इतना याद रखिये कि यह दोनों लड़कियाँ मेरे लड़कों की बहू हैं। मैं जब चाहूँगा अपने बच्चों की बीवियाँ आपसे माँग लूँगा। अब इजाजत दीजिये।"

जनरल चले गये, कुछ क्षण बाद लाला को भी जाना पड़ा।

विक्टर उठा। खुद रसोई में पहुँचा और आग जलाने का प्रयत्न करने लगा। विक्टर को यह सब करता देखकर हसीना और केमर ने यह समझकर कि खाना उनके लिये नहीं तो विक्टर के लिये तो बनेगा ही, कुछ खाना बनाया और फिर हटपूर्वक विक्टर ने कुछ कौर दोनों को खिला भी दिये।

साँझ तक विक्टर घर में रहा, और इधर-उधर की बातों से उनका मन समझाता रहा।

लगभग एक पहर रात गये विक्टर बाहर से आकर बोला—"बेटियो, वक्त बुरा है। हमें फौरन यहाँ से चल देना है। खास-खास सामान बाँधो। मैं गाड़ी ले आया हूँ।·········यह बातों का वक्त नहीं है—उठो।"

× × ×

रात-भर भयंकर युद्ध चलता रहा।

प्रातः भोर का तारा निकलने बाद मिर्जा दाग जनरल को खोजते हुए मोर्चे पर बड़ी आतुरता से घूम रहे थे।

जनरल मिले, वह एक सैनिक का शव उठाये मोर्चे के पीछे जा रहे थे।

—"फरमाइये!" उनके चेहरे पर अब भी पूर्ववत् मुस्कान थी।

—"शाही खानदान ने किला छोड़ दिया। बादशाह हुजूर भी चले गये। आपके लिये पैगाम है कि चाहें तो उनसे आखिरी बार हुमायूँ के मकबरे में मिल सकते हैं। वह हजरत निजामुद्दीन की दरगाह से सीधे वहीं

जायेंगे। अब मुझे भी रुखसत कीजिये।''

जनरल विक्षिप्त के - से स्वर में चिल्लाये—''हनीफ !'' दूर कहीं से आवाज आई—''हाजिर हुआ जनरल !''

—''फौज को पीछे हटाओ, कुछ देर बाद गोलाबारी बन्द करके तोपखाना भी हटा लेना। मेरे लड़के सिर्फ मरने के लिये नहीं है।'' दूसरे ही क्षण उन्हें मिर्जा दाग की उपस्थिति का स्मरण हो आया।

—''शुक्रिया मिर्जा साहब, खुदा आपको लम्बी उम्र दे। मैं आपका एहसानमन्द हूँ।''

: २६ :

दूर पूर्व में सूर्योदय हो रहा था।

यह वर्षा ऋतु थी। यमुना का पानी खूब चढ़ा हुआ था।

विप्लव की वीर सेना थकी और उदास-सी हुमायूँ के मकबरे के पूर्वी द्वार पर बिना डेरे डाले यमुना की रेत पर बैठी हुई थी। केवल तोपखाने के सैनिक अब भी सतर्क थे। अपनी तोपें भरे वह किसी भी क्षण दुश्मन के स्वागत के लिये तैयार थे।

जनरल के साथ केवल हनीफ ने हुमायूँ के मकबरे में प्रवेश किया।

महान मुगलिया-वैभव का एक प्रतीक यह मकबरा किले की भाँति ही सुदृढ़ और सुन्दर था। अधिकांश शाही परिवार और सम्राट इस समय यहीं उपस्थित थे।

कई मास के निरन्तर संघर्ष एवं कई दिन के भीषण संग्राम के पश्चात् दिल्ली पर फिरंगियों का कब्जा हो चुका था।

मकबरे के एक बरामदे में सम्राट् मसनद के सहारे बैठे थे उनके निकट मिर्जा इलाही बख्श भी उपस्थित थे।

शाही शिष्टाचार के अनुसार हनीफ कोरनीस करके कुछ दूर ही खड़ा रह गया।

जनरल आगे बढ़े।

—"आओ बेटे! हमारे करीब बैठो!" हुक्के की निगाली एक ओर रखते हुए सम्राट् ने मुस्कराने प्रयत्न किया।

—"इज्जत अफजाई का शुक्रिया आलीजहाँ, सिपाही हूँ इसलिये खड़े रहने का आदी हूँ। हुजूर आप किला छोड़कर चले आये। क्या हुजूरे-आला का ख्याल था कि मुझे आलीजहाँ और शाही खानदान की हिफाजत का ख्याल नहीं था।"

—"नहीं ......।" इतनी चुभती हुई बात सुनने की आशा सम्राट् को नहीं थी। बौखलाये से वह बोले—"नहीं बेटे हमें तुम पर पूरा यकीन था—जो हो गया..... अब उस पर मन भारी करने से क्या फायदा है?"

—"जी हुक्म, हुजूर अब मेरी गुजारिश यह है कि आप हिम्मत न हारिये। दिल्ली हाथ से निकल जाने पर भी हमारा कुछ नहीं बिगड़ा है। आलीजहाँ कुल हिन्द के हालात पर गौर फरमाइये—तमाम मुल्क में आग लगी हुई है जहाँपनाह आप मेरे साथ दिल्ली से निकल चलिये। मैं ऐसी कितनी ही जगह जानता हूँ जो लड़ाई के मोर्चे के लिये दिल्ली से ज्यादा अहम हैं। हम कहीं भी अंग्रेजों से लड़ाई जारी रख सकेंगे। हजूर मुझे पूरा भरोसा है कि हम जल्दी ही न सिर्फ दिल्ली को फतह कर लेंगे बल्कि पूरे हिन्द से अंग्रेजों को निकाल देंगे।"

सम्राट् ने दृष्टि उठाकर इलाहीबख्श की ओर देखा। धीमे और भयभीत स्वर में इलाहीबख्श बोला—"हुजूर अब बगावत कामयाब नहीं हो सकेगी।"

—"मिर्जा इलाहीबख्श, जबान को लगाम दो। अगर दोबारा मेरे

सामने हिन्दीयों की मुकद्दस जंगे-आजादी को बगावत कहा तो तुम्हारे हक में अच्छा नहीं होगा।" गुस्से से जनरल के नेत्र जलने लगे। बड़ी कठिनता से वह अपने-आपको सँभाले खड़े थे।

इलाहीबख्श बादशाह के निकट सरक आया—"हुजूर बख्तखाँ के साथ जाने में आपको सिवाय परेशानी और तबाही के कुछ न मिलेगा। आप यहीं रहिये, मैं आपसे वायदा कर चुका हूँ कि अँगरेजों से मिलकर सब बातों की सुलह-सफाई करा दूँगा। मुझ पर विश्वास कीजिये क़िला फिर आपकी रिहायश के लिये होगा—पेन्शन बहाल रहेगी। फिर वादा करता हूँ कि पूरे शाही खानदान को वही हक़ूक हासिल होंगे जो पहले कभी थे।"

—"वह अंग्रेज कौम है जहाँपनाह, आज तक तवारीख इस बात की गवाह है कि हिन्दुस्तान में उस कौम ने किसी के साथ इन्साफ नहीं किया है।" जनरल ने नम्र होने का प्रयत्न करते हुए कहा।

जनरल की नम्रता देखकर इलाहीबख्श का फिर साहस बढ़ा—"आली-जहाँ, सोचिये तो—अंग्रेज कौम ने आपके या आपके खानदान के साथ क्या बुराई की है? मरहूम बुजुर्ग शाह आलम के साथ लार्ड लेक ने जो अहसानात किये हैं उसे कोई मुगल नहीं भूल सकेगा।"

—"अहसानात! उन अहसानात को पूरा हिन्दुस्तान जानता है मिर्जा साहब—और किले में एक अदना इन्सान की तरह जिन्दगी बिताने वाले बादशाह भी उन अहसानात से नावाकिफ नहीं है।...... आलीजहाँ मेरा इरादा साफ है। आज भी पूरे हिन्दुस्तान की रिआया आपकी तरफ देख रही है। उसकी बदनसीबी पर तरस खाइये और मेरा साथ दीजिये। मैं आपसे फिर वायदा करता हूँ कि मैं चाहे कितनी भी परेशानियों में रहूँ आपको और शाही खानदान को कोई तकलीफ नहीं होने दूँगा। आप मेरे साथ रहेंगे तो सिपाहियों की हिम्मत बँधी रहेगी। वह समझेंगे कि हमने सिर्फ दिल्ली हारी है—लड़ाई नहीं हारी। छोटे राजा और नवाब

भी हमारा साथ देंगे। जिल्ले सुभहानी उन शहीद नौजवानों के नाम पर मेरे साथ चलिये जिन्होंने खुशी-खुशी जंगे-आजादी में अपनी जिन्दगी दे डाली है।"

जनरल के मार्मिक वाक्यों ने जादू का-सा असर किया। सम्राट् की आँखें छलछला उठीं। हाथ से मैदान जाता देख मिर्जा तिलमिला कर उठा—"शाही खानदान की हिफाजत करोगे तुम……! तुम, जिन्होंने हमेशा शहजादों को बे-आबरू किया है। कौन नहीं जानता कि तुम पठान हो, और मुगलों से, मुगल बादशाह से अपनी कौम का पुराना वैर चुकाना चाहते हो।"

—"कमीने……अंगरेजों के कुत्ते!" जनरल की आंखें क्रोध से लाल हो गईं, तलवार खींचते हुए उन्होंने कहा—"तू इतना कमीना है यह मुझे मालूम नहीं था। अगर मालूम होता तो दिल्ली में दाखिल होते ही सबसे पहले तेरी बोटी-बोटी उड़ा देता। हनीफ, इसे तलवार दो। आज यह मेरे हाथ से जिन्दा नहीं बचेगा।"

—"नहीं!" काँपते हुए हाथों का सहारा लेकर उठते हुए सम्राट् बोले—"बखतखाँ मेरे बेटे नहीं!"

—"गुस्ताखी माफ हो आलीजहाँ, कसम तलवार की; आज मैं इस आस्तीन के साँप को जिन्दा नहीं छोड़ूँगा।"

हनीफ ने आदेश का पालन किया, अपनी तलवार निकालकर बूढ़े इलाहीबख्श की ओर बढ़ा दी। किन्तु वह तो भय से थर-थर काँप रहा था।

—"हरामजादे, उठा तलवार!" जनरल सीधी तलवार ताने तेजी से उसकी ओर बढ़ ही रहे थे कि सम्राट् डगमगाते हुए जनरल के सामने आ गये—"बेटे तूने मेरे लिये बहुत-सी कुर्बानियाँ की हैं—आज यह बूढ़ा, तुमसे मिर्जा के लिये रहम की भीख माँगता है। रख ले बेटा, तलवार म्यान में रख ले……!"

अनिच्छा पूर्वक जनरल ने तलवार म्यान में रख ली।

सम्राट् फिर बोले—"बहादुर! मुझे तेरी हर बात का यकीन है और मैं तेरी हर बात को दिल से पसन्द करता हूँ। मगर जिस्म की कूवत ने जवाब दे दिया है, इसलिये मैं अपना मामला तकदीर के हवाले करता हूँ। मुझको मेरे हाल पर छोड़ दो और बिस्मिल्लाह करो। यहाँ से जाओ और कुछ काम करके दिखाओ। मैं नहीं, मेरे खानदान में से नहीं, न सही तुम, या कोई और हिन्दुस्तान की लाज रक्खे यही मेरी आरज़ू है। हमारी फिक्र न करो, अपने फर्ज को अञ्जाम दो।" एक बार अपनी छलछलाती हुई आँखें पोंछते हुए सम्राट् ने जनरल से दृष्टि मिलाकर कहा—"खुदा हाफिज।"

जनरल तड़पकर रह गये। आखिर मिर्जा का जादू चल ही गया।

दिल्ली के समस्त स्वतन्त्रता-संग्राम के मुकुट जनरल का अन्तर रो उठा। हृदय में बिजली-सी चमकी और एक साथ ही उन हजारों नवयुवकों की आकृति दृष्टि के सम्मुख नाच गई—जिन्होंने संग्राम में वीर-गति प्राप्त की थी।

जनरल बिना सम्राट् का अभिवादन किये मुड़े; और भारी-भारी कदमों से पूर्वी द्वार को चल दिये। उनके पीछे था केवल हनीफ ········ मेरठ का एक सैनिक।

—"हुजूर जनरल!" मकबरे से बाहर आते ही हनीफ आगे बढ़ा, करुणापूर्ण स्वर में उसने कहा—"कहिये तो तम्बू लगवा दिया जाये। आप कई दिन से एक मिनिट के लिये भी नहीं लेटे हैं, कुछ देर आराम कीजिये!"

—"नहीं तमाम फौज को मेरे करीब इकट्ठी करो। हमें फौरन कूँच करना है······।"

अनमना-सा हनीफ फौज को पुकार ही रहा था कि दूर से एक अंग्रेजी फौजी घोड़ागाड़ी आती दिखाई दी। तोपखाने के सैनिक सतर्कता के साथ

एक तोप उधर ही घुमा रहे थे।

गाड़ी का कोचवान एक हाथ से घोड़ों की लगाम थामे दूसरे हाथ से सफेद रूमाल सेना की ओर उड़ा रहा था।

तोपों के निकट पहुँचकर जनरल ने आदेश दिया—"तोप का मुँह नीचा कर लो, गाड़ी करीब आने दो।"

गाड़ी अभी लगभग पचास कदम दूर थी कि चलती गाडी में से विक्टर उतर पड़ा। इस समय वह अपना पठानी वेश त्याग चुका था और असली पोशाक में था।

जनरल उत्साह से आगे बढ़े और हाथ बढ़ाकर विक्टर को गले से लगा लिया।

—"अच्छे मौके पर मिले दोस्त......मेरी अमानत तो हिफाजत से है ना?"

—"साथ लाया हूँ जनरल साहब!"

—"अच्छा किया, बहुत अच्छा किया!"

गाड़ी से हसीना और केसर उतरीं। दोनों अपनी ओढ़नियों का घूँघट निकाले हुए थीं।

—"विक्रमसिंह!" जनरल ने पुकारा।

—"आया हुजूर!" कहा तोपों के पीछे से आवाज आई।

कुछ क्षण बाद विक्रम ने आकर अभिवादन किया।

—"क्या कर रहे थे?"

—"बारूद सन्दूकों में भरवा रहा था।

—"तुम्हें तोपखाने से छुट्टी दी जाती है। हम आज तुम्हें एक खास काम सौंपते हैं। हमारी बेटियाँ आई हैं। तम्बू लगवाकर उनके आराम से रहने का इन्तजाम कर दो। उनके पहरेदार तुम रहोगे।"

घूँघट के आवरण में लिपटी विक्टर के निकट खड़ी हसीना और केसर विक्रम की दृष्टि से नहीं छिप सकीं। युद्ध से थके और पराजय से दुखित

विक्रम के चेहरे पर मुस्कान खेल गई।

"जो हुक्म !" पुनः अभिवादन करते हुए उसने कहा।

—"जवानो, सुनो !" कुछ दूर चलकर जनरल ने एक तोपगाडी पर चढ़कर घोषणा की—"बादशाह ने हमारा साथ छोड़ दिया है। अब क्या करेंगे, यह तो तय नहीं हो पाया है—लेकिन यह तय है कि जब तक इस बहादुर फौज का एक भी आदमी जिन्दा रहेगा—जंगे-आजादी बन्द नहीं होगी।"

समस्त सेना में हर्ष-ध्वनि हुई।

जनरल कह रहे थे—"आज शाम से पहले हम सब जमना के पार पडाव डालेंगे।"

आदेश पाते ही सेना में हलचल मच गई। सभी व्यक्ति जमना पार करने की तैयारी में जुट गये।

विक्टर, हसीना, केसर तथा गाड़ीवान सहित एक पेड़ की छाँह में जा बैठा था। जनरल फिर उसके पास पहुँचे—विक्टर के निकट ही जमीन पर बैठते हुए वह बोले—"किन लफ्जों में मैं तुम्हारा शुक्रिया अदा करूँ। हमेशा याद रक्खूँगा कि एक अंग्रेज दोस्त था, जिसका दिल ईसामसीह की तरह पाक और साफ था।"

—"नहीं जनरल मैं अदना इन्सान लाखों बुराइयों से भरा हुआ हूँ। मुझे तो सिर्फ इस बात का नाज है कि हिन्दुस्तानियों की दोस्ती-जैसी नायाब चीज मेरे साथ है—जनरल, इस बात का मुझे हमेशा फख्र रहेगा।"

युवक गाड़ीवान, जो बहुत देर से जनरल से बात करने को उत्सुक था, हाथ बढ़ाकर बोला—"जनरल मुझे टोनी कहते हैं। गाड़ीवान हूँ। हिन्दुस्तानियों से कभी दोस्ती का मौका तो नहीं मिला—लेकिन ईश्वर जानता है कि मैंने हिन्दुस्तानियों को कभी दुश्मन नहीं समझा, आप चाहें तो विक्टर चाचा से पूछ सकते हैं।"

टोनी के कंधे पर हाथ रखकर स्नेहपूर्ण स्वर में जनरल ने कहा—"नहीं बेटे, मुझे तुम्हारी बात का यकीन है।"

उस समय जब सूर्य पश्चिम में डूब रहा था, सेना ने यमुना पार की। विदाई देने वाले सिर्फ दो थे—विक्टर और टोनी।

: २७ :

दुनिया में इतना दुखदायी कुछ भी नहीं जितना यह कि जो हो गया, उसे भुलाया नहीं जा सकता।

पराजित सम्राट् और दिल्ली के नागरिकों के साथ जो बर्ताव विजेताओं ने किया—उससे पूरी अंग्रेज जाति कलंकित हो गई।

नौशामियाँ पाँच दिन से अपने घर में कैद थे। बाहर निकलने की सजा थी मौत।

पहले ही दिन एक सैनिक अफसर ने आकर उन्हें कमाण्डर का हुक्म सुनाया—"मिर्जा असदुल्ला खाँ गालिब, सीमन फ्रेजर की डायरी से कमाण्डर साहब को पता चला है कि आप उनके खास दोस्त थे। इसलिये जब तक आपका कोई जुर्म साबित नहीं होगा, फौजी अदालत आपको कोई सजा नहीं देगी। लेकिन आपको खास ताकीद की जाती है कि आप घर से बाहर न निकलें, अगर आपने हुक्म-उदूली की तो अपनी जान के ज़िम्मेदार आप होंगे।"

पाँच दिन की इस कैद से नौशामियाँ परेशान हो उठे। आखिर छठे दिन उनके दरवाजे पर दस्तक पड़ी।

स्वयं नौशामियाँ ने दरवाजा खोला। पहचान नहीं सके, सामने गोरी सेना का अफसर था।

—"मिर्जा साहब मुझे पहचाना ?"

—"..............।" नौशामियाँ अफसर को ध्यान से देख रहे

थे। उसे कहीं देखा है ? बार-बार उनका मन यही कह रहा था।

—"मेरा नाम जान ब्रिस्टी है। विक्टर साहब के साथ आपसे मुलाकात हुई थी।"

—"अरे हाँ, याद आया। आप तो विक्टर साहब के दामाद हैं ना ! आइये तशरीफ रखिये, माफ कीजियेगा बूढ़ा हो गया हूँ, बीनाई दिनों-दिन कमजोर होती जा रही है। आइये !"

सैनिकों को बाहर रुकने का संकेत करके ब्रिस्टी नौशामियाँ के बैठकखाने में गये।

बैठते हुए लैफ्टिनेण्ट ब्रिस्टी बोला—"जाते वक्त विक्टर साहब आपको सलाम कह गये थे।"

—"क्या वह गये ?"

—"जी !"

—"अजीब बेमुरव्वत आदमी निकले। मिलकर भी नहीं गये।"

—"जी वह कहते थे कि.........., मैं उन्हीं के लफ्ज दुहरा रहा हूँ, वह कहते थे कि मैं अपना काला मुँह हिन्दुस्तानी दोस्तों को नहीं दिखा सकूँगा।"

नौशामियाँ कुछ कह ही रहे थे कि ब्रिस्टी फिर बोला—"आज इस मुहल्ले में मेरी टुकड़ी का पहरा रहेगा। मेरे लायक कोई खिदमत हो तो बताइये।"

नौशामियाँ फीकी हँसी हँसे—"मेहरबानी चाहिए तुम्हारी, मुहल्ले में घूमने के बाद जरा लोगों की खैर-खबर दे देना।"

जिस बात से ब्रिस्टी बचना चाहता था, वही बात फिर आ गई। किसी प्रकार साहस बटोरकर वह बोला—"मिर्जा गालिब, साहब सारे शहर में बहुत कम खुशकिस्मत ऐसे हैं जो जिन्दा बचे हैं। वर्ना............!" ब्रिस्टी का कंठ अवरुद्ध हो गया।

—"वर्ना ?" नौशामियाँ आश्चर्य-चकित रह गये।

—"वर्ना सभी मारे गये।"

नौशामियाँ स्तब्ध रह गये। कुछ क्षण बाद सूखे गले से वह बोले—"साहब मैं तो यहाँ कैदी की तरह पड़ा हूँ। मेहरबानी करके देहली पर क्या बीती—एक बार बता तो दीजिये!"

क्रिस्टी ने दृष्टि झुका ली।

नौशामियाँ ने फिर कहा, उनके स्वर में दयनीय परवशता थी—"साहब?"

—"मिर्जा गालिब साहब देहली में कत्ले-आम हुआ है......!"

—"हैं.........?" नौशामियाँ के काटे तो खून नहीं।

—"जी, विक्टर साहब ने सच ही कहा था। कि अपना काला मुँह अपने दोस्तों को दिखाना पसन्द नहीं करेंगे.........मैं खुद देहली-फतह के दिन शहर में किसी वजह से नहीं आया था। उस दिन के बारे में सुना है कि जिस समय हमारी फौज शहर में दाखिल हुई तो जितने शहरी घरों से बाहर मिले उन्हें उसी जगह संगीनों से मार डाला गया। इसके बाद लोगों को फौज ने घरों में घुसकर कत्ल किया—उनमें से सभी को तो बागियों का दोस्त भी नहीं कहा जा सकता। उनमें से जाने कितने ऐसे होंगे जिन्हें इण्डिया कम्पनी और अँग्रेज कौम पर भरोसा भी होगा, लेकिन देहली के बाशिन्दों के कत्ले-आम का खुले रूप से हमारे अफसर एलान कर चुके थे। हालाँकि यह हमारे कमाण्डर भी जानते होंगे कि कत्ल होने वालों में से ज्यादह तादाद बेगुनाहों की होगी। कौन जाने उनमें से कितने ही अंग्रेजी फौज की विजय चाहते होंगे।"

क्रिस्टी ने दृष्टि उठाकर देखा, नौशामियाँ की आँखों से आँसू बह रहे थे।

क्रिस्टी ने तनिक धीमे स्वर में पुनः कहना शुरू किया—"दूसरे दिन सुबह मैं लाहौरी दरवाजे से अपनी टुकड़ी सहित चाँदनी चौक गया, तब ऐसा मालूम होता था कि मानो यह मुर्दों का शहर हो। कोई आवाज, सिवाय हमारी घोड़ों की टापों के, सुनाई नहीं देती थी। कोई जिन्दा आदमी नजर

नहीं आया। सब ओर मुर्दों का बिछौना-सा बिछा हुआ था, जिनमें से कुछ मरने से पहले सिसक रहे थे।···हम चलते हुए बहुत धीरे-धीरे बात करते थे···इस डर से कि कहीं हमारी आवाज से मुर्दे चौंक न पड़ें।···एक ओर लाशों को कुत्ते खा रहे थे और दूसरी ओर लाशों के आस-पास गिद्ध जमा थे, जो उनके माँस को नोच-नोच कर स्वाद से खा रहे थे, और हमारे चलने की आवाज से उड़-उड़कर थोड़ी दूर जा बैठते थे······। मिर्जा साहब, इन लाशों की हालत बयान नहीं हो सकती। जिस तरह हमें इनके देखने से डर लगता था उसी तरह हमारे घोड़े भी लाशों को देखकर डर से बिदकते और हिनहिनाते थे। लाशें पड़ी अब भी सड़ रही हैं······उनके सड़ने से हवा में बीमारी फैलाने वाली दुर्गन्ध फैल रही है।

किसी तरह संक्षिप्त शब्दों में ब्रिस्टी ने शहर का हाल बता दिया। नौशामियाँ चुप थे, उनकी आँखों से निरन्तर आँसू बह रहे थे।

नौशामियाँ की चुप्पी ब्रिस्टी का हृदय कचोटे डाल रही थी। उठते हुए वह बोला—"मिर्जा साहब इजाजत है ?"

यंत्र की भाँति नौशामियाँ उठे। दोनों बैठक के बाहर आये 'अलविदा' कहने से पूर्व मिर्जा ने एक प्रश्न और पूछा—"लाला लछमणदास के बारे में कुछ पता है ?"

—"जी !"

—"·············!" उत्सुकता-भरे गीले नेत्र ऊपर उठे। ब्रिस्टी रुआँसा-सा होकर बोला—"उन्हें गिरफ्तार करके कमाण्डर के सामने पेश किया गया था। परसों कमाण्डर के हुक्म से·········वह तोप के मुँह से बाँधकर उड़ा दिये गये।"

समाचार की नौशामियाँ पर क्या प्रतिक्रिया हुई यह जानने के लिये ब्रिस्टी एक क्षण भी वहाँ न रुका। वह तेजी से मुड़ा और बाहर चला गया।

उपसंहार

यह थी दिल्ली के १८५७ ई० के स्वाधीनता-संग्राम की संक्षिप्त कहानी।

सम्भव है कि आपके मन में एक प्रश्न उठे। यह आप सोचें कि यह सच है या झूठ?

इसका उत्तर भी लेखक पेशगी ही दिये देता है। यह उपन्यास अवश्य है किन्तु इसका आधार झूठ नहीं है—इस उपन्यास की घटनायें और पात्र सभी को सत्य का आधार प्राप्त है।

विक्रम और हनीफ मेरठ के उन सैनिकों के प्रतीक हैं जिन्होंने दिल्ली के स्वाधीनता-संग्राम का श्री गणेश किया था, उस्मानखाँ और हसीना दिल्ली के उस नागरिक जीवन की छाया हैं—जिस जीवन का निर्माण मध्य-कालीन सूफियों सन्त कवियों ने किया था। जिस जीवन की नींव में मुगल दरबारियों की मानवीय सूझ-बूझ और भारत की एकता का विशाल स्वप्न छिपा हुआ था।

कथाकार का यह दावा है कि हिन्दू-मुस्लिम-भेद-भाव की खाई स्वार्थी उपनिवेशवादियों द्वारा ही खोदी गई। आज से एक शताब्दी पूर्व हिन्दू-मुस्लिम-सम्बन्ध ऐसे नहीं थे, जैसे आज हैं। भारत के दो विभाजित राष्ट्र बनेंगे, सौ वर्ष पहले यह बात कल्पना से भी परे थी। तब हिन्दू-मुसलमान दो विभिन्न धर्म-मतों को मानने के बावजूद अपने को एक देश का निवासी ही समझते थे, दोनों में अनेकों सामाजिक सम्बन्ध थे। जिसके अवशेष आज भी मिलेंगे, दोनों जातियों में खून की नदियाँ बहने के बावजूद—इन सम्बन्धों को अगर पारखी आँखें ढूँढ़ेंगी तो निराश नहीं होना पड़ेगा।

सम्राट् बहादुर शाह जफर, नौशामियाँ, लाला लक्ष्मणदास, मिर्जा दाग, इलाही बख्श, मिर्जा मुगलबेग, सम्राट् का खास सेवक बसंत खाँ, तथा हसन अस्करी आदि सब इतिहास द्वारा प्रमाणित पात्र हैं।

विक्टर (जिसमें ब्रिस्टी और टोनी भी सम्मिलित हैं) उन भले अंग्रेजों

के प्रतिनिधि चरित्र हैं—जो अंग्रेज जाति के होते हुए भी उपनिवेशवाद के समर्थक नहीं थे।

एक ओर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समर्थकों ने सन् १८५७ ई० के विप्लव में भारतीय सैनिकों के अंग्रेजों पर अत्याचार की झूठी कहानियाँ देश-विदेश में फैलानी आरम्भ कीं—दिल्ली के बारे में उन्होंने कहा कि किले में सम्राट् बहादुरशाह के हुक्म से मिर्जा मुगल के सामने अंग्रेज स्त्रियों और बच्चों का कत्ल हुआ। इसका विरोध स्वयं भले अंग्रेजों ने किया।

इंगलैण्ड की लोक-सभा के एक सदस्य श्री लेयार्ड उपनिवेशवादियों के कथन की जाँच करने स्वयं भारत आये, अपनी जाँच की रिपोर्ट उन्होंने लंदन के 'टाइम्स' नामक पत्र में इन शब्दों में प्रकाशित कराई :—

"निहायत गौर के साथ जाँच-पड़ताल करने के बाद, अच्छे-से-अच्छे और सबसे अधिक विश्वासनीय सूत्रों से जो सूचनायें मुझे मिली हैं, उनसे मुझे पूरा विश्वास हो गया है कि जो अनेक भयंकर अत्याचार, कहा जाता है कि देहली, कानपुर तथा अन्य स्थानों पर अंगरेज स्त्रियों और बच्चों पर किये गये प्रायः एक-एक करके सभी कल्पित हैं, जिनके गढ़ने वालों को लज्जा आनी चाहिये।"

इसके विपरीत दिल्ली-विजय के बाद अंगरेजों ने दिल्ली के नागरिकों का जितनी निर्ममता से कत्ले-आम किया, उसका उदाहरण पूरी मानव जाति के इतिहास में नहीं मिलेगा। एक बार दिल्ली उजाड़कर दोबारा बसाई गई। सम्राट् को बन्दी बनाकर निर्वासित किया गया, शाहजादों को अन्य नागरिकों की भाँति ही बेरहमी से कत्ल किया गया—लूट में अंगरेजी सेना ने नादिरशाह को भी मात कर दिया। भारतीय धर्म और दर्शन नारी जाति को पवित्र मानता है—नैतिकता का ढोल पीटने वालों ने स्त्रियों को अपवित्र करने का घृणित काम भी किया। सन् '५७ के दिल्ली-स्वाधीनता-संग्राम के इतिहासकार और दिल्ली के श्रद्धेय बुजुर्ग श्री ख्वाजा हसन

निजामी ने लिखा है :—

"दिल्ली में ऐसे भी लोग भी थे, जिनके घर की स्त्रियों की आबरू पर जिस समय हमला होने लगा तो उन्होंने—अपने हाथ से अपनी बहुओं और बेटियों को कत्ल कर दिया और स्वयं आत्म-हत्या कर ली।"

दिल्ली-विजय के बाद अंग्रेजों ने लूट-मार करके किस प्रकार एक बार उजाड़कर दोबारा बसाया यह एक अलग लम्बी कहानी है। दुर्भाग्य से उपनिवेशवादियों ने अपनी खूनी तलवार के बूते पर यह सत्य लगभग एक शताब्दी तक झुठलाये रक्खा था।

किन्तु आज कई पीढ़ियों के निरन्तर संघर्ष के बाद विदेशी साम्राज्य-वाद के पंजे इस देश से उखड़ चुके हैं और हम अपने इस स्वाधीनता-संग्राम की गौरव-गाथा, जिसे क्रूर साम्राज्यवादियों ने 'गदर' कहा, लिख और पढ़ सकते हैं।

लेखक अपने अन्य कथाकार बन्धुओं का ध्यान इस ओर आकृष्ट करते हुए मेरठ और दिल्ली के अन्न-जल के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है—और फिर किसी समय इस विषय पर और लिखने का वचन देकर पाठकों से विदा लेता है।

